उन्नीसवीं शताब्दी का अजमेर

(Ajmer in Ninteenth Century)

लेखक

डा० राजेन्द्र जोशी

इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

(Dr. Rajendra Joshi)

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर-४

स्वर्गीय श्री त्रिभुवन जी शर्मा

की पुण्य स्मृति में

श्रद्धांजलि के रूप में

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिकी तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ में पांच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रंथ-अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रंथ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रंथों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत तक तीन सौ से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गयी है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चंदनमल बैद
अध्यक्ष

यशदेव शल्य
का. या. निदेशक

प्राक्कथन

अजमेर नगर राजस्थान की हृदयस्थली रहा है। यह महत्वपूर्ण नगर आधुनिक इतिहास में ही नहीं अपितु भारत के प्राचीन इतिहास में भी आकर्षण एवं घटनाओं का केन्द्र-बिन्दु रहा है। अंग्रेजी राज्यकाल मे सुदीर्घकाल तक यह एक राजनीतिक प्रकाश स्तम्भ के रूप में अवस्थित रहा है।

आधुनिक इतिहास में तो अजमेर बहुत समय से समूचे राजस्थान में सभी राजनीतिक हलचलों का एक अप्रतिम केन्द्र रहा है। प्रशासन में आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता के तत्त्व ने संभवतः इसी नगर का सर्वप्रथम स्पर्श किया और फिर समूचा राजस्थान उससे किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ। इसलिए अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासन के अध्ययन का ऐतिहासिक महत्व हो जाता है क्योंकि सच्चे अर्थों में प्रशासन का शुभारम्भ आधुनिक इतिहास में अजमेर से ही हुआ और कालांतर में समूचे रजवाड़ों ने प्रशासन का सूत्र किसी न किसी रूप में यहीं से ग्रहण किया। यह स्वयं स्पष्ट है कि अजमेर के राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्पंदन ने समूचे राजस्थान को सुदीर्घकाल तक स्पंदित रखा। अभी तक वैज्ञानिक दृष्टि से अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासन का अध्ययन नहीं हुआ था। संभवतः इस दिशा में प्रस्तुत ग्रन्थ पहला कदम है। लेखक ने ३ वर्षों के कठिन परिश्रम से सभी मौलिक स्रोतों का अध्ययन किया और पहली बार सम्बन्धित मौलिक सामग्री के आधार पर समूची सूचनाएं एकत्र कर उसे सुशृंखलित रूप में प्रस्तुत किया।

ब्रिटिश राज्यकाल में अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासन का एक सांगोपांग चित्र इस ग्रन्थ में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है और इसके लिए छोटी से छोटी

प्राक्कथन

ग्रौर बड़ी से बड़ी सूचना मौलिक एवं ग्रधिकृत सूत्रों से ही ग्रहण की गई है। मैं उन सबके प्रति कृतज्ञ हूं जिनसे सूचना-संचय में मुझे सहायता मिली है। स्वर्गीय श्री नाथूराम खड़गावत के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूं जिनके सौजन्य से मेरी पहुँच मौलिक सामग्री के लेखागार तक हो सकी।

यह ग्रन्थ विनीत लेखक की ग्रोर से ग्रपनी जन्मभूमि के प्रति एक मौन श्रद्धाञ्जलि भी है। ग्रजमेर मेरी जन्मभूमि है—स्वर्गादपि गरीयसी।

राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर।

राजेन्द्र जोशी

ऐतिहासिक सन्दर्भ

भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिचय :

अजमेर-मेरवाड़ा जो इन दिनों वर्तमान अजमेर जिले का भू-भाग है, स्वाधीनता के पूर्व, अंग्रेज शासित भारत में चीफ कमिश्नरी का एक छोटा सा प्रांत मात्र था। यह राजस्थान के केन्द्र में स्थित था। चारों ओर से राजपूत रियासतों से घिरा हुआ था। इसके पश्चिम में मारवाड़, उत्तर में किशनगढ़ और मारवाड़, पूर्व में जयपुर और किशनगढ़ तथा दक्षिण में मेवाड़ की रियासतें थीं। इसका कुल क्षेत्रफल २,७७१ वर्गमील तथा जनसंख्या ३८०,३८४ थी। अजमेर मेरवाड़ा की स्थिति पूर्वी गोलार्द्ध में २५° २३' ३०" और २६° ४१ अक्षांश तथा ७३° ४७' ३०" और ७५° २७' ०" देशान्तर के मध्य थी। अंग्रेजों के शासन काल में अजमेर दो जिलों (अजमेर व मेरवाड़ा) में विभक्त था जिनका क्षेत्रफल क्रमशः २०६९ और ६४१ वर्गमील था।[1]

अरावली पर्वत श्रेणी जो दिल्ली से आरम्भ होती है वास्तव में अजमेर की उत्तरी सीमा से अपना मस्तक उठाती है और उस स्थान पर जहां अजमेर स्थित है अपना पूर्ण स्वरूप प्रदर्शन करने लगती है। अजमेर के दक्षिण में कुछ ही मील की दूरी पर यह पर्वत श्रेणी दुहरी हो जाती है।[2] अजमेर नदियों से वंचित है। बनास केवल इसके दक्षिणी पूर्वी सीमांत को छूती है और खारी व डाई नदियां

जिले के दक्षिणी पूर्वी भू-भाग के कुछ अंशों को ही प्रभावित करती हैं। सागरमती जो अजमेर की परिक्रमा सी करती है, गोविन्दगढ़ में सरस्वती से संगम करती हुई मारवाड़ में लूनी नदी के नाम से प्रख्यात होकर कच्छ की खाड़ी में गिरती है।[3]

भारत के तलहटी क्षेत्र में स्थित होने और मरुस्थलीय भू-भाग का सीमांत होने के कारण यह बंगाल की खाड़ी और अरबसागर के मानसूनों के लाभ से वंचित सा रह जाता है। अजमेर में बहुत कम और अनिश्चित वर्षा होती है। इससे यहां आये दिन अकाल एवं अभाव तथा सूखे की स्थिति बनी रहती है। वर्षा की भारी कमी के बावजूद अजमेर क्षेत्र में खरीफ और रवी की दो फसलें होती हैं। कुओं और जलाशयों द्वारा सिंचित कृषि से लोगों को गुजारे लायक खाद्यान्न उपलब्ध हो जाता है। जिले में केवल दो झीलें हैं जिनमें एक पुष्कर में तथा दूसरी सरगांव और करन्थिया के मध्य स्थित हैं। करन्थियां झील ही अकेली ऐसी है, जिसका पानी सिंचाई के काम आता है। कर्नल डिक्सन के द्वारा इस जिले में कई तालाबों के निर्माण के कारण इस क्षेत्र में सर्दियों में पानी की कमी नहीं रहती।[4]

अजमेर-मेरवाड़ा की वनस्पति और पशु-पक्षी राजपूताना के पूर्वी भाग में पाये जाने वाली वनस्पति और पशु-पक्षियों से मिलते हैं। वृक्षों में अधिकांश नीम, बबूल, पीपल, बरगद, सेमल, सालर, ढ़ाक, खेजड़ा और गांगां मिलते हैं। यद्यपि बाघ बहुत ही कम थे, तथापि चीते, लकड़बग्घा, सूअर, काला हरिण, नीलगाय, बतखें, तीलोर, जलमुर्गा, खरगोश और तीतर साल भर नज़र आते थे। अजमेर के प्रथम सुपरिंटेंडेंट ने अपने प्रशासनकाल में यहां घने जंगलों का उल्लेख किया है परन्तु बाद में यह सम्पूर्ण क्षेत्र वृक्षविहीन सा होगया था। ब्यावर शहर, नसीराबाद की छावनी तथा तालाब निर्माण के लिए चूना तैयार करने में ईंधन की आवश्यकता के कारण, वन, वृक्ष विहीन हो चले थे और कहीं कहीं इक्के दुक्के पेड़ नज़र आते थे। सन् १८७१ में जंगलात-नियम लागू किये गये और वन विभाग ने कुछ क्षेत्र वन उगाने के लिए अपने अधिकार में लिए जिसके फलस्वरूप इस राज्य के सुरक्षित वनों का क्षेत्र १४२ वर्गमील और १०१ एकड़ होगया था।[5]

राजपूती रियासतों में अजमेर के लिये संघर्ष :

फरिश्ता के अनुसार अजमेर का अस्तित्व ९९७ ईस्वी में भी था जब कि हिन्दुओं ने सुबुक्तगीन के विरुद्ध संघर्ष के लिए संघ स्थापित किया था।[6] 'किन्तु वास्तव में अजमेर शहर मूल रूप से अजयमेरु के नाम से प्रख्यात था और ११३३ ईस्वी में अजयराज ने इसकी स्थापना की थी।

अजयराज के पुत्र और उत्तराधिकारी अर्णोराज के शासन काल में लाहौर और गजनी के यमीनी अजमेर तक चढ़ आये थे। नगर के बाहर खुले मैदान में हुए युद्ध में यमीनी सेनापति बुरी तरह से हारा और चौहानों से अपनी जान बचाने को

भाग गया था। कई मुस्लिम सैनिक अपने भारी भरकम जिरह बख्तरों के बोझ से मर गये और अधिकांश जल शून्य मरु भूमि में प्यास से छटपटाते हुए दम तोड़ बैठे। अजयमेरु ने इस तरह यश भरी विजय श्री ग्रहण की और उसकी गणना शक्तिशाली दुर्ग के रूप में की जाने लगी।[७] अर्णोराज ने मालवा, हरियाणा और अन्य सीमावर्ती क्षेत्रों पर चढाई करके अपने राज्य की सीमाएं विस्तृत की थी। जयानक लिखते हैं कि "उसे वर्तमान मन्दिरों का निर्माता तथा भावी मन्दिरों का प्रोत्साहक कहा जायेगा क्योंकि यदि वह मुसलमानों को नहीं हराता तो वे बिना उल्लेख के ही रह जाते।[८] यद्यपि उपर्युक्त वाक्य प्रशस्ति मात्र है, तथापि इसमें सत्य का पर्याप्त अंश है।

विग्रहराज चतुर्थ का शासनकाल—

अर्णोराज की हत्या कर उनका पुत्र जगद्देव अजमेर की गद्दी पर बैठा परंतु वह अधिक समय तक शासन नहीं कर सका, क्योंकि उसके जघन्य कृत्यों से असंतुष्ट उसके छोटे भाई विग्रहराज तथा अन्य सरदारों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर उसे मार डाला। विग्रहराज ने चालुक्य साम्राज्य के विरुद्ध कतिपय सैनिक अभियानों का नेतृत्व किया था।[९] विग्रहराज ने भादनक को भी पराजित किया था।[१०] बिजोल्या प्रशस्ति में उल्लिखित विजय अभियानों में विग्रहराज के दिल्ली और हांसी के अभियान महत्वपूर्ण हैं। दिल्ली और हांसी पर विग्रहराज के अधिकार के पश्चात् चौहानों और तोमरों के बीच लम्बे समय से जारी कलह का अन्त हुआ। मुसलमानों, गढ़वालों और चौहानों से निरन्तर संघर्ष के कारण तोमर साम्राज्य अत्यन्त शिथिल हो गया था, इसीलिए अन्त में उन्हें शाकम्भरी चौहानों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। ११६५ ईस्वी में, दिल्ली पर मदनपाल तोमर का शासन था।[११] मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय दिल्ली का सीधा शासन पृथ्वीराज तृतीय के हाथों में न होकर एक अधीनस्थ राजा के हाथों में था जो कदाचित् मदनपाल के वंशधरों में से रहे होंगे।[१२]

दिल्ली पर विजय प्राप्ति से शाकम्भरी और अजमेर के चौहान शक्तिशाली साम्राज्य के स्वामी बन गये थे और उनके कंधों पर मुसलमान आक्रांताओं से देश की रक्षा का भार आ पड़ा था। चौहानों के उत्कर्षकाल में अजमेर की चतुर्मुखी प्रगति हुई। विग्रहराज चौहान को यह श्रेय है कि उसने कतिपय हिन्दू राजाओं को गजनवी साम्राज्य से मुक्ति दिलाई थी। वह केवल महान् विजेता ही नहीं था परन्तु एक अनुभवी शासक भी था। वह साहित्य मर्मज्ञ, कला प्रेमी और शिल्पकला का ज्ञाता था। उसे ही अजमेर की समृद्धि का अधिकांश श्रेय है।[१३]

उसने एक उत्कृष्ट संस्कृत नाटक 'हरकेलि' की रचना की थी और अजमेर में 'सरस्वती कंठाभरण महाविद्यालय' स्थापित किया था। ऐसा कहा जाता कि यह

भोज द्वारा धार में स्थापित सरस्वती कंठाभरण महाविद्यालय के आधार पर था। यद्यपि सुबुक्तगीन के समय में इसे मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया था, परन्तु अभी भी इसकी आकृति एवं स्वरूप प्रकट करते हैं कि यह हिन्दू कलाकृति थी। कर्नल टॉड के अनुसार यह प्राचीन हिन्दू शिल्पकला का एक सम्पूर्ण एवं कलात्मक स्मारक है।[१४] कर्नींघम ने भी इस भव्य भवन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।[१५]

विग्रहराज ने ही प्रसिद्ध विशालसर जलाशय का निर्माण करवाया था। यह ढाई मील के घेरे में है।[१६] विग्रहराज ने अपने पूर्व नाम विसाल के आधार पर विसालपुरा नामक एक नगर भी बसाया था। यह नगर गोरवाड़ पर्वत के मध्य दर्रे के बीच स्थित है जिसके दोनों ओर दो ऊंची संकरी पर्वतमालाएं हैं। उनके बीच जलधारा प्रकट होती है जो मेवाड़ में राजमहल तक गई है और वहां से वह बनास में मिल गई है। पहाड़ संकड़े दर्रे के रूप में है परन्तु अजमेर के निकट आकर वह खुले विस्तृत मैदान का स्वरूप ग्रहण कर लेता है जहां बनास नदी वर्षा के जल से एक बड़े जलाशय का रूप लेती है। इसे विसलदेव के पिता आनाजी के नाम पर आनासागर कहा जाता है।[१७] पृथ्वीराज विजय के अनुसार विग्रहराज चतुर्थ ने उतने ही देवालय भी बनवाये जितने उसने पहाड़ी दुर्ग विजय किये थे। मुस्लिम विजेताओं की धर्मान्धता के कारण इनमें से केवल कुछ ही बच पाये थे। विग्रहराज चतुर्थ का शासनकाल सपादलक्ष के इतिहास में स्वर्णयुग रहा है।

तुर्कों का प्रवेश—

पृथ्वीराज तृतीय के शासनकाल में, मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष निरंतर जारी रहा परन्तु चौहानों एवं गुजरात के चालुक्यों के आपसी संघर्ष के कारण मुसलमानों के विरुद्ध पूर्ण शक्ति नहीं लगाई जा सकी थी। जब पृथ्वीराज द्वितीय ने शासन भार सम्भाला तब चौहानों को दक्षिण में चालुक्यों से ही नहीं परन्तु उन्हें पूर्व में कन्नोज के मल्हाओं से भी युद्ध करना पड़ा। यही वह काल था, जब मुहम्मद गोरी के नेतृत्व में मुसलमानों ने भारत पर आधिपत्य के लिए गंभीर प्रयत्न किए और यह दुर्भाग्य ही था कि ऐसे समय भी भारतीय राजा लोग अपने मतभेदों को मिटा नहीं सके। तराई की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज की हार के बाद अजमेर पर सुल्तान ने अधिकार कर लिया और वहां का चौहान शासक पकड़ा गया और उसे मार डाला गया। परिणामस्वरूप अजमेर को भयंकर लूट-पाट और हिंसा का शिकार होना पड़ा।[१८]

ताजुल मासीर के लेखक ने जो शाहबुद्दीन गोरी का समकालीन था—अजमेर की अत्यन्त अलंकृत भाषा में प्रशंसा की है।[१९] अपने अल्पकालीन प्रवास में सुल्तान ने बहुत सारे देवालयों एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों को ध्वस्त किया। वीसलदेव का महाविद्यालय नष्ट कर दिया गया और उसके एक भाग को मस्जिद का रूप दे दिया गया। इसी भवन में बाद में शम्सुद्दीन अल्तमश ने (१२११–१२३६ ई०) सात

महराबें जुड़वाई थीं। चौहानों की पराजय के बाद अजमेर में सूबेदार रहने लगा और नगर की समृद्धि को इतना धक्का लगा कि पन्द्रहवीं शती के मध्य तक ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती की मजार के पास जंगली पशु और बाघ घूमते हुए नजर आते थे।[२०] इस तरह उत्तरी भारत के इतिहास में अजमेर की यशोगाथा का अंत हुआ और तत्पश्चात् अजमेर राजस्थान के हृदय में मुस्लिम चौकी की तरह बना रहा जिसका उद्देश्य राजपूत राजाओं पर नियन्त्रण रखना था।

सन् ११९३ में मुहम्मद गोरी के हाथों पृथ्वीराज की पराजय के बाद अजमेर मुसलमान गतिविधियों का एक केन्द्र बन गया। मुहम्मद गोरी ने स्वयं अजमेर के निकटवर्ती पड़ोसी क्षेत्रों के विरुद्ध सैनिक अभियान का नेतृत्व किया परन्तु अजमेर पर पूरी तरह मुसलमान शासन को स्थापित करने का भार कुतुबुद्दीन एबक को सौंपा। पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिराज ने जिसे फरिश्ता ने हेमराज और हसन निजामी ने जिसे हीराज ठहराया है, अपने भतीजे को, जिसने मुसलमानों का आधिपत्य स्वीकार कर रखा था गद्दी से उतार कर स्वयं अजमेर का राजा बना। हरीराज के सेनापति छत्रराज ने दिल्ली पर आक्रमण किया, परन्तु कुतुबुद्दीन के हाथों पराजित होकर उसे अजमेर भाग आना पड़ा। कुतुबुद्दीन ने उसका अजमेर तक पीछा किया तथा हरिराज को युद्ध में पराजित कर अजमेर पर अधिकार कर लिया।[२१] उसका उद्देश्य अजमेर से लेकर अन्हिलवाड़ा[२२] तक का क्षेत्र जीतना था परन्तु मेरों ने राजपूतों के सहयोग से उसे भारी पराजय दी जिसमें उसे घायल होकर प्राण बचाने के लिए भाग कर अजमेर के किले में शरण लेनी पड़ी। पीछा करते हुए राजपूतों ने अजमेर दुर्ग को घेर लिया। यह घेरा कई महीनों तक चला परन्तु गजनी से कुमुक पहुंचने पर राजपूतों को पीछे हटना पड़ा।[२३] कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद राजपूतों ने कुछ काल के लिए तारागढ़ पर पुनः अधिकार कर लिया था।[२४] परन्तु इल्तुतमीश ने शीघ्र ही उन्हें खदेड़ कर अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया। तब से लेकर तैमूर के आक्रमण तक अजमेर दिल्ली सल्तनत के अधीन बना रहा।[२५]

अजमेर चौदहवीं सदी के अन्त तक दिल्ली सल्तनत के कब्जे में रहा। इन दो सदियों के इतिहास में अजमेर के बारे में वहां के सूबेदारों के परिवर्तन की चर्चा को छोड़कर अन्य किसी तरह का विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।[२६]

तैमूर के आक्रमण और अकबर द्वारा अजमेर पर विजय के बीच के समय में अजमेर ने कई सत्ता-परिवर्तन देखे। पहले मालवा के मुसलमान सुल्तानों, इसके बाद गुजरात के सुल्तान और अंत में राजपूतों के अधिकार में यह रहा। इस समय में नगर की समृद्धि का काफी ह्रास हुआ। सन् १३९७ और सन् १४०९ के मध्यवर्ती काल में, जब दिल्ली सल्तनत को दिल्ली पर भी अपना अधिकार बनाये रखना कठिन लगता था, सिसोदिया राजपूतों ने मारवाड़ के राव रणमल[२७] के नेतृत्व में

जो उन दिनों अपनी बहन के पुत्र मोकल की बाल्यावस्था के कारण मेवाड़ के प्रशासन की देखरेख का काम करते थे, अजमेर पर आक्रमण कर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अजमेर सन् १४५५ तक मेवाड़ के अधीन रहा। उसी वर्ष मांडू के सुल्तान महमूद खिलजी[२८] ने अजमेर के हाकिम गजधरराय[२९] को पराजित कर अजमेर अपने अधिकार में कर लिया था। पचास वर्ष के अंतराल के बाद राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज[३०] ने अजमेर के गढ़ बीटली (तारागढ़ दुर्ग) पर अधिकार कर एक बार पुनः इस क्षेत्र पर मेवाड़ का आधिपत्य स्थापित किया[३१]।

गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह[३२] ने सन् १५३३ में शमशेरउल मुल्क[३३] को भेजकर अजमेर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। कदाचित् अजमेर पर हमेशा के लिए गुजरात का अधिपत्य हो जाता, परन्तु केवल दो वर्ष बाद ही मेड़ता के राव वीरमदेव[३४] ने गुजरात के हाकिम को अजमेर से खदेड़ दिया [३५]। मारवाड़ के राव मालदेव[३६] ने सन् १५३५ में इसे सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया और सन् १५४३ तक इसे अपने अधिकार में रखा[३७] उसके बाद शेरशाह सूरी के मारवाड़ पर आक्रमण के समय अजमेर उसके अधिकार में चला गया[३८]।

इस्लाम शाह सूर[३९] के पतन के पश्चात् सन् १५५६ में हाजीखान [४०] ने अजमेर पर अधिकार कर लिया था परन्तु अकबर का मुकाबला करने में असमर्थ होने के कारण वह गुजरात भाग गया और अकबर के सेनापति कासिम खान ने अजमेर दुर्ग पर बिना किसी संघर्ष के अधिकार स्थापित कर लिया[४१]।

दिल्ली साम्राज्य की महत्वपूर्ण शृंखला में जुड़ जाने से अजमेर सन् १७३० तक मुगल साम्राज्य का अंतरंग भाग बना रहा। मुगलों के अधीन अजमेर सम्पूर्ण राजपूताना प्रान्त या सूबे का सदर मुकाम था। राजपूताना के मध्यवर्ती होने से मुगलशासकों के लिए अजमेर पर आधिपत्य बनाये रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण था। सैनिक दृष्टि से यहां का किला भी दुर्गम-दुर्जय था। अजमेर एक ओर उत्तर भारत से गुजरात के मार्ग तथा दूसरी ओर मालवा के मार्ग का नियंत्रण करता था। एक सुदृढ किला होने के साथ ही अजमेर व्यापार व्यवसाय का महत्वपूर्ण केन्द्र भी था। इसकी सुदृढ स्थिति का कारण यहां की जलवायु था। रेतीले भूभागों की तरह यहां का पानी खारा न होकर स्वादिष्ट था। मुगल सम्राटों को इसका महत्व समझने में देर नहीं लगी और अजमेर शाही निवास का एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया[४२]।

सम्राट अकबर अजमेर की समृद्धि में अत्यधिक रुचि रखता था। उसने शहरपनाह बनवाई, खास (दरगाह) बाजार और शस्त्रागार बनवाये। वह बहुधा साल में एक बार अजमेर आया करता था। जहांगीर अजमेर में तीन साल तक रहा। उसने यहां महल बनवाए और आनासागर की पाल पर एक उद्यान दौलतबाग का निर्माण करवाया। शाहजहां को अजमेर की सुन्दरता में चार चांद लगाने का

श्रेय है। उसने आनासागर पर संगमरमर की बारादरी और दरगाह में जामामस्जिद का निर्माण करवाया। औरंगजेब भी सन् १६५६ में अजमेर के निकट देवराई[४३] की निर्णायक लड़ाई जीतने के बाद ही वास्तविक रूप से दिल्ली की गद्दी प्राप्त कर सका था। उसके पुत्र अकबर ने अजमेर के निकट युद्ध में उसे लगभग हराने की स्थिति पैदा कर दी थी। औरंगजेब बड़ी कठिनाई से यह विद्रोह शांत कर पाया था[४४]।

अकबर के साम्राज्य में राजपूताना और गुजरात के विरुद्ध मुगल अभियानों में अजमेर एक दृढ मुगल छावनी बना रहा। मुगल सम्राट ने इसे एक सूबे का रूप दिया और जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, सिरोही इसके अधीनस्थ कर दिये। आइन-ए-अकबरी के अनुसार अजमेर का सूबा ३३६ मील लंबा और ३०० मील चौड़ा था और इसकी सीमा पर आगरा, दिल्ली, मुलतान और गुजरात स्थित थे। इसके अंतर्गत १८७ सरकारें और १६७ परगने थे जिनका कुल राजस्व २८, ६१, ३७, ६६८ दाम या ७१, ५३, ४४ रुपये था। मुगल साम्राज्य के कुल राजस्व १४, १६, ०६५८४ रुपयों में से अजमेर का अंश ७१, ५३, ४४६ रुपये था।[४५] इस सूबे पर मुगल सेना के लिए ८६, ५०० घुड़सवार, ३,४७,००० पैदल सैनिक प्रदान करने की जिम्मेदारी थी। जिनमें अजमेर सरकार को जिसके अन्तर्गत २८ महल थे १६ हजार घुड़सवार और ८४,००० हजार पैदल सैनिक प्रदान करने होते थे। अजमेर दो सौ वर्षों से भी अधिक समय तक मुगल साम्राज्य का अंग बना रहा[४६]।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ। फर्रुखसियर[४७] के शासनकाल में जोधपुर नरेश अजीतसिंह अधिक शक्तिशाली बन गए थे। यहां तक कि सैय्यद बंधु[४८] अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए उन पर निर्भर थे और एक तरह से महाराजा अजीतसिंह अपने समय में युद्ध और शांति के निर्णायक माने जाते थे[४९]। सन् १७१६ में सैय्यद बंधुओं के पतन के बाद अजीतसिंह ने अजमेर पर आधिपत्य कर लिया था[५०]। सन् १७२१ में मुहम्मद शाह ने अजमेर को वापस लेने का प्रयत्न किया। उसने काजी मुजफ्फर के नेतृत्व में अजमेर पर आक्रमण के लिए सेना भेजी परन्तु अजीतसिंह के बड़े पुत्र अभयसिंह ने इस आक्रमण को विफल कर दिया। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने[५१] के दृष्टिकोण से अभयसिंह ने इसके बाद शाहजहांपुर व नारनौल पर चढ़ाई कर इन्हें खूब लूटा तथा कई ग्रामों को खड़े खड़े आग लगा दी[५२]।

इस कठिन परिस्थिति में जयपुर के शासक जयसिंह ने मुगल सम्राट की मदद की। उन्होंने अजमेर पर आक्रमण किया, अमरसिंह, जिन पर कि अभयसिंह की अनुपस्थिति में अजमेर की रक्षा का भार था दो महीनों से अधिक इसकी रक्षा नहीं कर सके। फलस्वरूप दोनों पक्षों के बीच जो संधिवार्ता हुई उसके अनुसार अजमेर मुगल साम्राज्य को सौंप देना पड़ा[५३]।

सन् १७३० में गुजरात ने सरबुलंदखान[५४] के नेतृत्व में दिल्ली की अधीनता अस्वीकार कर दी थी। इस परिस्थिति में मुगल सम्राट ने उसके विरुद्ध अभयसिंह से सहायता मांगी और यह वचन दिया कि उसे अजमेर और गुजरात का हाकिम बना दिया जायेगा[५५]। अभयसिंह ने १७३१ में गुजरात को जीत कर वापस मुगल साम्राज्य का अधिकार स्थापित किया, परन्तु मुगल सम्राट ने अजमेर, जयपुर के सवाई-जयसिंह[५६] को भरतपुर के जाट शासक चुड़ामण को दबाने के उपलक्ष में उन्हें प्रदान कर दिया। मुगल सम्राट के इस कदम ने राजपूताने के दो प्रमुख रजवाड़ों, राठौड़ों और कछवाहों के बीच अजमेर के लिए संघर्ष अवश्यम्भावी कर दिया।

सन् १७४० में भिनाय और पीसांगन के राजाओं की मदद से अभयसिंह के भाई बखतसिंह ने अजमेर के हाकिम को परास्त कर अजमेर पर राठौड़ों का अधिकार पुनः स्थापित किया। फलस्वरूप जयपुर व जोधपुर के बीच अजमेर के दक्षिण-पूर्व में ९ मील दूर गंगवाना नामक स्थान पर एक महत्वपूर्ण युद्ध ८ जून १७४१ को हुआ। मुट्ठी भर राठौड़ों ने जयसिंह की विशाल सेना को भारी पराजय दी। जयसिंह को संधि करनी पड़ी। राठौड़ों को जयसिंह से सात परगने प्राप्त हुए जिनमें अजमेर भी एक था[५७]।

सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी ईश्वरी सिंह अजमेर पर पुनः अधिकार स्थापित करने को बहुत उत्सुक थे। उन्होंने अजमेर पर आक्रमण की तैयारी भी की परन्तु जयपुर के रायमल व जोधपुर के पुरोहित जगन्नाथ की मध्यस्थता के कारण युद्ध टल गया[५८]। तब से लेकर सन् १७५६ तक अजमेर पर राठौड़ों का शासन रहा।

१८ वीं सदी का अंतिम मध्यवर्ती काल, जहां तक राजपूताने का प्रश्न है, मराठों के भारी संख्या में घुसपैठ का समय था। राजपूतों के आंतरिक कलह से उन्हें इनके मामलों में हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हुआ जो अंत में इस क्षेत्र में उनके आधिपत्य के रूप में परिणित हुआ। राजपूतों के इन आपसी संघर्षों में होल्कर और सिंधिया ने बहुधा एक दूसरे के विरुद्ध पक्षों की अलग अलग सहायता की। मेड़ता के युद्ध में जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह की सेना और मराठों की मिलीजुली शक्ति के आगे जोधपुर के राजा विजय सिंह की पराजय ने एक लंबे समय के लिए अजमेर का भाग्य निर्णय कर दिया। सन् १७५६ से लेकर १७५८ तक अजमेर मराठों व रामसिंह के अधिकार में रहा। रामसर, खरवा, भिनाय और मसूदा जयपुर नरेश रामसिंह के और शेष भाग मराठों के पास रहा। छोटी मोटी घटनाएं इस बीच अजमेर को मराठा आधिपत्य से मुक्त करने के लिए हुई परन्तु सन् १७९१ तक अजमेर पर मराठों का आधिपत्य बना रहा। सन् १७९१ में मारवाड़ के भीमराज ने मराठा सूबेदार अनवरजंग से अजमेर छीन कर अपने छोटे भाई सिंघवी धनराज को वहां का

प्रशासन सौंप दिया था[५९]। परन्तु शीघ्र ही मारवाड़ के राजा विजयसिंह ने खरवा के ठाकुर सूरजमल (अजमेर दुर्ग के किलेदार) को आदेश दिया कि वे अजमेर मराठों को वापस सौंप दे। इस प्रकार अजमेर वापस मराठों को मिल गया। जनरल पैरों को अजमेर में व्यवस्था स्थापित करने का कार्य सौंपा गया क्योंकि घेरे के दौरान शांति भंग हो चली थी[६०]। पूरे ९ वर्षों तक, अर्थात् सन् १८०० तक अजमेर मराठों और उनके सूबेदारों के हाथों असहनीय अत्याचार सहन करता रहा। विद्रोही मेरों का पूरी तरह से दमन किया गया और उनकी पुलिस चौकियों में सेवाएं ली गई। जिन लोगों ने पिछली लड़ाई में जोधपुर का साथ दिया था उन पर भारी अर्थ दंड थोपा गया, कई उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें दंड की मात्रा लाख रुपये तक थी। यह राशि कठोरता से वसूल की गई और जो न चुका सके उनकी जागीरें खालसा कर ली गई। इसके फलस्वरूप मराठों के विरुद्ध असंतोष की गहरी आग धधकती रही जो कभी कभी ठिकानेदारों द्वारा मराठों के विरुद्ध हिंसक कारवाइयों के रूप में फूट पड़ती थी[६१]।

मराठा फौज में अनुशासन की बड़ी कमी थी। सन् १८०० में लकवा दादा ने मराठा शक्ति के विरुद्ध खुली बगावत की, इसके पूर्व वह मराठा सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति था, अतएव यह आवश्यक समझा गया कि यथा शीघ्र उसे पंगु बना दिया जाय जिससे विद्रोह तीव्र रूप ग्रहण न कर सके। अजमेर लकवा दादा की "जायदाद" थी। जनरल पैरों को अजमेर पर आधिपत्य सौंपा गया। १४ नवम्बर, १८०० को पैरो को यह जानकारी दी गई कि लकवा मालवा भाग गया है। उसने मेजर बोरगुईं को अजमेर दुर्ग पर आक्रमण के लिए भेजा। जिसके अनुसार ८ दिसम्बर, १८०० को अजमेर दुर्ग पर धावा बोल दिया गया, यद्यपि मेजर ने उक्त आदेशों का बहादुरी से पालन करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे पीछे धकेल दिया गया। उसने पूरे पांच माह तक जी जान लगाकर रात दिन एक कर दिया परन्तु अजमेर दुर्ग को हस्तगत नहीं कर सका। अन्त में वह रिश्वत के माध्यम से ८ मई, १८०१ को किले पर अधिकार पाने में सफल हुआ। पैरो अजमेर के सूबेदार बने और लो महोदय के जिम्मे अजमेर के प्रशासन की देख-रेख का काम सौंपा गया[६२]।

सन् १८०३ से १८१८ तक अजमेर का इतिहास मराठों और अंग्रेजों के बीच उत्तर भारत में अधिपत्य स्थापित करने के लिए संघर्ष का इतिहास है। लार्ड वेलेजली के समय में अंग्रेजों और सिंधियों के बीच युद्ध छिड़ जाने पर मारवाड़ के राजा मानसिंह ने मराठों से अजमेर छीन कर तीन साल तक इसे अपने अधीन रखा था[६३]। बाद में जब अंग्रेजों और मराठों के बीच संधि हो गई तो अजमेर पुनः मराठों के हाथ में आ गया तथा १८१८ तक उनके पास रहा। सन् १८०५ में दौलत राव सिंधिया और अंग्रेज सरकार के मध्य संधि के बाद देश में केवल अराजकता व लूटपाट का बोलबाला था। इस संधि के बाद सिंधिया की फौजें

चौथ वसूली में आनाकानी करने वाले सरदारों को दबाने के नाम पर दिनरात सक्रिय हो चली थी। अतएव अजमेर में इस संधि के बाद अस्थिरता एवं असुरक्षा की भावना कम होने के बजाय उसका बढ़ना स्वाभाविक ही था[६४]।

२५ जून, १८१८ को ईस्ट इन्डिया कम्पनी और महाराजा आलीजाह दौलतराव सिंधिया के मध्य एक संधि हुई जिसके अनुसार अजमेर अंग्रेजों को प्राप्त हुआ[६५]।

अंग्रेजों ने जब अजमेर प्रांत का शासन भार सम्भाला तो यह भू-भाग आठ परगनों और ५३४ ग्रामों में विभक्त था तथा इसमें कृषि योग्य १६ लाख पक्का बीघा भूमि थी। इस क्षेत्र के सभी ज़मीदार अधिकांशतः राठौड़ थे, केवल कुछ ही पठान, जाट, मेर और चीता थे। मेर और चीता लोग जिले के अन्तिम छोर पर आबाद थे। केवल इन दो जातियों के ज़मीदारों को छोड़कर शेष सभी शांतिप्रिय और परिश्रमी थे[६६]।

अजमेर में मराठों के एक सदी के कुशासन के फलस्वरूप जनता में भय की भावना व्याप्त हो गई थी और अधिकांश जनता यहां से दूसरे स्थानों पर चली गई थी। अजमेर पर अंग्रेजों के आधिपत्य के साथ ही वे लोग जो दूसरे प्रदेशों में जा बसे थे, अपने घर पुनः लौटने लगे। लोगों में विश्वास का प्रादुर्भाव हुआ और खेतों में फसलें फिर से लहलहाने लगीं। तांतिया और बापू सिंधिया ने जो हानिप्रद व अदूरदर्शितापूर्ण तरीका अपनाया उसके कारण मराठों को कभी भी ३,४५,७४० रुपये से अधिक की राशि का लगान या ३१,००० हजार की चुंगी को मिलाकर केवल ३७६,७४० रुपये से अधिक की राशि प्राप्त नहीं हुई[६७]।

आठ परगनों में से केवल एक परगना खालसा था। इसमें से भी आधा भू-भाग इस्तमरार या जागीर भूमि में था[६८]। इस इस्तमरार भूमि पर जिनका अधिकार था वह किसी पट्टे से या कानूनी हक के अन्तर्गत नहीं था। केवल दीर्घकालीन कब्जा ही उन्हें इस ज़मीन का हकदार बनाये हुआ था। इन परिस्थितियों में अंग्रेज़ों की व्यवस्था के अन्तर्गत उस समय केकड़ी का कस्बा और अजमेर परगने के केवल १०५ ग्राम अंग्रेजों के हाथ लगे। इन क्षेत्रों पर अंग्रेजों के आधिपत्य के बाद ही खेती में इतनी वृद्धि हुई कि केवल आधी फसल ही बापू सिंधिया के उस समय के मराठा भूमि कर व अन्य करों की सम्मिलित राशि से अधिक थी[६९]। मराठों के समय खालसा और इस्तमरार भूमि से लगान अव्यवस्थित एवं मनमाने ढंग से वसूल किया जाता था[७०]।

मराठों की व्यवस्था लालच की प्रवृत्ति पर आधारित थी। जब कभी उन्हें धन की आवश्यकता होती वे ग्रामों में जाते और एक न एक बहाने से पैसा बटोर लाते। सन् १८०५ तक इस प्रदेश ने कभी फौज खर्च (सैनिक व्यय के लिए कर) का नाम

भी नहीं सुना था। सन् १८०५ में बालाराव ने अचानक भिनाय पहुंच कर वहां के ठाकुरों से अपनी हैसियत के अनुसार भेंट देने को कहा। उन्हें बाध्य किया गया कि वे ६०,००० रुपये की राशि प्रदान करें। परन्तु बालाराव एक पाई भी वसूल करने में असफल रहे। भिनाय के राजा ने इस शर्त पर कि बालाराव उसके जामा में से एक चौथाई माफ कर दे तो फौज खर्च देना स्वीकार किया।[७१]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मराठों को जब भी धन की आवश्यकता होती राजस्व के नियमों की परवाह किये बिना ही वसूली के लिए चल पड़ते थे। इस तरह बार-बार धन की मांग बने रहने से क्षेत्र का सम्पूर्ण राजस्व प्रशासन अव्यवस्थित हो गया था। उस पर फौज खर्च और थोपा गया जिससे भूराजस्व में बड़ी भारी कमी आगई थी। बालाराव ने जालीया से फौज खर्च के नाम पर ३५,००० रुपये का कर अजमेर शहरपनाह की मरम्मत व खाई की खुदाई के नाम पर वसूल किया। उसने फौज खर्च के अलावा मुसद्दी खर्च भी वसूल किया। मसूदा से ३५,०००, देवलिया से १५,००० व निणाय से ३५,००० रुपये फौज खर्च के नाम पर वसूल किए गए। इस तरह के वित्तीय दंड भार दिनों दिन बढ़ते जाते थे इस कारण सन् १८१० में जब तांतिया अजमेर का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसने एक लाख की रकम की मांग की परन्तु वह केवल २५,००० रुपये की राशि ही बटोर पाया था। यह मांग उसने इस आधार पर की कि उसे अजमेर की सूबेदारी पाने के लिए एक भारी रकम रिश्वत में देनी पड़ी थी। अगर कोई इस्तमरारदार उनकी मांग पूरी नहीं करता तो उसके ठिकाने पर आक्रमण किया जाता था। सन् १८१५ में बड़ली के ठाकुर द्वारा भुगतान से इंकार करने के कारण उसके ठिकाने पर आक्रमण किया गया। ठाकुर अपने कतिपय सगे सम्बन्धियों सहित मारा गया और उसका ठिकाना लूट लिया गया।[७२] मराठा प्रशासन वास्तव में संगठित लूट था जिसमें कतिपय अनुचित कर वसूली से दबकर[७३] गरीब किसान दरिद्रता की चरम सीमा तक पहुंच गया था।[७४]

अजमेर जिला अजमेर और केकड़ी को मिलाकर बनाया गया था। जिन्हें किशनगढ़ पृथक् करता था। जागीर इस्तमरार व भोम में विभाजित होने के कारण वहां खालसा अथवा सरकारी राजस्व भूमि बहुत ही कम थी। जागीर दान तथा बख्शीश के अन्तर्गत ६५ ग्राम थे तथा उसका वार्षिक भू-राजस्व एक लाख के लगभग था। इनमें सबसे महत्वपूर्ण जागीर ख्वाजा साहिब की दरगाह की थी, जिसमें १४ गांव थे व उनसे २६,६३० रु० की भू-राजस्व आय होती थी। अन्य छोटी जागीरें कुछ व्यक्तियों और धार्मिक संस्थानों से सम्बद्ध थीं जो विशिष्ट व्यक्ति, देवस्थान तथा प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी के उमरावों को भेंट में दी हुई थीं।[७५]

इसतमरार जागीरें ६६ थीं जिनमें २४० ग्राम थे और इनका क्षेत्रफल

८००.३ वर्गमील था। इनकी वार्षिक आय ५,५९,१५८ रुपये थी तथा ये जागीरें १,१४,१२९ रुपये का सालाना राजस्व दिया करती थीं। ये इस्तमरारदार अपनी जागीरों को वंश परम्परा से इस शर्त पर कि वे सरकार को नियमित बंधा हुआ राजस्व देते रहेंगे, ग्रहण किए हुए थे। इस राजस्व में वृद्धि नहीं की जा सकती थी। आरम्भ में इन जागीरों के उपलक्ष में सैनिक सेवायें प्रदान की जाती थीं जो कालांतर में सेवा के स्थान पर धीरे-धीरे धनराशि में परिवर्तित हो गई थी। मराठों ने अजमेर पर सन् १७८९ में पुनः आधिपत्य करने के बाद ही इन सब पर नगदी में राजस्व कूंतकर इन्हें तालुकेदारों के हक प्रदान किये। अब उनका उत्तरदायित्व केवल निर्धारित धनराशि देने तक सीमित रह गया था।[७९]

इस तरह अंग्रेजों को मराठों से वह भू-भाग विरासत में मिला जो सभी वास्तविक अर्थों में मराठा लूट खसोट के कारण प्रायः नष्ट हो चला था। इस क्षेत्र के निवासी मराठा कर उगाहकों के हाथों कंगाल हो चुके थे। लोगों ने अपनी कृषि को विकसित करने के प्रयास छोड़ दिये थे क्योंकि उन्हें यह भय था कि विकास के साथ उन पर और अधिक भार आ पड़ेगा। अजमेर वास्तव में मराठा आधिपत्य के अन्तर्गत कष्टों और दरिद्रता का क्षेत्र बन चला था।

अध्याय १

१. सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव (१९११) पृ० ७१ मेरवाड़ा के कुछ विशिष्ट भू-भागों का मारवाड़ और मेवाड़ में हस्तांतरण के पश्चात् जनसंख्या और क्षेत्रफल घट कर ५०६९६४और २३६७ वर्ग मील क्षेत्र रह गया। (सी. सी. वाटसन, अजमेर–मेरवाड़ा गजेटियर्स पृ०१)

२. सी. सी. वाटसन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, खंड १ ए, अजमेर-मेरवाड़ा (१९०४)

३. थॉर्टन, गजेटियर्स ऑफ इण्डिया (१८५०) पृ० १८ सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव (१९११) पृ० १८ सी. सी. वाटसन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स खंड १-ए, अजमेर–मेरवाड़ा (१९०४) पृ० २।

४. सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव (१९११) पृ.१८।

५. उपरोक्त।

६. जे. ब्रिग्ज़, तारीख ए–फिरश्ता, १ (१९११) पृ० ७ और ८ (ऐसे किसी संघ का उत्वी, इब्न, उल अथर व निजामुद्दीन जैसे पूर्ववर्ती तथा प्रामाणिक इतिहासकारों ने उल्लेख नहीं किया, अतएव फिरश्ता का कथन विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है।

७. जयानक, पृथ्वीराज विजय, (६), १-२७ (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एवं गुलेरी संस्करण, अजमेर १९४१) चौहान प्रशस्ति, की पंक्ति १५ में भी कहा गया है 'अजयमेरू की भूमि तुर्कों के रक्तपात से इतनी लाल हो गई थी कि मानों उसने अपने स्वामी की विजय के उल्लास में गहरा लाल वस्त्र धारण कर लिया हो।'

८. जयानक, पृथ्वीराज विजय, (६), (पृ. १५१, डा. ओझा संस्करण, १९४१)

९. एपिग्राफिया इंडिका, (२६), पृ० १०५ छंद २०।

१०. वीजोलया स्मारक छंद १९।

११. ठक्कर फेरू ने दिल्ली के तोमरों के दो सिक्के मदन पलाहे और अनंग पलाहे का उल्लेख किया है।

१२. उपरोक्त

१३. उपरोक्त लेखक की दिल्ली शिवालिक स्मारक ५,१२२०।

१४. जेम्स टॉड, एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, खंड १ (ओ. यू. पी. १९२०) पृ० ६०९।

१५. आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक (२) पृ० २६३।

१६. उपरोक्त पृ० २६१।

१७. सारदा, स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स (१९३५) पृ० २५५।

१८. रेवर्टी, तवाकाते-नासिरी (१८८०)। पृ० ४६८, जे० ब्रिग्ज, तारीख-ए-फिरश्ता, । (१९११) पृ० १७७।

१९. सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव (१९४१) पृ० ३४, ३५।

२०. उपरोक्त, पृ० ३५।

२१. मुस्लिम इतिहासज्ञों का कहना है कि सन् १२०९ में कुतुबुद्दीन की मृत्यु पर राजपूतों ने गढ़ बीटली पर आक्रमण किया और वहां की मुस्लिम टुकड़ी को तलवार के घाट उतार दिया और सैयद हुसैन खंगसवार इस मौके पर शहीद हुए। उक्त घटना किसी भी प्रामाणिक

इतिहास में उपलब्ध नहीं होती (सारदा, अजमेर-हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव १६४१-पृ० १४८)।

२२. अन्हलवाड़ा अन्हिलवाड़ा पट्टन के नाम से जाना जाता है। गुजरात की अंतिम एवं प्रख्यात हिन्दू राजधानी। चावड़ों ने ७४६ ई० में इसकी स्थापना की थी। (बेने हिस्ट्री ऑफ गुजरात,-१६३८-५)।

२३. सारदा, अजमेर, हिस्टोरिकल डिस्क्रिपटिव (१६४१) पृ० १४६।

२४. तारागढ़ का दुर्ग तारागढ़ पर्वत पर स्थित है। यह पर्वत धरातल से १३०० फीट ऊंचा है। ये चट्टानें आनासागर के पूर्व की पहाड़ियों तक फैली हैं। किंवदन्ती के अनुसार, तारागढ़ दुर्ग राजा अजय ने बनवाया था। उनके द्वारा निर्मित यह दुर्ग "गढ़ बीटली" कहलाता था। सी०सी० वाटसन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, अजमेर मेरवाड़ा (१६०४) खंड १ पृ० ५ और ६।

२५. सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव (१६४१) पृ० १५६।

२६. टॉड-एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, खण्ड (१२) (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (१६२०) पृ० १६।

२७. राव रणमल मारवाड़ के प्रसिद्ध राजा थे। उनका जन्म २८ अप्रेल, १३६२ में हुआ था।

२८. महमूद खिलजी खान जहां खिलजी का पुत्र था। उसने १५ मई, १४३६ में मालवा की गद्दी पर अधिकार स्थापित कर लिया था। २६ वीं सव्वल ८३६ हिजरी। उसने ३४ चांद वर्षो तक राज्य किया, मृत्यु २७ मई १४६६, ६ वीं जी-का दा ८७३ हिजरी, आयु ६८ वर्ष (बीलु, ओरियन्टल बांयोग्राफिकल डिक्सनेरी १८८१-पृ०१६४)।

२६. ब्रिग्ज, तारीख ए फरिश्ता खंड (२) (१६११-पृ० २२२)।

३०. पृथ्वीराज मेवाड़ के राणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र था। जब ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की कि रायमल के बाद उसका कनिष्ठ पुत्र सांगा राजगद्दी पर बैठेगा तब वह गोडवाड चला आया। नाडलाई प्रशस्ति के अनुसार राणा रायमल के जीवन कार्य में पृथ्वीराज का शासन गोडवाड में था (गहलोत, राजपुताना का इतिहास—१६३७-पृ० २१५)।

३१. टॉड–एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान (ऑक्स० यूनिवर्सिटी प्रेस १६२०) खण्ड (२) पृ० ३७६–४।

३२. बहादुरशाह गुजरात के मुजफ्फरशाह द्वितीय का दूसरा पुत्र था। अपने

पिता की मृत्यु के समय वह अनुपस्थित था तथा जौनपुर में था, परन्तु जब उसका भाई महमूदशाह अपने बड़े भाई सिकन्दरशाह की हत्या कर गुजरात की गद्दी पर बैठा तो वह गुजरात लौट आया और बीस अगस्त, १५२६ को महमूद से गुजरात का राज्य छीनकर स्वयं गद्दी पर बैठा। उसने २६ फरवरी १५३१ में मालवा विजय किया और वहां के शासक सुल्तान महमूद द्वितीय को पकड़ कर वन्दी बना चांपानेर भेज दिया। (वील ओरियन्टल बॉयोग्राफिकल डिक्सनरी १८८१–पृ० ६४)।

३३. वायले–गुजरात, पृ० ३७१।

३४. वीरमदेव राव वाघा के पुत्र थे। यद्यपि उनके दादा ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया था, मारवाड़ के सरदारों ने इनके भाई गांगां को राजगद्दी पर बिठा दिया। वीरमदेव को सोजत का परगना जागीर में मिला। उसने शमशेर-उल-मुल्क को हटाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। (रेऊ-मारवाड़ का इतिहास) खण्ड। १९३८-पृ० ११८)।

३५. मुहणोत नेणसी ने उल्लेख किया है कि वीरमदेव ने अजमेर काकिला परमारों से छीना जो सत्य नहीं है। (रेऊ-मारवाड़ का इतिहास-खण्ड १-१९३८-पृ० ११८)।

३६. राव मालदेव राजपूतों के राठौड़ वंश का मारवाड़ का शासक था और जोधा का जिसने जोधपुर बसाया वंशधर था। सन् १५३२ में उसने राजपूताना में अत्यन्त प्रसिद्धि एवं महत्व का स्थान प्राप्त कर लिया। फरिश्ता के अनुसार वह हिन्दुस्तान के प्रमुख राजाओं में से था। (वील, ओरियन्टल बॉयोग्राफिकल डिक्सनरी, १८८१-पृ० १६६)।

३७. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास-खण्ड १ (१९११) पृ० ११९।

३८. ब्रिग्ज, तारीख ए फिरश्ता, खण्ड १ (१९११) पृ० २२७२८ खफीखान मुन्तखावुललुवाव, खण्ड-१-पृ० १००-१, रेऊ, मारवाड़ का इतिहास खण्ड-१ (१९३८) पृ० १३१।

३९. इस्लाम शाह सूर शेरशाह सूर का पुत्र था।

४०. हाजीखान पठान नागौर का शासक था। वह शेरशाह का गुलाम था।

४१. इलियट-हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, खण्ड ६ (१८६६-६७) पृ० २२।

४२. सी० सी० वाटसन, राजपुताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, अजमेर-मेरवाड़ा खण्ड १ ए (१९०४) पृ० ११।

४३. देराई का युद्ध दारा और औरंगजेब के बीच ११,१२ और १३ मार्च १६६५ को लड़ा गया। इसने औरंगजेब का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। देराई अजमेर से तीन मील दूर स्थित है। (सारदा अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिपटिव १९११-पृ० १६२-६३)।

४४. सी० सी० वाटसन, राजपूताना गजेटियर्स, खण्ड (२) (१९०४) पृ० १७। अकबर औरंगजेब का सबसे छोटा लड़का था। उसका जन्म १० सितम्बर, १६५७ को हुआ। उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और जून १६८१ में मराठा सरदार शंभू जी से जा मिला। बाद में उसने मुगल दरबार छोड़ दिया और फारस चला गया जहां १७०६ में उसकी मृत्यु हुई। (बील, ओरियन्टल बॉयोग्राफिकल डिक्शनरी-१८८१-पृ० ३१)।

४५. एडवर्ड थॉमस, क्रोनीकल्स ऑफ दी पठान किंग्ज ऑफ देहली (१८७१)। पृ० ४३३-३४।

४६. ब्लोचमेन, आईन-ए-अकबरी।

४७. फर्रुखसियर दिल्ली का बादशाह था। उसका जन्म १८ जुलाई १६८७ को हुआ। वह बहादुरशाह द्वितीय का द्वितीय पुत्र था। और औरंगजेब का पौत्र था। शुक्रवार ९ जनवरी १७१३ को वह राजगद्दी पर आसीन हुआ। १६ मई, १७१९ को उसकी हत्या कर दी गई। (बील, ओरियंटल बायोग्राफिकल डिक्शनरी-१८८१-पृ० ८८)।

४८. सैय्यद बन्धु दिल्ली के राज निर्माताओं के नाम से प्रख्यात हैं। ये लोग सैय्यद अब्दुल और सैय्यद हुसैन अली खान थे। इन दोनों ने मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में विशेषकर फर्रुखसियर और मुहम्मद शाह के शासन काल में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की।

४९. टॉड-एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज़ ऑफ राजस्थान (आक्स० यूनि० प्रेस १९२०) खंड ।। पृ० ८८।

५०. उपरोक्त, पृ० ८८।

५१. इरविन, लेटर मुगल्स, खंड ।। (१९२२) पृ० १०९-१०, सैरूल-मुतखरीन, पृ० ४५४, अजीतोदय, सर्ग ३० श्लोक ६ से ११। रेऊ-मारवाड़ का इतिहास (१९३८) खण्ड-१ पृ० ३२२।।

५२. जब अजीतसिंह को यह पता चला कि नुसरतयार खान को उसके विरुद्ध भेजा गया है उसने अपने पुत्र अभयसिंह को नारनोल पर चढाई और दिल्ली तथा आगरा के आसपास लूट के लिए भेजा

अभयसिंह ने, १२००० सांडनी सवारों के साथ नारनौल पर धावा बोला वहां के फौजदार बयाजीद खान मेवाती को हराया, नारनौल को लूट लिया और अलवर, तिजारा और शाहजहांपुर को गम्भीर क्षति पहुंचाई। वह सराय अलीवर्दी खान तक जा पहुंचा जो दिल्ली के ६ मील के घेरे में थी। (रेऊ, मारवाड़ का इतिहास–१६३८–खंड १ पृ० ३२२)।

५३. अजीतोदय, सर्ग ३०, श्लोक ५३ से ६५। राजरूपक में जयसिंह की चर्चा नहीं है, पृ० २३६।
टॉड-एनल्स एण्ड ऐन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान (ऑक्स० यूनी० प्रेस) खंड ।। (१६२०) पृ० १०२८।

५४. सरबुलन्द खान जिसका ख़िताब नवाब मुबरिज उल-मुल्क था फर्रुख़-सियर के समय में पटना का हाकिम था। उसे सन् १७१८ में वापस मुगल दरबार में बुला लिया गया। मुहम्मदशाह के समय में सन् १७२४ में उसे गुजरात का हाकिम बनाया गया था। परन्तु सन् १७३० में उसे इस पद से इसलिए हटा दिया गया कि उसने मराठों को चौथ देना मंजूर किया था। (बील, ओरियन्टल बॉयोग्राफिकल डिक्शनरी १८८१-पृ० २३६)।

५५. रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, खंड १ (१६३८) पृ० ३३६, सारदा अजमेर, पृ० १६७।

५६. चूरामन महत्वाकांक्षी जाट नेता था, उसने शांहशाह आलमगीर के अन्तिम दक्खन अभियान के समय उसका माल असबाब लूट लूट कर धन बटोर लिया और उससे भरतपुर का किला बनवाया। चूरामन जाटों का नेता बन गया। नवम्बर, १७२० में शहंशाह मुहम्मद शाह और कुतबुलमुल्क सैय्यद अब्दुल खान की सेनाओं के बीच युद्ध में मारा गया। (बील, ओरियंटल बॉयोग्राफिकल डिक्शनरी १८८१-पृ० ७७)।

५७. टॉड-एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान खण्ड २ (१६२०)। पृ० १०५०-५१। रेऊ मारवाड़ का इतिहास, खण्ड १ (१६३८) पृ० ३५२-५४।

५८. रेऊ मारवाड़ का इतिहास, खण्ड १ (१६३८) पृ० ३५५५-पुरोहित जग्गू प्रसिद्ध पुरोहित जगन्नाथ थे, इनके प्रभाव से आनन्दसिंह को ईडर की राजगद्दी विक्रम संवत् १७८७ फाल्गुन कृष्णा सप्तमी (४ मार्च, १७३१)।

५९. सारदा, अजमेर-हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव (१९११) पृ० १७२।
६०. उपरोक्त पृ० १७२-७३। टॉड-एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान (१९२०) खण्ड २ पृ० १३६।
६१. सारदा, अजमेर-हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव (१९११) पृ० १७३।
६२. उपरोक्त पृ० १७४-७५।
६३. उपरोक्त, पृ० १७५।
६४. सरकार, सिंधियाज अफेयर्स (१९५१) पृ० ७।
६५. एचीसन, ट्रीटीज़ एण्ड एन्गेज़मेन्टस् (१९३३) खण्ड ५ संधि क्रमांक ८ पृष्ठ ४०९, ४१०-११
६६. एफ विल्डर सुपरिनटेंडेन्ट अजमेर का मेजर जन सर डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक २७-९-१८१८। (रा० रा० पु० मण्डल)।
६७. उपरोक्त।
६८. केविडिश द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट।
६९. एफ विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र दिनांक २७-९-१८१८, (रा० रा० पु० मण्डल)।

क्रमांक	मराठा हाकिम का नाम	वर्ष	वसूल राशि	विशेष
१.	शिवाजी नाना	१७९१	१,२२,६९३	रुपये ६७९६ का नजराना भी सम्मिलित फौज खर्च लागू नहीं किया गया।
२.	,, ,,	१७९२	२,०४,८६६	सं० ९९५१ का नजराना शामिल, फौज खर्च लागू नहीं किया गया।
३.	पैरों	१८०१	२,००,९९२	न तो नजराना और न फौज का खर्च लागू किया गया।
		१८०२	२,०२,३६५	वतर्पंक ,, ,,
		१८०३	२,०२,८७०	
४.	बालाराव	१८०४-e	२,०२,०९	न तो नजराना और न फौज खर्च वतर्पंक लागू किया गया।
५.	तांतिया सिंधिया	१८१०-१५	२,२९,४०५ ,,	नजराना, फौज खर्च लागू।
६.	बापू सिंधिया	१८१६	२,४७,२९९	भू-राजस्व (असेसमेन्ट)
		१८१७	७३,०४२	फौज खर्च
७.	,,	१८१७	२,५४,४३३	भू-राजस्व, फौज खर्च
			७८,२९९	
८.	,,	१८१८	२,३४,७०५	भू-राजस्व, फौज खर्च
			१,२२,०९०	

७०. विल्डर का पत्र, दिनांक १८-२-१८२० । (रा. रा. पु. मण्डल) ।

७१. माक्कटन महोदय का पत्र, दिनांक ३०-७-१८४० । (रा. रा. पु. मण्डल) ।

७२. लेफ्टीनेन्ट कर्नल सदरलैंड ए. जी. जी. का तत्कालीन भारत सचिव जेम्स थाम्पसन को पत्र, दिनांक ७-२-१८४१ । (रा. रा. पु. मण्डल) ।

७३. विल्डर द्वारा लिखे गये आक्टरलोनी को दिनांक २७-९-१८१६ का पत्र जिसमें मराठों द्वारा उगाहे जाने वाले कर लागों का विवरण निम्न है:—

क्रमांक	असेसमेन्ट	दर प्रतिशत	कर का हवाला
१.	फौज खर्च	५ से ७५	ग्रामों की रक्षा के लिए नियुक्त सेना पर व्यय के कारण ।
२.	पटेलबाब	२ से १२	यह मुकदमों और गांव मुखियाओं पर उनके द्वारा दूसरों की अपेक्षा ज्यादा हिस्सा वसूल करने पर लागू कर ।
३.	भूमबाब	५ से २०	उस सम्पूर्ण भूमि पर जो ठिकानेदारों के पास प्राचीन काल से चली आरही थी और कर मुक्त थी । यह कर इन भूमियों पर लागू किया गया ।
४.	घी बाब	१ से ३	चूंकि ग्रामों को फौज के लिए घी बाजार भाव से कहीं अधिक सस्ता देना पड़ता था अतएव उन्होंने इससे मुक्ति पाने के लिए निश्चित राशि पर देना स्वीकार किया तब से यह कर चलता रहा ।

क्रमांक	असेसमेन्ट	दर प्रतिशत	कर का हवाला
१५.	पाचोतरा	२ से ५ रु०	यह प्रतिशत जिन्सों में राजस्व चुकाने पर वसूल हो जाता था।
१६.	लाव्यचा	२ से ५ रु०	सूबे के हाकिम की पोशाक खर्च।
१७.	पैंमायश	१ से २ रु०	जमीन नापने पर।

७४. भारत सचिव श्री थोमसन द्वारा आगरा से गवर्नर को लिखे पत्र पर श्री सदरलैंड की टिप्पणी, संदर्भ—अजमेर इस्तमरारदार, आगरा, मई १८४१। (रा०रा०पु० मण्डल)।

७५. लेफ्टिनेन्ट कर्नल सदरलैंड द्वारा जेम्स थॉमसन सचिव भारत सरकार को पत्र दिनांक ७–२–१८४१।

७६. केवेंडिश रिपोर्ट दिनांक ११ जुलाई, १८२९।

२

मेरवाड़ा में अंग्रेज़ी शासन का सुदृढ़ीकरण

मेरवाड़ा का पूर्व इतिहास

जून, १८१८ में अजमेर पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद अंग्रेजों का ध्यान सबसे पहले मेरों की तरफ आकर्षित हुआ।[1] अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व कोई भी शक्ति मेरों को परास्त नहीं कर पाई थी। अपनी लूट मार की प्रवृत्तियों तथा पाशविक अत्याचारों के कारण निकटवर्ती पड़ोसी रियासतों में मेर कुख्यात थे। उनका आतंक एवं दुस्साहस इतना बढ़ गया था कि अब अजमेर पर भी उनके धावे होने लगे थे।[2] मेरों की उत्पत्ति पृथ्वीराज चौहान से बताई जाती है। उसके पुत्र गौड़ लाखन ने बूंदी की एक मीणा जाति की महिला से विवाह किया था और उनके वंशधर मेर कहलाये। इस तरह के मिश्रित विवाहों एवं सम्बन्धों के कारण मेर आज भी बरार, चीता, मेरात आदि कई उपजातियों (खांपों) में विभाजित हैं।[3] कर्नल टॉड के अनुसार पन्द्रहवीं शताब्दी में इनमें से अधिकांश ने इस्लाम धर्म अंगीकार कर लिया था। अजमेर के तत्कालीन हाकिम ने बुध मेर को मुसलमान बनाकर उसका नया नाम दाऊदखान रखा था। सामान्यतः मेरवाड़ा के पर्वतीय क्षेत्र के निवासियों को मेर कहा जाता है।[4] १९०१ मे मेरों की कुल जनसंख्या ६२,४१२ थी।[5]

मेर भारतीय आर्य नस्ल के थे। इनका कद लम्बा, शरीर हृष्ट-पुष्ट, गोल मुखाकृति तथा उभरे हुए नाकनक्श होते थे। ये मारवाड़ी बोली बोलते थे जो कि

अजमेर मेरवाड़ा के जन-साधारण की बोली से मेल खाती थी और बहुत कम भिन्नता लिए हुए थी। यद्यपि ये लोग मुख्यतः मांसाहारी थे परन्तु मक्का की राबड़ी और घाट इनका प्रमुख आहार था। ये लोग ज्वार के आटे से बने रोटले प्याज के साथ विशेष रुचि से खाते थे। धूम्रपान और मद्यपान इनमें खूब प्रचलित था।' मेर लोग गांवों में झोंपड़ियां बना कर रहा करते थे। इन झोंपड़ियों की छतें खपरेलों की होती थीं। पुरुष का पहनावा पोतिया बकलानी लंगोटी तथा जूतियां थीं। मेर महिलाएं रंगीन ओढ़नी, कांचली और छींट का घाघरा पहना करती थीं।[६]

अंग्रेजों द्वारा मेरवाड़ा क्षेत्र में आधिपत्य जमाने के पूर्व मेरों की आजीविका कृषि पर निर्भर न होकर लूट खसोट पर निर्भर थी। वैसे यह जाति अपने आदिम काल से ही कृषि जीवी थी।[७] मेर सामान्यतया विश्वासपात्र, सहृदय और उदार होता था। वह अपनी कौम, कबीला, परिवार तथा घर वालों को प्यार करता था।[८] मेर जितना जल्दी आवेश में आता था उतनी जल्दी ही सांत्वना की दो बातों से शांत भी हो जाता था।[९] क्रोधाविष्ट मेर को मरने-मारने में देर भी नहीं लगती थी।

मेरों का पेशा लूट-पाट होते हुए भी उनमें कई चारित्रिक विशेषताएं भी थीं। ये लोग कभी ब्राह्मण, स्त्री, जोगी या फकीर पर हाथ नहीं उठाते थे। अपने बाल-बच्चों व पत्नी को हृदय से प्रेम करते थे। पत्नी के अपमान के प्रश्न को लेकर ये लोग मरने-मारने पर उतारु हो जाते थे। साधारण सी उकसाहट ही एक मेर को पागल बनाने के लिए पर्याप्त होती थी। मेर के हाथ में ढाल तलवार होने पर वह बेधड़क होकर काल से भी दो-दो हाथ करने को आमादा हो जाता था। यद्यपि इनमें मद्यपान तथा फ़िज़ूलखर्ची जैसे दुर्व्यसन अवश्य थे, तथापि इनका सामान्य चरित्र ऊंचा था। स्वभावतः मेर आलसी और संशयपूर्ण मनोवृत्ति के होते थे।[१०]

अजमेर के दक्षिणी भू-भाग का पहाड़ी क्षेत्र मेरवाड़ा, मेरों की मातृभूमि थी। यह क्षेत्र ६४ मील लम्बा तथा ६ से लेकर १२ मील तक चौड़ा था। आदिम युग में ये लोग वनों में विचरण करते और शिकार द्वारा भरण-पोषण करते थे। इस आदिम अवस्था में न तो इन्हें खेतीबाड़ी का ही ज्ञान था और न ये कपड़ों का उपयोग ही जानते थे। इस पर्वतीय क्षेत्र में घने वन फैले हुए थे व पथरीली भूमि होने के कारण यहाँ कृषि संभव नहीं थी। यह क्षेत्र उन समाज विरोधी तत्वों के लिए सुरक्षित शरणस्थली था जो आसपास के क्षेत्रों में लूट-मार कर यहाँ छिप जाया करते थे। दुर्गम क्षेत्र होने के कारण कानून व दंड से बचने के लिए अपराधी यहां प्रायः शरण लिया करते थे।[११]

अतीत में कई बार इन मेरों को कुचलने के लिए सैनिक अभियान भी किये गए थे। अठ्ठारहवीं सदी के तीसरे दशक में जयपुर रियासत के ठाकुर देवीसिंह[१२] ने जयपुर नरेश के कोप से आक्रांत होकर इस क्षेत्र में मेरों के यहां शरण ली

थी।[13] जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने मेरों से इस व्यक्ति को लौटाने की मांग का परन्तु उन्होंने यह अनुरोध ठुकरा दिया। फलस्वरूप सवाई जयसिंह ने मेरों पर चढ़ाई कर उनके गांवों और गढ़ों को तवाह कर दिया था। लगभग एक करोड़ रुपये इस सैनिक अभियान पर जयपुर द्वारा व्यय किये गए थे परन्तु मेरों को दवाने में ये सभी प्रयत्न निष्फल रहे। सन् १७५४ में उदयपुर के महाराणा ने भी मेरों पर आक्रमण किया परन्तु उनको भी सफलता नहीं मिली।[14] इसी प्रकार जोधपुर के विजयसिंह को भी सन् १७८८ में मेरों ने खदेड़ दिया था। सन् १७६० में कंटालिया के ठाकुर ने भायली पर आक्रमण किया परन्तु उसे भी अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े और मेरों ने उसके डेरे को लूट लिया।[16] सन् १८०० में अजमेर के मराठा सूवेदार ने भी मेरों को दवाने का प्रयत्न किया था परन्तु सफलता नहीं मिली।[17] सन् १८०७ में साठ हज़ार सैनिकों ने मेरों पर आक्रमण किया परन्तु वे भी इन्हें दवाने में सफल नहीं हो सके। सन् १८१० में मेरों ने टौंक के अमीर मोहम्मद शाहखान और राजा वहादुर को अपने पहाड़ी क्षेत्र से भगा दिया था। सन् १८१६ में इन्होंने उदयपुर के राणा को एक वार फिर बुरी तरह से हराया था।[18] इस क्षेत्र में व्यवस्था स्थापित करने-हेतु अंग्रेजों के लिए इन विद्रोही मेरों का दमन करना आवश्यक हो गया था।

मेरवाड़ा क्षेत्र से होकर कई ऐसे मार्ग गुज़रते थे जो कि व्यापार के दृष्टि-कोण से काफी महत्वपूर्ण थे, इसलिए जवतक इस क्षेत्र में शांति स्थापित नहीं की जाती, तवतक व्यापार को प्रोत्साहन नहीं मिल सकता था।[19]

अंग्रेज़ी आधिपत्य

अजमेर के प्रथम अंग्रेज़ सुपरिंटेडेन्ट विल्डर ने मेरों को समझा बुझाकर शांति स्थापित करने का प्रयत्न किया था। उसने झाक,[20] श्यामगढ़[21] और लूलवा[22] में रहने वाले मेरों से समझौता कर लिया था। यद्यपि इन प्रयासों के फलस्वरूप क्षेत्र में लूटपाट की घटनाओं में कुछ कमी अवश्य हुई तथापि स्थिति में विशेष सुधार नहीं हो सका और मेरों ने अपने वादों को निभाने में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखाई।[23]

मेरों पर अभियान करने से पूर्व अंग्रेजों ने सर्वप्रथम स्थानीय सूचनाओं एवं जानकारी का संग्रह किया। मार्च १८१६ में इन्होंने नसीरावाद से तीन स्था-नीय पैदल रेजिमेंट, एक घुड़सवार दस्ता और हाथियों पर हल्की तोपों से मेजर लोव्री के नेतृत्व में मेरों के विरुद्ध सैनिक अभियान प्रारम्भ किया। सेना को तीन भागों में विभक्त किया गया था। एक ने लूलवा पर आक्रमण किया, शेष दो ने अलग-अलग दिशाओं व भिन्न-भिन्न मार्गों से झाक पर हमला किया। यद्यपि इस सेना की प्रत्येक टुकड़ी को कड़े प्रतिरोध का मुकावला करना पड़ा परन्तु सुदृढ़

सैन्य संचालन के कारण अंग्रेजों को अपने अभियान में सफलता प्राप्त हुई। मसूदा के ठाकुर देवीसिंह ने भी इस अभियान में अंग्रेजों को सहायता दी। अंग्रेज़ फौज पहाड़ी व जंगल के क्षेत्रों में प्रवेश कर गई तथा वहाँ तीन पुलिस चौकियाँ स्थापित करने में सफल रही। मेरों को मजबूर होकर भविष्य में लूटमार न करने व राजस्व कर देने के समझौतों पर हस्ताक्षर करने पड़े।[२४]

कैप्टिन टॉड जो कि उन दिनों उदयपुर में पोलिटिकल एजेन्ट थे, मेवाड़ सीमा क्षेत्र में स्थित मेरों को अपने अधीन करने में सफल रहे थे।[२५] इन अभियानों के फलस्वरूप, क्षेत्र में शांति छा गई, परन्तु यह शांति आने वाले तूफान की सूचक थी। नवंबर १८२० में मेरों ने सशस्त्र आक्रमण कर तीनों पुलिस चौकियों को रौंद डाला, भीम[२६] दुर्ग पर अधिकार कर लिया और चारों ओर मारपीट मचा दी थी। अंग्रेज़ सुपरिन्टेंडेन्ट विल्डर ने तत्काल मेक्सवैल के नेतृत्व में कई सैनिक टुकड़ियां भेजकर झाक, श्यामगढ़ और लूल्वा पर पुनः अधिकार स्थापित किया था।[२७]

अंग्रेजों ने उदयपुर और जोधपुर से भी सहयोग मांगा तथा आवश्यक तैयारी के बाद बोरवा[२८] और हथून[२९] पर भारी सैनिक शक्ति से आक्रमण किया। यद्यपि अंग्रेजों ने बोरवा पर अधिकार कर लिया था परन्तु मेरों ने अंग्रेज़ी सेना को गंभीर क्षति पहुंचाई और पीछे खदेड़ दिया। अंग्रेजों ने मेवाड़ की सेना की सहायता से एकबार और प्रयत्न किया परन्तु बड़ी ही कठिनाई से मेरों को पराजित कर बरासवाड़ा और मांडला पर अधिकार स्थापित किया जा सका[३०]। मेरों को हार माननी पड़ी और अंग्रेजों ने मेवाड़ और मारवाड़ की सैनिक टुकड़ियों की सहायता से कोटकीराना,[३१] बगड़ी[३२] और रामगढ[३३] आदि दुर्गों पर अधिकार कर लिया तथा दो सौ मेरों को बंदी बनाया गया[३४]। इस तरह मेरवाड़ा अंग्रेजों के अधिकार में आगया। इस अभियान के शीघ्र बाद ही केप्टिन टॉड द्वारा उदयपुर के अधिकतर मेर क्षेत्रों में भी प्रयास किये गये। मेवाड़ में ६०० बंदूकधारी सैनिकों की टुकड़ी गठित की गई और स्थाई भू-राजस्व की व्यवस्था स्थापित की गई। जोधपुर रियासत ने सीमावर्ती ठाकुरों को मेर ग्रामों की व्यवस्था का भार सौंपने के अलावा मारवाड़-मेरवाड़ा क्षेत्र में स्थिति को सुधारने का और कोई प्रयत्न नहीं किया।[३५]

अंग्रेजों के हिस्से में जो भूभाग आया उसे उन्होंने खालसा भूमि में परिवर्तित कर दिया। प्रारम्भिक स्थिति में यद्यपि कुछ क्षेत्र की व्यवस्था का भार खरवा तथा मसूदा के ठाकुरों को सौंपा गया था। झाक, श्यामगढ़ और लूल्वा तथा अन्य ग्रामों में शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये अंग्रेजों ने इन ठिकानेदारों को कतिपय अधिकार प्रदान किये। उन्हें विल्डर की देखरेख में काम करना पड़ता था।[३६]

इस तरह मेरवाड़ा को अंग्रेजों द्वारा पहली बार जीता जा सका था। इसके पूर्व मेरों ने कभी भी किसी बाहरी शक्ति के सम्मुख समर्पण नहीं किया था, और न वहां इसके पूर्व कभी इस तरह के दमनकारी कदम ही उठाये गये थे। परन्तु इस क्षेत्र में स्थाई शान्ति व व्यवस्था कायम करने के पूर्व कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। केप्टिन टॉड उदयपुर के अन्तर्गत जो मेरवाड़ा का क्षेत्र था उस पर वे विशेष ध्यान नहीं दे पाये।[३७] यही हालत जोधपुर राज्य की थी। उसने भी अपना क्षेत्र स्थानीय ठाकुरों के हाथ में छोड़ इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

इसलिए कुछ ही समय बाद यह महसूस होने लगा कि मेरवाड़ा में तिहरी (अंग्रेज-मेवाड़ व मारवाड़) शासन व्यवस्था दोषपूर्ण व नहीं के बराबर है। एक भाग के अभियुक्त दूसरे भाग में शरण लेने लगे। इससे मेरवाड़ा की स्थिति पहले से भी अधिक सोचनीय हो गई थी। इन परिस्थितियों में आवश्यक समझा जाने लगा कि मेरवाड़ा के तीनों हिस्से (अंग्रेज-मेवाड़-मेरवाड़) एक ही अधिकारी व प्रशासन के अन्तर्गत रखे जावें तथा उक्त अधिकारी में दीवानी व फौजदारी के सभी अधिकार निहित हों। उसे पूर्व प्रशासनिक व सैनिक अधिकार भी प्रदान किए जाएं। उक्त अधिकारी रेजिडेन्ट की देखरेख व नियंत्रण में कार्य करे। यह भी तय किया गया कि ८ कम्पनियों की एक बटालियन जिसमें प्रत्येक कम्पनी में ७० व्यक्ति हों, मेरवाड़ा के लिए गठित की जाय। इनमें भर्ती मेरों में से की जाय।

मेवाड़ तथा मारवाड़-मेरवाड़ा

उपर्युक्त फैसले को कार्यान्वित करने के दृष्टिकोण से मेवाड़ के साथ हुई वार्ता के फलस्वरूप मेवाड़ व अंग्रेजों के बीच मई १८१३ में एक समझौता सम्पन्न हुआ। जिसके अनुसार मेवाड़ ने मेवाड़-मेरवाड़ा के तीन परगने जिसमें ७६ ग्राम थे, अंग्रेज सरकार को दस साल के लिए सौंप दिये। महाराणा ने स्थानीय फौजी टुकड़ियों के व्यय के लिये पन्द्रह हजार की वार्षिक राशि भी प्रदान करना स्वीकार किया। प्रारम्भ में मेवाड़ महाराणा को इन परगनों का प्रशासन अंग्रेजों को हस्तांतरित करने में काफी हिचकिचाहट रही थी।

उदयपुर के महाराणा को इस व्यवस्था से अत्यधिक लाभ पहुँचा था। इस व्यवस्था की अवधि सन् १८२३ में समाप्त होने पर, वे इस अवधि को आगामी आठ साल तक और जारी रखने के लिए तत्काल राजी हो गए। इस आशय का एक समझौता दोनों पक्षों के बीच ७ मार्च, १८२३ को ब्यावर में सम्पन्न हुआ। उदयपुर नरेश ने इस बार स्थानीय सैनिक टुकड़ियों के लिए निर्धारित पन्द्रह हजार की वार्षिक राशि के अतिरिक्त पांच हजार की वार्षिक राशि प्रशासनिक व्यय के लिए भी अंग्रेजों को देना स्वीकार किया।[४०]

अंग्रेजों को जोधपुर (मारवाड़) के साथ समझौते में प्रारम्भ में कुछ कठिनाई

का सामना करना पड़ा, क्योंकि जोधपुर नरेश अपने अधीनस्थ भाग के प्रशासन को अंग्रेजों को हस्तांतरित करने में झिझक अनुभव कर रहे थे। परन्तु अन्त में मार्च, १८२४ में जोधपुर के साथ भी अंग्रेजों का ठीक इसी तरह का समझौता हो गया जैसा मेवाड़ के साथ सन् १८२३ में हुआ था। इस समझौते के अनुसार जोधपुर ने अपने मेरवाड़ा क्षेत्र के २१ गाँवों के प्रशासन को आठ वर्षों के लिए अंग्रेजों के अधीन रखना तथा साथ ही पन्द्रह हज़ार की वार्षिक राशि, क्षेत्र में व्यवस्था बनाये रखने के लिए गठित मेर टुकड़ियों के व्यय स्वरूप देना स्वीकार कर लिया। समझौते के अनुसार दोनो रियासतों के नरेशों को खर्चा काटने के बाद हस्तांतरित क्षेत्रों के गाँवों का राजस्व मिलते रहने की व्यवस्था की गई थी। इस व्यवस्था को २३ अक्टूबर, १८३५ में पुनः नये समझौते के द्वारा ८ वर्षों के लिए जारी रखा गया, इसमें भी जोधपुर को पहले की भांति अंग्रेजों को प्रति वर्ष पन्द्रह हज़ार की राशि देने का प्रावधान था। इसके अतिरिक्त जोधपुर ने पहले के २१ गाँवों के अतिरिक्त ७ और नये गाँवों का प्रशासन भी अंग्रेजों को हस्तांतरित कर दिया।[४१]

मेवाड़ के साथ १८३३ में तथा जोधपुर के साथ १८३५ में किया गया उपर्युक्त समझौता सन् १८४३ में समाप्त होने वाला था। इस व्यवस्था को जारी रखने के लिए नये समझौते की आवश्यकता अनुभव की गई। मेवाड़ नरेश ने यह पहल की कि अंग्रेजों को जबतक वे चाहें तबतक मेवाड़ के मेरवाड़ा क्षेत्र के गाँवों का प्रशासन उनके अधीन रखने की अनुमति प्रदान करदी।[४२] जोधपुर रियासत ने भी ऐसा ही किया। वे सात गाँव १८३५ के समझौते के अंतर्गत अंग्रेजों ने अपने प्रशासनिक अधिकार में लिए थे पुनः जोधपुर रियासत को लौटा दिए। परन्तु इस संबंध में कोई स्पष्ट इकरारनामा नहीं हुआ। अंग्रेजों ने सन् १८४७ में दोनों रियासतों द्वारा उनके हिस्से स्थाईतौर पर अंग्रेजों को हस्तांतरित कर दिए जाने के आशय के प्रयत्न किए परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार इन्हीं असंतोषजनक आधारों पर मेरवाड़ा में अंग्रेज़ प्रशासन कई वर्षों तक जारी रहा।[४३]

मेवाड़ के मेरवाड़ा सम्बन्धी गाँवों का प्रश्न सन् १८७२ और १८७६ में पुनः उठाया गया परन्तु सन् १८८३ में अन्तिम रूप से समझौता हो सका। इसमें यह तय किया गया कि ब्रिटिश सरकार मेवाड़ के मेरवाड़ा क्षेत्र के प्रशासनिक व्यय तथा मेरवाड़ा बटालियन और भील कोर के खर्चे की एवज़ में इस क्षेत्र के पूरे राजस्व की हकदार होगी। अबतक की बकाया राशि के लिए मेवाड़ के राणा से मांग नहीं की जाएगी। महाराणा को इसके साथ ही स्पष्टतौर से यह आश्वासन दिया गया कि इस समझौते के कारण मेवाड़-मेरवाड़ा पर उनका स्वामित्व किसी तरह भी प्रभावित नहीं होगा। साथ ही अंग्रेजों द्वारा अपने अधिकार में लिए गए उनके क्षेत्रों का राजस्व जब कभी ६६,००० रुपये की वार्षिक राशि से जो मेवाड़ के मेरवाड़ा

क्षेत्र के प्रशासन तथा मेरवाड़ा बटालियन और भील कोर पर व्यय के लिए मेवाड़ द्वारा अंग्रेजों को देना निर्धारित हुआ था, उससे अधिक की प्राप्ति होने पर इस तरह की पूरी रकम मेवाड़ को लौटा दी जाएगी । इस बारे में मेवाड़ में स्थित अंग्रेज़ रेज़ीडेन्ट प्रति वर्ष पिछले वर्ष के राजस्व का हिसाब मेवाड़ सरकार को प्रस्तुत करते रहेंगे ।[४४]

मारवाड़-मेरवाड़ा के बारे में भी जो मेरवाड़ा क्षेत्र में जोधपुर रियासत का भाग था, कई वर्षों के बाद अंग्रेज़ सरकार व जोधपुर महाराजा के बीच सन् १८८५ में संतोषजनक समझौता हो पाया था । जिसके अनुसार यह तय हुआ कि जोधपुर रियासत का इन गांवों पर सार्वभौमिक अधिकार रहेगा और अंग्रेज़ सरकार उन्हें प्रति वर्ष तीन हज़ार रुपये देगी । यदि अंग्रेज़ सरकार को कभी इन जोधपुर के गाँवों से लाभ होगा तो उसका ४० प्रतिशत जोधपुर रियासत को मिला करेगा । इन शर्तों के आधार पर अंग्रेज़ सरकार इन गाँवों पर अपना संपूर्ण एवं स्थाई प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित कर सकी थी ।[४५]

न्याय-व्यवस्था

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व मेरों की अपनी अनोखी न्याय-व्यवस्था थी । यह व्यवस्था कठोर दंड पर आधारित थी । इन लोगों की यह विचित्र मान्यता थी कि निरपराध व्यक्ति का हाथ यदि गर्म तेल में डलवाया जाए या उसकी हथेलियों पर गर्म लोहे का गोला भी रख दिया जाय तो वह नहीं जलता है । साथ ही वे यह भी मानते थे कि मन्दिर में देवता के सम्मुख रखी हुई संपत्ति को यदि कोई व्यक्ति बिना न्यायोचित अधिकार के उठाने का साहस करता है तो उसे निश्चय ही दैवी प्रकोप का पात्र बनना पड़ेगा । अंग्रेजों की न्याय-व्यवस्था के सम्मुख इन मान्यताओं को समाप्त होना पड़ा । मुकदमों का पंचायतों के द्वारा निपटाने की प्रक्रिया पुनः स्थापित की गई । वादी को अपनी शिकायत लिखित में पंचायत को प्रस्तुत करनी होती थी । प्रतिवादी को अपनी सफाई के लिए लिखित अथवा मौखिक उत्तर देना आवश्यक था । उसे इस बात की सुविधा दी जाती थी कि वह अपने मामले की सुनवाई के लिए पंचायती व्यवस्था अथवा अन्य उपायों में से जिसे चाहे पसन्द कर सकता था । यदि पंचायत प्रक्रिया निर्विवाद होती तो दोनों ही पक्षों से उनके सदस्यों के नाम आमन्त्रित किए जाते थे । दोनों ही पक्षों के सदस्यों की समान संख्या रहती थी । उन्हें यह लिखित आश्वासन देना होता था कि यदि उनमें से कोई भी पंचायत के निर्णय को नहीं माने तो उस व्यक्ति को पंचायत प्रक्रिया के लिए सरकार द्वारा व्यय की गई राशि का एक तिहाई या एक चौथाई अंश स्वयं वहन करना होगा । तत्पश्चात् दोनों पक्षों के कागज़ात जांचे जाते थे व उनमें अपेक्षित भूलें ठीक करने के बाद दोनों पक्षों को वे पढ़कर सुनाए जाते थे । उन्हें सुझाव देने तथा भूल सुधारने

का पूर्ण हक होता था। तत्पश्चात् स्थानीय अधिकारी को आदेश दिया जाता था कि वह पंचायत बुलाएं, गवाहों के नाम उपस्थिति का आदेश जारी करे और कार्यवाही को लेखबद्ध करे। यदि पंच लोग रिश्वत के प्रभाव या अन्य कारणों से न्यायपूर्ण निर्णय न लेकर किसी के हक में अनुचित निर्णय लेते तो उन्हें भी दंडित करने का प्रावधान था। पंचायत के निर्णयों को अन्तिम स्वीकृति एवं आदेशों के लिए अंग्रेज अधिकारियों को प्रस्तुत किया जाता था। अधिकांश मामलों में पंचायतों का निर्णय सर्वसम्मत हुआ करता था। व्यावहारिक दृष्टिकोण से पंचायती न्याय प्रक्रिया विलम्ब के दोषों से रहित थी।[४६]

फौजदारी मुकदमें अंग्रेज अधिकारीगण संक्षिप्त विचारण के द्वारा तय करते थे। परन्तु कतिपय ऐसे मुकदमें जिनमें सबूत पूरे अथवा संतोषजनक नहीं होते, उन्हें पंचायतों को सौंप दिया जाता था।[४७]

मृत्युदण्ड बहुत कम दिया जाता था। हत्या अथवा खून के गम्भीर मामलों में ही शारीरिक दण्ड दिया जाता था। साधारण मामलों में चार माह तक के कारावास का प्रावधान था। बाल अपराधों या महिलाओं की बदचलनी के मामले में सजा नहीं दी जाती थी। जेल-व्यवस्था अपने आप में सुव्यवस्थित थी। कैदियों को प्रतिदिन एक सेर जौ का आटा दिया जाता था। कैदियों की प्रार्थना पर उन्हें कम्बल और कपड़े भी दिए जाते थे, परन्तु इनकी कीमत कैदियों के खर्चे में से काट ली जाती थी। यहाँ तक कि खुराक खर्च तथा अन्य खर्चे भी कैदियों की रिहाई के बाद उनसे वसूल किए जाते थे। जेलों में काम का समय दोपहर से सांयकाल तक रहता था। काम में लापरवाही या अवहेलना करने पर उन्हें दण्ड स्वरूप अतिरिक्त काम करना होता था।[४८]

भूमि-व्यवस्था :

भूमि भूस्वामी की संपत्ति होती थी। इनके मालिक अधिकांशतः किसान ही होते थे। भूस्वामी अपनी इच्छानुसार भूमि को बेच सकता था, व रहन रख सकता था। परन्तु भूस्वामी को यह अधिकार था कि वह उक्त राशि का भुगतान कर जब भी चाहे अपनी जमीन को पुनः प्राप्त कर सकता था। भूमि को दूसरों से जुतवाकर लाभ उठाने वाली व्यवस्था का जन्म यहाँ अभीतक नहीं हुआ था। कृषि अधिकांशतः स्वयं के गुजारे का साधन थी। राजस्व सम्बन्धी सभी अपीलों की सुनवाई अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष होती थी। फसल का चौथा हिस्सा पटेलों द्वारा सरकार को भूराजस्व के रूप में दिया जाता था जो कि तत्कालीन भूराजस्व की अधिकतम सीमा थी। जब कि क्षेत्र के अन्य किसानों से एक तिहाई ही वसूल किया जाता था।

यह निर्विवाद सत्य है कि भूराजस्व निर्धारण की इस पद्धति में किसानों के साथ सख्ती व भ्रष्टाचार के द्वार खुले थे परन्तु समाज में उन दिनों ऐसी ही व्यवस्था

लागू थी और इसमें किसी तरह के मूल-भूत परिवर्तन का मतलव सारी व्यवस्था को अव्यवस्थित कर देना था। भूराजस्व वसूली में कोई विशेप दिक्कत पैदा नहीं होती थी और फसल के मूल्यांकन की प्रक्रिया से किसान परिचित थे। अंग्रेज़ अधिकारियों की राय में तो यदि सरकार फसल का आधा हिस्सा भी भू-राजस्व में लेती तो उन्हें देने में कोई आपत्ति नहीं थी। परन्तु इतनी अधिक भू-राजस्व वसूली इसलिए नहीं की जाती थी कि किसान इतने गरीव थे कि वे कदाचित् ही इतना लगान दे पाते।[४६]

सामाजिक सुधार

लूटमार, गुलामी, कन्या-हत्या, महिलाओं की विक्री जैसी सामाजिक कुरीतियों के अलावा भी मेरों में और कतिपय सामाजिक दोप पाए जाते थे। महिलाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा कितनी थी इसका अन्दाज़ इससे लगाया जा सकता है कि उन्हें चौपायों की तरह वेचा जा सकता था। यहाँ तक कि एक वेटा अपने पिता की मृत्यु के वाद मां को वेचने का हकदार था। इस तरह का अविकार माँ की ममता व उसके प्रति अपने प्रेम की कमी पर आधारित नहीं था। इसके मूल में केवल यही भावना काम करती थी कि उसकी मां को प्राप्त करने में उसके पिता ने नाना को अच्छी खासी रकम दी थी अतएव वेटे को यह हक प्राप्त था कि वह अपनी मां को वेचकर यह रकम वापस प्राप्त कर सकता था। दुनियाँ के किसी भी समाज में ऐसी व्यवस्था कहीं भी देखने को नहीं मिलती है। अंग्रेजों को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने इस कुरीति को समाप्त करने में योग दिया, फलस्वरूप लड़कियों के विधिवत् विवाह होने लगे, कन्याओं का वालवध भी कम हुआ और कालांतर में धीरे-धीरे अन्य सामाजिक सुधारों का मार्ग भी प्रशस्त हो सका।[५०]

सामान्यतः मेरों में चार तरह के दास होते थे। दास-दासियों का क्रय-विक्रय किया जा सकता था। स्वामी और दासी के बीच इस आशय का समझौता होता था कि वह आजन्म अपने स्वामी की वनी रहेगी। इसके अतिरिक्त लूटमार में प्राप्त स्त्री-पुरुप जिन्हें दो या तीन साल में छुटकारे की राशि चुका कर छुड़ाया नहीं जाता तो उन्हें दास वना लिया जाता था। स्वामी और दासियों के बीच विवाह या यौन सम्वन्ध को अनैतिक माना जाता था। यहाँ तक कि स्वामी और दासियों के वीच भाई वहन का सम्वन्ध समझा जाता था। दासों के साथ उनके स्वामियों का व्यवहार उदार और कृपापूर्ण होता था। दास अपनी निजी संपत्ति रख सकता था। यद्यपि इस तरह के धन पर स्वामी का अधिकार होता था, परन्तु कदाचित् ही किसी मालिक ने इस अधिकार का उपयोग कभी किया हो। उपर्युक्त चारों तरह के गुलामों के अतिरिक्त एक और विचित्र दास-प्रथा प्रचलित थी। जव कभी कोई सताया हुआ हिन्दू किसी शक्तिशाली सरदार की शरण में चला आता तो उसे शरण

इस आधार पर मिलती थी कि वह चोटी काट कर मालिक के हाथ में दे दे। मालिक उसे हत शिखा दासों में शामिल कर लेता और उसे संरक्षण व सुरक्षा प्रदान करता था। हतशिखा के मरने पर उसकी सारी संपत्ति मालिक की होती थी। जबतक हतशिखा जीवित रहता, मालिक उसकी लूट-खसोट में से एक चौथाई का अधिकारी होता था।[५१]

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरों में व्याप्त उपर्युक्त तथा अन्य कई कुरीतियों को मिटाने में अंग्रेजों को अत्यंत सफलता मिली। धीरे-धीरे इनमें सुधार होने लगे। एक दूसरे के प्रति उनके आपसी व्यवहार में भी सुधार आया। उनके अपने क्षेत्र में भी शांति स्थापित हुई तथा साथ ही पड़ौसी क्षेत्र जोधपुर, उदयपुर भी उनके हस्तक्षेपों से मुक्त रहे। मेरवाड़ा में शांति स्थापना का जो काम अंग्रेजों ने किया, वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनमें व्याप्त सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में तत्कालीन अंग्रेज़ अधिकारियों ने जिस दृढ़ता, साहस और अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया है, वह सराहनीय है।

मेरवाड़ा बटालियन

अंग्रेजों ने मेरों की मेरवाड़ा बटालियन एक ऐसी अनुशासित सेना तैयार की थी कि जिस पर अंग्रेज़ सरकार किसी भी संकट के समय भरोसा कर सकती थी। बहुत ही कम समय में इन टुकड़ियों को सैनिक तत्परता, चुस्ती और अन्य फौजी नियमों के अनुकूल ढाल दिया गया और सारी बटालियन किसी भी तरह के शत्रु व संकट का सामना करने में सक्षम थी। इस तरह के सैनिक अनुशासन ने जनता में यथासंभव जिम्मेदारी निभाना, स्वच्छता का पालन करना, आदेश मानना, सहज व्यवहार तथा अंग्रेज़ हुकूमत के प्रति विश्वास की भावना पैदा की। इस क्षेत्र में जो अबतक लूट-मार और हत्याओं के कारण कुख्यात था, शान्ति स्थापित हुई। व्यवस्थित समाज का रूप लेने के लिए आवश्यक श्रम और संयम की आदतें धीरे-धीरे मेरों में घर करने लगी।[५३]

कर्नल हाल और डिक्सन की उपलब्धियां

कर्नल हाल ने इस क्षेत्र के विकास के लिए इतना अधिक कार्य किया था कि जब अस्वस्थता के कारण उन्होंने अपना पद कर्नल डिक्सन को सौंपा तो लोगों को बड़ा दुःख हुआ। गवर्नर जनरल श्री सी. टी. मेटकाफ को कर्नल डिक्सन की नियुक्ति इस क्षेत्र में करते समय यह पूर्ण विश्वास था कि डिक्सन उदार, तत्पर, कार्यकुशल, लगनशील और जनसामान्य के हितैषी के रूप में इस क्षेत्र की विषम समस्याओं को निपटाने में सफल होंगे।[५४]

मेरवाड़ा मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र है, जहां अच्छी खेती का विकास संभव नहीं

था। सिंचाई के लिए वर्षा के अतिरिक्त अन्य साधनों का भारी अभाव था। सन् १८३२ में इस क्षेत्र में भीषण अकाल के कारण लोगों को अपनी तथा अपने मवेशियों के प्राण बचाने के लिए यह क्षेत्र छोड़ कर इधर-उधर अन्यत्र जाने को बाध्य होना पड़ा था। सारा क्षेत्र वीरान रेगिस्तान में परिवर्तित हो गया था। प्रशासन के समक्ष यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ था कि कहीं कर्नल हाल ने जो विकास के काम हाथ में लिए थे, वे निरर्थक नहीं हो जाएं। लोगों में लूटमार की प्रवृत्ति पुनः जन्म न ले ले, और लोग अपने घरों व खेतों के धन्धे को छोड़ न दें। प्रशासन के लिए यह जरूरी हो गया था कि वे जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करके उन्हें इस प्राकृतिक प्रकोप से मुकाबले के लिए तैयार करें। इसमें इस व्यय के लिए बहुत बड़ी धनराशि अपेक्षित थी। जनता इतनी गरीब थी कि उससे इसके जुटाने की बात कही नहीं जा सकती थी। पिछड़ी कृषि को विकसित करने की प्रशासन की योजनाओं व कार्यक्रमों में लोग केवल सहयोग मात्र कर सकते थे।[४५]

सबसे प्रमुख काम पुराने तालाबों की मरम्मत और नये जलाशयों का सरकारी खर्चे पर निर्माण का था। प्रत्येक गाँव में खेती को सुधारने के लिए पूरा श्रम और शक्ति लगाने का वातावरण तैयार किया गया। बेरोजगार लोगों की सूचियां तैयार की गई जिससे उन्हें भी खेती के काम में लगाया जा सके। १८३२ के अकाल से लोगों में विश्वास की भावना बनाए रखने के लिए अथक परिश्रम किया गया। सरकारी खर्चपर बड़े पैमाने पर कुएँ खुदवाने का काम हाथ में लिया। इन कुओं को बाद में किसानों को सौंप दिया गया। सरकार के इस कदम ने स्थानीय लोगों में उसके प्रति गहरे विश्वास की भावना उत्पन्न की। जिस क्षेत्र में कुएँ खोदना कठिन काम था, वहां सरकार ने बड़े-बड़े तालाबों का निर्माण कराया जिससे कि आपत्काल में न संचित-सुरक्षित जलभंडार का काम दे सकें। पहाड़ी धाराओं से खेतों की मिट्टी बह जाने और वर्षा के जल का जमीन में न रहने की समस्या भी विकट थी। इस दिशा में खेतों के चारों ओर पत्थरों की दीवारें खड़ी की गई।[४६]

उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त अन्य कतिपय भूमि विकास आयोजनाओं को इस तरह व्यवस्थित ढंग से अपनाया गया कि हजारों बीघा पड़ती भूमि, जहां पहले जंगल थे—अल्प समय में ही कृषि योग्य भूमि में बदल गई। जब लोगों को पता लगा कि सरकार इस भूमि को खेती के लिए वितरित करना चाहती है तो उन्होंने प्रार्थना-पत्र देना शुरू किया। पटेलों की नियुक्तियां की गई और उनके सीमा क्षेत्र निर्धारित किए गए। शुभ मुहूर्त देखकर कई नये गांवों की स्थापना की गई। पटेलों को पट्टा दिया गया, लोगों को बसने के लिए सरकार की ओर से पूरी रियायतें प्रदान की गई। यहां तक कि उनमें कृषि के सामान का भी सरकार की ओर से निःशुल्क वितरण किया गया।[४७]

सरकार और जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करने व उनकी समस्याओं को अविलम्ब दूर करने के लिए अजमेर के सुपरिन्टेन्डेन्ट दौरा करते थे जहाँ वे जाते जनता उनके डेरे पर इकट्ठी हो जाती थी। उनकी कठिनाइयों को सुनकर वहीं उनके निवारण का प्रयत्न किया जाता था। इसका परिणाम यह निकला कि जनता में अंग्रेज़ सरकार के प्रति विश्वास की भावना उत्पन्न हुई[५८]।

सामाजिक जीवन

प्रशासनिक कर्तव्यों की पूर्ति के साथ-साथ सरकार ने इन लोगों में सामाजिक जीवन की भावना पैदा करने के प्रयत्न भी किए। सामाजिक जीवन में प्रमुख रूप से किसानों तथा दस्तकारों का जिनमें मुख्यत: लुहार, बढ़ई, कुम्हार, नाई, सेवक, बलाई आदि का बाहुल्य था। ये जातियाँ कृषि के साथ ही साथ अपने परंपरागत व्यवसाय भी किया करती थीं। किसान का एकमात्र व्यवसाय कृषि था। अन्य जातियों को सेवा के उपलक्ष में किसानों के यहां से नि:शुल्क अनाज मिला करता था। उदाहरणतया ढोली को गाँव में सभी उत्सवों पर ढ़ोल बजाना होता था और चमार को ग्रामवासियों के जूते बनाने व उनकी नि:शुल्क मरम्मत करनी होती थी। चमार का मृत पशु पर अधिकार होता था और उसकी आजीविका एवं निर्वाह का भार सारे ग्रामीण समाज को वहन करना होता था। इसी तरह ढ़ोली का भी सभी परिस्थितियों में समाज पर निर्वाह का दावा रहता था। कुछ ऐसे भू-भाग भी थे जिन्हें कई कारणों से लोग जोतने को तैयार नहीं थे। अंग्रेज़ चूंकि उन्हें खेतों का रूप देना चाहते थे, इसलिए जब किसान इसके लिए सहमत नहीं हुए तो उन्होंने बलाइयों को—जिन्होंने खेती और अन्य कृषि जन्य कामों में अपने कौशल का परिचय दिया था, यह भूमि दे दी गई और वहाँ उन्हें बसा कर रहने के झोंपड़े भी बनवा दिए गए।[५९] इस प्रकार अंग्रेज़ सरकार ने मेरवाड़े में कृषि को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया।

कृषि-विकास

इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि मेरवाड़ा में कृषि-विकास का इतिहास अंग्रेज़ प्रशासन के कड़े परिश्रम का परिणाम है। पहाड़ी नाले जो बरसात में बह कर खेतों के बीच से गुजरते थे उन्हें बाँध दिया गया, कुएँ खोदे गए और लोगों से बिना किसी तरह की व्यय राशि लिए ही प्रशासन ने उन्हें उपयोग के लिए सौंप दिया, बांध और तालाब राज्य के खर्चे से तैयार किए गए। प्रशासन को सफलता तभी प्राप्त हुई जब लोग स्वयं उत्साहित होकर प्रशासन को सहायता देने लगे। लोग उत्साहित होते हैं या अनुत्साहित, यह बहुत कुछ प्रशासन पर निर्भर करता है और इस संदर्भ में तत्कालीन अंग्रेज़-प्रशासन काफी हद तक इस इलाके में सफल रहा।

अंग्रेजों के प्रशासन को यह श्रेय भी देना होगा कि उन्होंने मेरवाड़ा के इलाके में लुटेरों के दलों को समाप्त कर व मेरों को अनुशासित कर शांति स्थापित की। मार्ग, व्यापार के लिए निष्कंटक हो गए। इस क्षेत्र में अराजकता काफी कम हो गई थी। अकाल के दिनों में मवेशियों के अपहरण की घटनाओं को छोड़ कर इस क्षेत्र में शान्ति स्थापित हो गई। फलस्वरूप यही मेर आगे चलकर अंग्रेजों के लिए सैनिक कार्यों में बड़े सहायक सिद्ध हुए।[६०]

सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह में मेरवाड़ा बटालियन पूर्ण रूप से अंग्रेजों की भक्त रही और इसके फलस्वरूप उसे विशेष आदर भी प्राप्त हुआ था। सन् १८७० में लार्ड मेयो ने इसे पूरी तरह सैनिक कोर में पुनर्गठित कर और इसका सदर मुकाम ब्यावर से अजमेर स्थानान्तरित कर दिया था। १८६७ में यह बटालियन भारत सरकार के कमांडर-इन-चीफ के अधीन कर दी गई थी। सन् १६०३ में इसे भारतीय सेना का अंग बना कर और इसका नाम ४४ मेरवाड़ा इन्फेंट्री रख दिया गया था।[६१]

अध्याय २

१. "उन दिनों पश्चिमी घाट के समुद्री तट से देश के आन्तरिक भागों में पूर्व की ओर, उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिणी पूर्वी क्षेत्रों तक संचारित होने वाला व्यापार-मार्ग मेरवाड़ क्षेत्र से होकर गुजरता था। यह क्षेत्र इस व्यावसायिक मार्ग के मध्य में स्थित था तथा मेवाड़ और मारवाड़ की सीमाओं को पृथक् करता था। इस क्षेत्र से केवल व्यापार ही प्रभावित नहीं होता था वरन् दो राज्यों के बीच दृढ़ कपाट के रूप में भी इस भू-भाग का महत्व था। इस क्षेत्र की प्राकृतिक बनावट ही ऐसी है कि गाड़ियों के पहिए उधर से गुजर नहीं सकते थे।"

असि० पोलीटिकल एजेन्ट ब्यावर को श्री एफ विल्डर पोलीटिकल एजेन्ट तथा सुपरिंटेंडेन्ट द्वारा प्रेषित पत्र—अजमेर दि० २० जुलाई, १८२२।

२. सन् १८१८ से लेकर १८३४ तक—अंग्रेजों के राजपूताना में आगमन काल से लेकर मेरवाड़ा की ऐतिहासिक रूप-रेखा, सरकार के आदेशों से प्रस्तुत, फाइल क्रमांक ११९० पृ० १ सन् १८७३ (पूर्व फाइल क्रमांक १४५३) अजमेर।

३. अंग्रेजों के आगमन के पूर्व मेरों की उत्पत्ति, उनका धर्म, इतिहास सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण। फाइल क्रमांक ११९० सन् १८७३, पूर्व क्रमांक

१४५३ पृ० ६, स्केच ऑफ मेरवाड़ा डिक्सन (१८५०) पृष्ठ १ से ६

जोधा रिडमलोत की ख्यात, राजस्थान राज्य पुरातत्व मण्डल पांडुलिपि क्रमांक ७०५ पुरातत्व श्रेणी जो पहले भूतपूर्व जोधपुर रियासत के इतिहास विभाग से उपलब्ध (क्रमांक १३)

४. पश्चिमी राजपूताना की रियासतों के पोलीटिकल एजेन्ट कर्नल जेम्स टॉड द्वारा सी० एफ० विल्डर सुपरिटेन्डेन्ट अजमेर को प्रेषित पत्र, दिनांक ५–१२–१८२०।

५. भारत की जनगणना सम्बन्धी रिपोर्ट—राजपूताना और अजमेर सन् १६०१ पृष्ठ ६२।

६. केप्टिन हॉल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट, दिसम्बर १८३४, फाइल क्रमांक ८ (१८२१) मेर गाँवों की सामान्य जानकारी संदर्भ सामग्री (राज० रा० पु० मण्डल)। स्केच ऑफ मेरवाड़ा, डिक्सन, (१८५०) पृ० ६–१८।

७. कर्नल जेम्स टॉड द्वारा दिल्ली के रेजीडेन्ट सर डेविड ऑक्टरलोनी को प्रेषित पत्र दि० १८–६–२१ फाइल, क्रमांक ए (१) पूर्व, क्रमांक ८। १८२१ (राज० रा० पु० म०) मेर गाँवों सम्बन्धी सामान्य जानकारी।

८. कार्यवाहक पोलिटीकल एजेन्ट द्वारा मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी रेजीडेन्ट मालवा राजपूताना को प्रेषित पत्र दिनांक १७ जून १८२२। (राज० रा० पु० मण्डल)।

६. सचिव भारत सरकार द्वारा राजपूताना मालवा के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर जनरल ऑक्टरलोनी को पत्र फोर्ट विलियम दिनांक १७ जून, १८२२ (राज० रा० पु० मण्डल)।

१०. फाइल क्रमांक ११११०, अंग्रेजों के मेरवाड़ा में आधिपत्य के पूर्व मेरों की उत्पत्ति, उनके धर्म तथा इतिहास का संक्षिप्त विवरण पृ० ६–१३, (राज० रा० पु० मण्डल) स्केच ऑफ मेरवाड़ा डिक्सन (१८५०) पृ० १३–२०।

११. सी० सी० वाट्सन—राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स; अजमेर मेरवाड़ा, खंड १ ए (१६०४) पृ० १३–१७, फाइल क्रमांक ११११०–अंग्रेजों के आधिपत्य के पूर्व मेरों की उत्पत्ति, उनका धर्म तथा इतिहास सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण, पृ० ६–१३ (राज० रा० पु० मण्डल) स्केच ऑफ मेरवाड़ा-डिक्सन (१८५०) पृ० १ से ६।

१२. ठाकुर देवीसिंह पारसोली के जागीरदार थे। (शिवप्रसाद त्रिपाठी) मगरा मेरवाड़ा का इतिहास पृ० सं० ४४ और ४५ (१६१४) बूंदी सिरीज

नं ४८ आलेख संख्या ५३ मेघराम की दीवान को अर्जी दिनांक आसोज शुक्ला सप्तमी, विक्रम संवत् १७८७ (रा० पु० मण्डल)।

१३. मेरों की उत्पत्ति, इतिहास तथा धर्म का संक्षिप्त विवरण पृष्ठ ७ से ८ (रा० रा० पु० मण्डल) तथा शिवप्रसाद त्रिपाठी का मगरा-मेरवाड़े का इतिहास (१९१४) पृष्ठ ४४-४५, वाकया दस्तावेज जयपुर रियासत, बूंदी क्रमांक ७, आलेख संख्या ८५ कातिक शुक्ला अष्ठमी विक्रम संवत् १७८७।

१४. मेर, उनकी उत्पत्ति धर्म तथा इतिहास का संक्षिप्त विवरण (रा० रा० पु० मण्डल) पृष्ठ ८। "मेवाड़ की सेना ने बदनोर के ठाकुर तथा मसूदा के ठाकुर सुल्तानसिंह के साथ हथून पर आक्रमण किया। भयंकर लड़ाई हुई जिसमें ठाकुर सुल्तानसिंह खेत रहा। मेवाड़ की सेना भाग छूटी।" (शिव प्रसाद त्रिपाठी--मगरा मेरवाड़ों का इतिहास (१९१४) पृष्ठ ४६)।

१५. मेरों का संक्षिप्त विवरण: "उनकी उत्पत्ति, धर्म तथा इतिहास" (रा० पु० मण्डल) पृष्ठ ९ "महाराजा विजयसिंह ने अपने भण्डारी के नेतृत्व में एक बड़ी फौज भेजकर चंगवास दुर्ग पर आक्रमण करवाया था परन्तु फौज को हताश होकर विना लड़े ही वापस जोधपुर लौटना पड़ा। कुछ माह बाद रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह के नेतृत्व में पुनः जोधपुर की फौज ने कोट-किशना पर धावा किया परन्तु रावतों ने आक्रमण करके इन्हें खदेड़ दिया। (शिवप्रसाद त्रिपाठी—मगरा मेरवाड़ा का इतिहास (१९१४) पृष्ठ ४६–४७)।

१६. मेरों का संक्षिप्त विवरण, उनकी उत्पत्ति, धर्म तथा इतिहास (रा० पु० मण्डल) पृष्ठ ९। भायलां टाडगढ़ तहसील में है।

१७. मेरों का संक्षिप्त विवरण, उनकी उत्पत्ति, धर्म तथा इतिहास (रा० पु० मण्डल) पृष्ठ ९। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने उन्हें आक्रमण के लिए उकसाया था।

१८. यह अभियान भगवानपुरा के ठाकुर ने महाराणा भीमसिंह के आदेश पर किया था। बरार के निकट हुई लड़ाई में ठाकुर को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। (शिव प्रसाद त्रिपाठी--मगरा मेरवाड़ा का इतिहास १ १९१४--पृष्ठ ४८)।

१९. श्री एफ विल्डर पोलिटिकल एजेन्ट तथा सुपरिनटेन्डेन्ट का असि. पोलिटिकल एजेन्ट ब्यावर को पत्र, अजमेर दिनांक ३०-७-१८२२।

२०. झाक ब्यावर से ६ मील दूर पूर्व में स्थित गाँव है। यह चारों ओर से

पहाड़ियों से घिरा हुआ है। (शिव प्रसाद त्रिपाठी—मगरा-मेरवाड़ा का इतिहास १९१४—पृष्ठ २२)।

२१. श्यामगढ़ ब्यावर से ६ मील दूर नयानगर के पूर्व में तथा मसूदा के पश्चिम में है। यहाँ के निवासी अपने पड़ोसी क्षेत्र में संगठित रूप से लूटपाट किया करते थे। (शिवप्रसाद त्रिपाठी—मगरा मेरवाड़ा का इतिहास १९१४ पृष्ठ २३)।

२२. लूल्वा ब्यावर से ६ मील दूर पूर्व में श्यामगढ़ के दक्षिण में दो मील की दूरी पर स्थित है। शिवप्रसाद त्रिपाठी मगरा—मेरवाड़ा का इतिहास १९१४—पृष्ठ २४)।

२३. फाइल सं० १११० मेरों का संक्षिप्त विवरण पृष्ठ ११–१२ (रा० पु० मण्डल) कैप्टिन एच० हॉल सुपरिटेन्डेन्ट ब्यावर का रेजीडेन्ट मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र दिनांक २०–१०–१८२३।

२४. उपरोक्त।

२५. फाइल क्रमांक १११०, मेरों का संक्षिप्त विवरण पृष्ठ ११–१२ (राज-रा० पु० मण्डल) एफ विल्डर पोलिटिकल एजेन्ट तथा सुपरि-अजमेर का मालवा, राजपूताना और नीमच के रेजीडेन्ट मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र दिनांक २०–५–१८२२।

२६. भीम जिसका प्रचलित नाम पंडला है, टाडगढ़ से पूर्व में १० मील की दूरी पर स्थित है। इस स्थान के निवासी पड़ोसी रियासतें मेवाड़ और मारवाड़ के क्षेत्रों में लूटमार करते रहते थे। (शिवप्रसाद त्रिपाठी–मगरा मेरवाड़ा का इतिहास १९१४–पृ० ३६)।

२७. चीफ-कमीश्नर कार्यालय फाइल क्रमांक १४९९२ (१२) सामान्य विविध फाइल क्रमांक ३–अजमेर और मेवाड़ के मेरों का विद्रोह जेम्स टॉड द्वारा विल्डर को प्रेपित पत्र दिनांक ५–१२–१८२०। जेम्स टाड द्वारा मेक्सवेल को प्रेपित पत्र दिनांक १६–१२–१८२०। विल्डर द्वारा ऑक्टरलोनी तथा टॉड को प्रेपित पत्र दिसम्बर १८२० तथा विल्डर द्वारा कर्नल मेक्सवेल को प्रेषित पत्र (राज० रा० पु० मण्डल)।

२८. बोरवा ब्यावर के दक्षिण में ७ मील की दूरी पर स्थित गाँव है। महाराणा भीमसिंह ने यहाँ एक किला बनवाया था। (शिवप्रसाद त्रिपाठी-मगरा, मेरवाड़ा का इतिहास १९१४–पृष्ठ २६)।

२९. हथूण या अथूण ब्यावर से ९ मील की दूरी पर दक्षिण में स्थित एक गाँव

है। (शि० प्र० त्रिपाठी—मगरा-मेरवाड़ा का इतिहास १९१४—पृष्ठ २५)।

३०. मंडला, भीम का प्रचलित नाम था।

३१. कोट किराना टाडगढ़ से पूर्व में १२ मील दूर एक गाँव है। (शि०-प्र० त्रिपाठी—मगरा—मेरवाड़ा का इतिहास १९१४ पृष्ठ ३७)।

३२. वगड़ी टाडगढ़ से २० मील दूर है। यह जवाजा से ६ मील की दूरी पर है। शि० प्र० त्रिपाठी—मगरा-मेरवाड़ा का इतिहास १९१४ पृष्ठ ३०)।

३३. रामगढ़ सैंदरा स्टेशन से एक मील दूर है। (शि० प्र० त्रिपाठी--मगरा मेरवाड़ा का इतिहास—१९१४ पृष्ठ २९)।

३४. फाइल क्रमांक १११०—मेरवाड़ा की रूपरेखा १८१८ मे अंग्रेजों के आगमन से लेकर १८३९ तक, केप्टिन हॉल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर तैयार सारांश, दिसम्बर १८३४ (राज० रा० पु० मण्डल)।

३५. फाइल क्रमांक ९--१८२१, कमीश्नरी कार्यालय, अजमेर १ ए (१) पुरानी। जी। मेवाड़—मेरवाड़ा १८२१--४७ (रा० रा० पु० मण्डल)। श्री एफ विल्डर को श्री मेक्सवेल द्वारा प्रेपित पत्र दिनांक १३–२–१८२१ तथा कर्नल जेम्स टॉड को श्री सी० मार्टिन द्वारा प्रेपित पत्र दिनांक १८–१–१८२१, २२–१–१८२१।

३६. फाइल क्रमांक १८२१, कमीश्नर कार्यालय, अजमेर १ ए (१) पुरानी। ८ मेर गांव, सामान्य मामले (राज० रा० पु० मण्डल) सचिव भारत सरकार द्वारा मेजर जनरल डेविड ऑक्टरलोनी को प्रेपित पत्र दिनांक २४–१२–१८२२ तथा २६–१–१८२३।

३७. कमीश्नरी कार्यालय अजमेर, फाइल क्रमांक ९ (३) पुरानी। क्रमांक १ सन् १८२१।

३८. फाइल क्रमांक ए (१)। पुरानी ८, मेर गाँवों सम्वन्धी सामान्य मामले (राज० रा० पु० मण्डल) फाइल क्रमांक १११० सन् १८७३ दिसम्वर सन् १८३४ में केप्टिन हॉल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर तैयार विवरण (राज० रा० पु० मण्डल)।

३९. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स अजमेर (१९०४) क्रमांक १–१ पृष्ठ १४–१५, राजपूताना गजेटियर्स (१८७९) पृष्ठ २० स्केच आफ मेरवाड़ा—डिक्सन (१८५०) पृष्ठ १३-२८ कमिश्नरी कार्यालय अजमेर (१९०४) फाइल क्रमांक १० सन् १८२१, ए (१) पुरानी।

क्रमांक १० मेरवाड़ा में मेवाड़ और मारवाड़े के दावों के बारे में कैप्टिन हॉल द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट, कमिश्नर कार्यालय, अजमेर, फाइल क्रमांक ६ सन् १८२१, ए (१) पुरानी ६। मेवाड़—मेरवाड़ा सम्बन्धित मामले। (राज० रा० पु० मण्डल)।

४०. फाइल क्रमांक ६, १८२१ पश्चिमी राजपूताना रियासतों के पोलीटिकल एजेन्ट का पत्र दिनांक २३–१०–१८३५। सी० सी० वाटसन राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १ ए (१९०४) पृष्ठ १४–१५।

४१. अजमेर कमिश्नर फाइल क्रमांक ७ सन् १८२३ मारवाड़—मेरवाड़ा से सम्बन्धित मामले। (राज० रा० पु० मण्डल) पश्चिम राजपूताना की रियासतों के पोलीटिकल एजेन्ट के पत्र दिनांक २–११–१८३५। वीर विनोद पृष्ठ ८६१–८६३।

४२. फाइल क्रमांक ६, १८२१, ए (१) पुरानी क्रमांक ६, अजमेर-मेरवाड़ा १८२१—४७ संदर्भ मामले (राज० रा० पु० मण्डल)। पश्चिमी राजपूताना की रियासतों के पोलीटिकल एजेन्ट का पत्र दिनांक १–७–१८४३।

४३. फाइल क्रमांक ७, १८२२ कमिश्नरी कार्यालय अजमेर ए (१) पुरानी क्रमांक ७ खण्ड २ मेरवाड़ा १८३३–५३। पश्चिमी राजपूताना की रियासतों के पोलीटिकल एजेन्ट का पत्र दिनांक ४–३–१८४७। संबंधित सामग्री (राज० रा० पु० मण्डल)।

४४. अजमेर फाइल क्रमांक ४८ ए २ चीफ-कमिश्नरी द्वारा सचिव भारत सरकार को प्रस्तुत रिपोर्ट (राज० रा० पु० मण्डल)।

४५. जोधपुर सरकार, फाइल क्रमांक पी० ४ (३) २१–ए–२ मेरवाड़ा संबंधी दावे और प्रतिनिधित्व (राज० रा० पु० मण्डल)।

४६. फाइल क्रमांक १११० सन् १८७३। सन् १८३४ में हॉल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर तैयार सारांश (राज० रा० पु० मण्डल)।

४७. उपरोक्त।

४८. मेरवाड़ा के वृत्तांत की रूपरेखा फाइल क्रमांक १११० (राज० रा० पु० मण्डल)।

४९. डिक्सन, स्केच ऑफ मेरवाड़ा (१८५०) पृष्ठ ३५–४२।

५०. फाइल क्रमांक १११०। सन् १८३४ में कैप्टिन हॉल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर तैयार सारांश (राज० रा० पु० मण्डल)।

५१. फाइल क्रमांक १११० सन् १८३४ में केप्टिन हॉल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर तैयार सारांश (राज० रा० पु० मण्डल)।

५२. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स अजमेर—मेरवाड़ा, खंड १ ए (१६०४) पृष्ठ १५-१७।

५३. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स अजमेर-मेरवाड़ा खंड १ ए (१६०४) पृष्ठ १५-१७।

५४. डिक्सन-स्केच ऑफ मेरवाड़ा, (१८५०) पृष्ठ ८२।

५५. उपरोक्त पृष्ठ ८२-८४।

५६. फाइल क्रमांक १११०, राजपूताना रेजीडेन्सी कार्यालय चीफ-कमिश्नर शाखा, जेल फाइल क्रमांक १४५२ (राज० रा० पु० मण्डल)।

५७. चीफ-कमिश्नर कार्यालय, फाइल क्रमांक १११०, मेरवाड़ा की रूपरेखा (१८५०) पृष्ठ ८४-८८।

५८. उपरोक्त।

५९. चीफ-कमिश्नर कार्यालय फाइल क्रमांक १११०—स्केच ऑफ मेरवाड़ा, डिक्सन पृष्ठ ८४ से ८८। (राज० रा० पु० मण्डल)।

६०. फाइल क्रमांक ए (१) पुरानी।८ मेर ग्रामों के सामान्य मामले फाइल क्रमांक १११० सन् १८७३। केप्टिन हॉल द्वारा दिसम्बर १८३४ में प्रस्तुत रिपोर्ट तथा उसके आधार पर तैयार विवरण (राज० रा० पु० मण्डल) स्केच ऑफ मेरवाड़ा—डिक्सन (१८५०) पृष्ठ १३-२८।

६१. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स भाग १ ए, अजमेर-मेरवाड़ा (१६०४) पृष्ठ १३।

२

अजमेर-मेरवाड़ा में अंग्रेजी प्रशासन

अंग्रेजों द्वारा अजमेर-मेरवाड़ा का प्रशासन सीधा अपने हाथ में सम्भाल लेने के बाद भी जिले की तत्कालीन क्षेत्रीय सीमाओं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। एकमात्र परिवर्तन यह हुआ कि सन् १८६० में सिंधिया से अंग्रेजों की संधि के अनुसार इस क्षेत्र में पांच गांव और जोड़ दिए गए। फूलिया का परगना जो कि अजमेर का ही भाग था परन्तु शाहपुरा के राजा के पास था, उसे अंग्रेजों ने सन् १८४७ में अपने अधिकार में ले लिया था और इस तरह शाहपुरा का अजमेर से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। मेरवाड़ा के वे गांव जो अंग्रेजों ने जीतकर १८२३ में अजमेर में मिला लिए थे उन पर अंग्रेजों का सीधा प्रशासन उसी रूप में बना रहा। मारवाड़ के सात गांव जो अंग्रेजों के प्रशासन को सौंपे गए थे उनमें भी किसी प्रकार का कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।[1]

आरम्भिक काल (१८१८–१८३२)

अजमेर, अंग्रेजों के आधिपत्य में आ जाने के बाद, विल्डर को वहां प्रथम सुपरिन्टेडेन्ट नियुक्त किया गया। इसके पूर्व विल्डर दिल्ली के रेजीडेंट के सहायक के रूप में कार्य कर रहे थे।[2]

उन्होंने २६ जुलाई, १८१८ के सिंधिया के अधिकारियों से अजमेर का कार्यभार संभाला। अंग्रेजों ने अजमेर शहर को एकदम वीरान पाया। मराठा व

पिंडारियों के अत्याचारों और दमन के कारण इसकी हालत अत्यंत दयनीय हो गई थी।[४] उन दिनों अजमेर आठ परगनों में विभाजित था, जिसके अन्तर्गत ५३४ गाँव थे और ३९ लाख बीघा (पक्का) कृषि भूमि थी। भूमि यद्यपि बालुई थी, तथापि अत्यन्त उपजाऊ थी, जिसमें खरीफ और रवी की दोनों फसलें होती थीं। कोई भी गांव बिना कुएं के नहीं था। इन कुओं का पानी भी पन्द्रह बीस हाथ से अधिक गहरा नहीं था। इन कुओं का जल, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में पीने योग्य नहीं था तथापि सिंचाई के लिए पूर्णतया उपयुक्त था। लगभग सभी जमींदार राठौड़ थे, केवल कुछ ही जमींदार पठान, जाट, मेर और चीता थे। मेर और चीता जिले के एक छोर पर रहते थे। इस क्षेत्र में एक लम्बे समय तक अशांति बने रहने के कारण यहाँ की जनसंख्या काफी घट गई थी। शान्ति की स्थापना होते ही दूसरी रियासतों में शरण पाने के लिए गए हुए लोग तेजी से अपने घरों को लौटने लगे। लोगों में विश्वास पुनर्जागृत हो जाने के फलस्वरूप कृषि में भी काफी वृद्धि हुई और पुनः समृद्धि के संकेत दृष्टि-गोचर होने लगे।[४]

विल्डर के समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई इस क्षेत्र में प्रचलित विभिन्न मुद्राओं के कारण उत्पन्न हुई। कम्पनी के सिक्के केवल जयपुर तक ही प्रचलित थे, इससे आगे दक्षिण में उनका चलन नहीं के बराबर था। देशी ६ टकसालें मुख्यतः ऐसी थीं जिनके सिक्कों का प्रचलन अजमेर में था। इन टकसालों के लिए चांदी सूरत और बम्बई से आयात होती, और पाली के माध्यम से इन टकसालों को मिला करती थी। अजमेर की टकसाल अकबर के समय से ही चालू थी और प्रतिवर्ष डेढ़ लाख के लगभग सिक्के वहाँ ढ़ाले जाते थे। ये सिक्के शेरशाही कहलाते थे। किशनगढ़ी रुपया जो किशनगढ़ टकसाल में ढ़लता था पिछले पचास वर्षों से प्रचलित था, यद्यपि कभी-कभी अजमेर-शासकों के हस्तक्षेप के कारण इसे बंद कर दिया जाता था। कुचामनी रुपया कुचामन के ठाकुर द्वारा जोधपुर रियासत की आज्ञा के बिना ही ढ़ाला जाता था। जोधपुर के तत्कालीन नरेश उन दिनों इतने असमर्थ थे कि वे इस पर रोक नहीं लगा सके। शाहपुरा टकसाल को भी काम करते हुए ७० वर्ष हो चले थे, यद्यपि उदयपुर के महाराजा ने इसे बंद करने की कई बार कोशिशें की थीं। चित्तौड़ी रुपया मेवाड़ का मान्यता प्राप्त सिक्का था। झाड़शाही सिक्का जयपुर की टकसाल में ढलता था। विल्डर ने विभिन्न मुद्राओं की इस समस्या के निवारणार्थ यह नियम लागू किया कि सरकारी राजस्व फरूखाबादी सिक्कों में चुकाया जाय। इस्तमरारी क्षेत्रों के राजस्व की राशि जो शेरशाही सिक्कों में होती थी, ९ प्रतिशत का "बाध" देकर फरूखाबादी सिक्कों में बदली जा सकती थी। इसके फलस्वरूप प्रत्येक ठिकाने के राजस्व का हिसाब रुपये–आना–पाई में प्रचलित हो सका।[५]

मेरवाड़ा क्षेत्र के पूर्णतः अंग्रेजों के अधीन हो जाने के बाद मेरवाड़ा को विल्डर ने ६ परगनों में विभाजित किया। चार परगने जो अंग्रेज़ सरकार को संधि के अंतर्गत सौंपे गए वे अजमेर के अंग बने। मेवाड़ के हिस्से में तीन परगने टाडगढ़, दवेर और सारोठ रहे तथा मारवाड़ के हिस्से में दो परगने चांग और कोटकिराना आए। इस विस्तृत भूभाग के प्रशासन के लिए तीन प्रमुख भारतीय अधिकारी नियुक्त किए गए। पुलिस का काम अपने कामों के अतिरिक्त राजस्व वसूली भी था। दवेर, टाडगढ़, भापलां और कोटकिराना की राजस्व वसूली टाडगढ़ के तहसीलदार को सौंपी गई। इनमें आठ गांव थे और कुल १३ ढाणियां थीं। उन दिनों तहसीलदार ही अपने जिले का सबसे बड़ा पुलिस अधिकारी भी होता था। सारोठ के तहसीलदार के अधिकार क्षेत्र में सारोठ बरार और बर कांकड़ के परगने थे। इसके अन्तर्गत ५१ गांव और ढाणियां थीं। उत्तरी भूभाग ब्यावर, झाक और श्यामगढ़ के परगने थे इनमें कुल १०६ गांव और ८५२ ढाणियां थीं। इस क्षेत्र के लिए तीसरे तहसीलदार की नियुक्ति की गई थी।[६] सन् १८२४ में विल्डर का स्थानान्तरण कर दिया गया था। अजमेर मेरवाड़ा में इनके प्रशासन के ६ वर्ष कोई विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुए। प्रांत के किसी भी विभाग में उन्होंने कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया। कई पुरानी प्रशासनिक अनियमितताएं विशेषकर राजस्व एवं चुंगी विभाग में यथावत रहीं।

विल्डर ने जिस भूमि का बन्दोबस्त किया उसकी न तो कीमत आंकने की कोशिश की और न लोगों की स्थिति समझने का प्रयत्न ही किया। उसकी असफलता का प्रमुख कारण अत्यधिक कार्यभार और अन्यत्र व्यस्त रहना था। वह अजमेर के सुपरिंटेंडेंट होने के साथ जोधपुर जैसलमेर और किशनगढ़ का पोलिटिकल एजेंट था। केवल इतना ही नहीं उसे प्रशासनिक कार्यों के लिए पूरे कर्मचारी भी प्राप्त नहीं थे। विभागों में कर्मचारियों का भारी अभाव था। सम्पूर्ण जिले का राजस्व तथा पुलिस विभाग का कुल वेतन खर्च प्रति माह १३७४ रुपये था जो विल्डर के मासिक वेतन तीन हजार रुपये के आधे से भी कम था। भारत सरकार ने प्रशासन को विकसित करने के लिए उन्हें निर्देश व निर्धारित नियम भी प्रदान नहीं किए। यहाँ तक कि एक दफा उन्होंने कलकत्तागजट की प्रति चाही तो उन्हें इंकार कर दिया गया।[७] वर्षों के बाद एक अंग्रेज़ सहायक अजमेर के लिए नियुक्त किया गया। विल्डर ने अजमेर के लोगों को पुनर्वास में काफी योगदान दिया। उसने व्यापारियों, व्यवसायियों और उद्योगपतियों को अजमेर में बसने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके लिए उसने देश के कोने-कोने से व्यापारियों को अजमेर में बसने के लिए आमंत्रित किया। इतना ही नहीं उसने कई व्यापारियों और सेठों को सिफारिशी पत्र दिए। इन न्यायाधीशों और दंडनायकों से प्रार्थना की गई थी कि वे इनको बकाया राशि की वसूली में

श्री हेनरी मिडलटन ने विल्डर की कार्य निवृत्ति के बाद अजमेर का पदभार सम्हाला। मिडलटन के समय में प्रशासन में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ। अक्टूबर, १८२७ में मिडलटन के स्थान पर श्री केवेंडिश की नियुक्ति हुई। श्री केवेंडिश ने कई महत्वपूर्ण सुधार कार्य किए और प्रशासन को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उनके अथक प्रयत्न के फलस्वरूप इसमरार, भोम और जागीर बन्दोबस्त किया जा सका। १८३२ में केवेंडिश के स्थान पर मेजर स्पेयर्स की नियुक्ति हुई।

द्वितीय चरण (१८३२–४६) अजमेर जिला पश्चिमी सूबे के अन्तर्गत—

सन् १८३२ में अजमेर जिले को उत्तर-पश्चिमी सूबे के अन्तर्गत ले लिया गया।[9] सन् १८३७-३८ से लेकर १८४०-४१ तक के चार वर्ष अजमेर के लिए भारी विपदा के वर्ष रहे। कर्नल सदरलैंड के समय में लोगों की हालत बुरी तरह बिगड़ गई थी, एक तो वर्षा न होने से अकाल की स्थिति हो गई थी; दूसरे प्रशासन अपने उद्देश्यों में बुरी तरह असफल सिद्ध हुआ था। लगान की सख्ती के कारण पांच सौ परिवारों ने अजमेर जिले से पलायन कर दिया था क्योंकि उनकी सामर्थ्य इतना लगान चुकाने की नहीं थी[10]। मरम्मत के अभाव में आधे के लगभग तालाब वर्षों से टूटे पड़े थे। कुएँ बिना मरम्मत के ढह गए थे। लोगों का आत्मविश्वास इतना टूट चुका था कि कृषि विकास के नाम पर कोई भी किसी को ऋण देने को तैयार नहीं था। किसान एल्फिंस्टन के प्रस्तावित कम लगान की अपेक्षा फसल का आधा हिस्सा देना अच्छा समझते थे[11]। घरों की हालत वीरान खंडहरों जैसी हो चली थी। कमिश्नर के मतानुसार सम्पूर्ण खालसा क्षेत्र गरीबी की चपेट से जकड़ा हुआ था जबकि ताल्लुकेदारों की जमींदारियां इनके मुकाबले में कहीं अधिक अच्छी अवस्था में थीं।[12]

अजमेर जिले में जिस तरह के प्रशासनिक प्रयोग किए गए, उनका परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण रहा। राजस्व वसूली घटते-घटते इस सीमा तक पहुँच गई थी कि मराठों को प्राप्त राजस्व जितनी भी नहीं रही। श्री विल्डर ने आय के स्त्रोतों का वास्तविकता से अधिक अनुमान लगा लिया था। इस प्रारम्भिक भूल के कारण विल्डर और मिडलटन द्वारा किया गया बन्दोबस्त अच्छे वर्षों में किए जाने वाले बन्दोबस्त से भी कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर था। एडमंस्टन का बन्दोबस्त जो इन तीनों में सबसे कम था, वह भी फसल के आधे हिस्से की वसूली का था। परन्तु फसलों में दोनों ही फसलें शामिल थीं, अतएव एक न एक फसल चौपट होने की स्थिति के कारण यह व्यवस्था बुरी तरह से असफल रही। प्रति सिंचित एकड़ भूमि पर ३१ प्रतिशत के अनुसार ३९ रुपये का राजस्वभार था जो १८३३ के रेगुलेशन ९ के अन्तर्गत उत्तर-पश्चिमी सूबे के लिए निर्धारित लगान की दर से कहीं दुगना था। अजमेर में लागू

किया गया बन्दोबस्त साधारण नहीं था, और लोगों को भारी कष्ट में डाले बिना इसकी वसूली संभव नहीं थी।

दार्शनिक करावान व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी, क्योंकि व्यक्तिगत निर्धारित देय की वसूली की उचित व्यवस्था नहीं थी। पुरानी व्यवस्था के स्थान पर, जिसके अन्तर्गत पटेल और पटवारी हर किसान से फसल का आधा भाग वसूल किया करते थे, संयुक्त जिम्मेदारी के सिद्धान्त को लागू किया गया था। परन्तु यह व्यवस्था असंभव सिद्ध हुई क्योंकि प्रत्येक किसान से उसकी भूमि के आधार पर निर्धारित लगान सरकार द्वारा वसूल कर लेने पर उसके पास भरण-पोषण जितना भी नहीं बच पाता था[13]।

फरवरी, १८४२ में मेजर डिक्सन को अजमेर का सुपरिंटेंडेन्ट नियुक्त किया गया। इस पद के अतिरिक्त उनके पास मेरवाड़ा के सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा मेरवाड़ा बटालियन के कमांडर का कार्यभार भी था। इनके कार्यभार सम्हालने के साथ ही अजमेर के प्रशासनिक इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हुआ। आगामी ६ वर्षों के दौरान ४,५२,७०७ रुपयों की राशि तालाबों, बांध और इनकी मरम्मत पर व्यय की गई। कृषि विकास के लिए किसानों को अग्रिम राशि दी गई तथा डिक्सन अपने व्यक्तिगत उत्साह के कारण किसानों को प्रोत्साहित करने में सफल हुए। सरकार को इन कामों से लाभ पहुँचाने के दृष्टिकोण से भी ऐसे गाँवों को जो अपनी जगह से नये बांधों के समीप बसना चाहते थे अनुमति प्रदान की गई।[14]

डिक्सन की उपलब्धियां—

सन् १८४२ का वर्ष अजमेर के प्रशासनिक काल की विभाजक रेखा माना जा सकता है। इसी वर्ष कर्नल डिक्सन मेरवाड़ा के साथ-साथ अजमेर के भी सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए। उनकी सेवाओं का समादर करने के दृष्टिकोण से सरकार ने उन्हें यह अधिकार दिया कि वे उत्तरी-पश्चिमी सूबे के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर से सीधा पत्र व्यवहार कर सकते थे तथा दोनों जिलों का सम्पूर्ण असैनिक प्रशासन उनके अधीन रख दिया गया था। इस तरह वे सीधे लेफ्टीनेन्ट गर्वनर के प्रति उत्तरदायी थे और अजमेर मेरवाड़ा के प्रति ए० जी० जी० उतने ही उत्तरदायी रह गये जितने कि वे राजपूताना की रियासतों के बारे में थे। इस तरह के परिवर्तन से केवल दोनों जिलों का विलय ही नहीं हुआ वरन् दोनों जिलों के सामान्य प्रशासन पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। इस तरह सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद और अधिकारों में भी वृद्धि हुई और उसका सीधा सम्पर्क लेफ्टीनेन्ट गवर्नर से हो गया[15]।

अपने वर्तमान पदभार के अतिरिक्त मेरवाड़ा बटालियन की कमान भी जून, १८५७ तक डिक्सन के हाथों में रही। ब्यावर गिर्जाघर में उनकी कब्र आज भी मेरों के लिए श्रद्धास्थली है और काफी लोग वहाँ जाकर मनौती मानते हैं। मेरों ने

इस उदार अधिकारी की सेवाओं की स्मृति को आज तक जाग्रत रख छोड़ा है। परकोटे से घिरे ब्यावर शहर का निर्माण डिक्सन की देन थी और संभवतया भारत में डिक्सन ही अन्तिम अंग्रेज़ थे जिन्होंने परकोटे वाले किसी शहर का निर्माण कराया हो। डिक्सन के देहावसान के साथ ही अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासनिक इतिहास का द्वितीय चरण समाप्त होता है। यह समय अजमेर-मेरवाड़ा के लिए भौतिक विकास का चरण था और केवल इसी काल में संभवतया पहली बार निर्धारित लगान वसूल हो सका।[१६]

सन् १८४८ तक अजमेर के सरकारी आय-व्यय का निरीक्षण कलकत्ता से हुआ करता था परन्तु १८४६ के बाद अजमेर के आय-व्यय का निरीक्षण आगरा में होने लगा। गवर्नर जनरल की यह मान्यता थी कि अजमेर जिला, स्पष्टतया नागरिक प्रभार होने से इसे उत्तर-पश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर के अधीन रखना लाभप्रद होगा। इन दिनों कर्नल डिक्सन का ओहदा कमिश्नर स्तर तक उन्नत कर अजमेर जिले का प्रशासन सीधा लेफ्टिनेन्ट के नियन्त्रण में रख दिया गया था। डिक्सन की अदालतों से सभी न्यायिक अपीलें भविष्य में आगरा में होने लगीं। इससे पूर्व ये अपीलें राजपूताना के ए० जी० जी० सुना करते थे।[१७]

तृतीय चरण (१८४८–६६)

सन् १८४८ तक ए०जी०जी० अजमेर के कमिश्नर हुआ करते थे तथा सुपरिंटेंडेंट उनके अधीन कार्य करते थे। इस समय तक अजमेर जिला स्पष्टतया गैर नियमन् क्षेत्र था। जिले से सरकार को राजस्व की केवल वार्षिक रिपोर्ट ही प्रस्तुत हुआ करती थी। ब्रिटिश कानून न तो यहाँ लागू ही किए गए थे और न यह सदर न्यायालय के न्यायिक अधिकार क्षेत्र में था। १८५३ में कर्नल डिक्सन की नियुक्ति कमिश्नर के पद पर की गई व ए०जी०जी० को अजमेर के प्रशासन-कार्य से मुक्त कर दिया गया।[१८] १८५३ के पहले, अजमेर मेरवाड़ा के अधिकारी सुपरिंटेंडेंट कहलाते थे और ये दिल्ली के रेजीडेंट के अन्तर्गत थे, बाद में मालवा-राजपूताना के रेजीडेंट के तहत रहे और सन् १८३२ के बाद इन्हें कमिश्नर के अन्तर्गत रखा गया।[१६] अजमेर-मेरवाड़ा को राजस्व सदर बोर्ड के अन्तर्गत लेने में किसी तरह के विशेष आदेश नहीं पारित हुए। परन्तु अंतिम वर्षों में यह स्वतः धीरे-धीरे उस कार्यालय के नियंत्रण में चला गया। सन् १८६२ में न्यायिक सेवाओं और पुलिस विभाग को पृथक् कर दिया गया। उत्तर-पश्चिमी सूबे में प्रचलित सभी कानून धीरे-धीरे अजमेर मेरवाड़ा में भी लागू किए गए। इन वर्षों में अजमेर-मेरवाड़ा भी नियमन् प्रान्त में शुमार किया जाने लगा।[२०] सन् १८५८ में अजमेर व मेरवाड़ा को मिलाकर एक जिला कर दिया गया तथा उसे डिप्टी-कमिश्नर के अधीन रखा गया। ए० जी० जी० को अजमेर के कमिश्नर का पद

भी प्रदान किया गया था और कमिश्नर के कार्य के लिए उसे उत्तर-पश्चिम सूबे (एन. डब्ल्यू. पी.) के अधीन रखा गया।[२१] ए. जी. जी. राजस्व कमिश्नर, सेशन कोर्ट के न्यायाधीश व सिविल कोर्ट के जज की हैसियत से काम करते थे। सामान्य प्रशासनिक मामलों में वे उत्तर-पश्चिमी सूबे की सरकार के विभिन्न विभागों के अध्यक्षों के प्रति उत्तरदायी थे।[२२]

प्रथम डिप्टी कमिश्नर कैप्टिन जे०सी०ब्रुक्स के अनुसार अजमेर और राजगढ़ परगने के किसानों की स्थिति रामसर के किसानों से अच्छी थी। रामसर के किसान सामान्यतः बहुत गरीब थे। श्री ब्रुक्स को भी अपने पूर्वाधिकारियों की भांति उन सभी बाधाओं से संघर्ष करना पड़ा। क्षेत्रीय समस्याओं का निवारण पहले की तरह ही जटिल बना रहा। जिलों में मवेशियों का व्यापक अभाव हो चला था। सन् १८४८ के भीषण अकाल ने क्षेत्र को एक तरह से झकझोर दिया था। हजारों की संख्या में मवेशी जो निकटवर्ती क्षेत्रों में चरने के लिए ले जाए गए थे, नष्ट हो गए। जिला इस भयंकर क्षति की पूर्ति आसानी से नहीं कर सका। खाद की इतनी भारी कमी हुई कि तालाबों के पेटे में जमी मिट्टी ही खाद के रूप में काम में ली जाने लगी। इस दिशा में मेरवाड़ा की स्थिति दूसरे जिलों की अपेक्षा कुछ अच्छी रही। बन्दोबस्त के बाद टाडगढ़ परगने में अफीम की खेती काफी अधिक मात्रा में बढ़ चली थी। परन्तु नयानगर शहर के आसपास के किसानों की हालत दयनीय ही थी।[२३]

इनके अतिरिक्त और भी कई कठिनाइयां पैदा हो चली थीं जिससे लगान वसूली में बाधा होने लगी। पटवारियों के कागजात खाली बन्दोबस्त रेकार्ड की नकलें मात्र थे। प्रत्येक किसान यह मान कर चलता था कि उसका लगान निर्धारित है और लगान नहीं चुकाने वालों के स्थान पर घाटे की पूर्ति किसानों से करने की व्यवस्था को वे अन्यायपूर्ण समझते थे। मेरवाड़ा में अधिकांश सिपाहियों में लगान की रकम बकाया चली आ रही थी। जहाँ बन्दोबस्त कठोर था वहाँ ये लोग जमीन जोतने की मेहनत से जी चुराया करते थे। कर्नल डिक्सन जो मेरवाड़ा बटालियन के कमांडर और जिले के सुपरिंटेंडेंट भी थे सिपाहियों का बकाया लगान उनके वेतन से काट लिया करते थे। परन्तु जब ये कमांडर और सुपरिंटेंडेंट के पद पृथक् कर दिए गए, तब यह दुहरी व्यवस्था संभव नहीं रह सकी।[२४]

उन दिनों जिस किसान की फसल नष्ट हो जाती वह अपना निर्धारित लगान इधर-उधर से कर्ज लेकर चुकाता था। बन्दोबस्त के बाद लगान न चुकाने वालों की शेष राशि की क्षतिपूर्ति के लिए गाँव समाज में राशि के विभाजन की प्रक्रिया समाप्त करा दी गई थी। सम्मिलित जोतों से आय सम्बन्धी हिसाब नहीं रखे जाते थे और सरकार से अकाल के दिनों में प्राप्त सहायता की राशि सारे गाँव द्वारा काम में ली जाती थी। फलस्वरूप उन लोगों को बहुत कम राशि मिल पाती थी

जिन्हें वास्तविक सहायता की जरूरत होती थी। पटवारियों को नाममात्र का वेतन मिलता था और वे गांवों में लोगों को सूद पर कर्जा देने का काम किया करते थे। कैप्टिन ब्रूक्स ने पटवारियों के सेवा-नियमों में परिवर्तन किया था। सरकारी खजाने पर भार डाले बिना पटवारियों को भी अच्छा पारिश्रमिक मिल सके इस आशय से उन्होंने उनके क्षेत्र व हलकों का विस्तार किया और प्रत्येक पटवारी के अन्तर्गत आने वाले छोटे-छोटे गांवों की संख्या दुगुनी कर दी।[२५]

डिप्टी कमिश्नर मेजर लॉयड ने तो सन् १८६० में सम्पूर्ण क्षेत्र का व्यापक दौरा कर अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र की सामान्य स्थिति तथा क्षेत्रीय विकास के लिए आवश्यक व अविलम्ब कार्यवाहियों के बारे में विस्तृत एवं महत्वपूर्ण रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। अपनी इस रिपोर्ट में उन्होंने सन् १८४९ से लेकर १८५३ तक अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र की स्थिति का १८६० की स्थिति के साथ तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया। मेजर लॉयड के अनुसार "जिले की स्थिति में दिनों-दिन तेजी से सुधार होता जा रहा था। वे क्षेत्र जहां झाड़ियां व छितराए हुए जंगल थे वहां अब लह-लहाते खेत नजर आने लगे थे। नये-नये भवनों का निर्माण तीव्रगति से हो रहा था।"[२६]

सन् १८६६ में डिप्टी कमिश्नर ने लगान वसूली की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लागू किया जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण सरकारी लगान पटेलों के माध्यम से वसूल करने के आदेश जारी किए गए। इसके पहले प्रत्येक किसान से लगान अलग-अलग वसूल किया जाता था। यह वसूली वास्तव में लम्बरदार के माध्यम से होती थी जिसे तहसील का चपरासी मदद करता था। यह प्रक्रिया साधारणतया अटपटी अवश्य लगती है परन्तु किसानों के अनुकूल होने के कारण यह चल निकली थी।[२७]

अंग्रेज-प्रशासन की लोकप्रियता :

सन् १८१८ से लेकर १८६६ तक के अजमेर के सम्पूर्ण प्रशासन को असफल ठहराना उचित नहीं होगा। इस काल में कर्नल हॉल और कर्नल डिक्सन के प्रयासों से जनता को लूटपाट से काफी हद तक छुटकारा मिला व मेरों को कृषि प्रधान व शान्तिप्रिय बनाने में सरकार को सफलता मिली। मेर-बटालियन ने इस काम में सरकार की बहुत मदद की। मेर-बटालियन केवल पुलिस निगरानी ही नहीं वरन् सैनिक गार्ड का काम सम्हालने के भी योग्य हो गई थी। दोनों जिलों में जो तालाब व बंधेबांधे गए उनसे भी क्षेत्र की समृद्धि को बल मिला। यद्यपि सरकार द्वारा लगान वसूली प्रतिवर्ष एक सी दर पर नहीं हो पाई। थॉमसन के आदेशों के अन्तर्गत जो व्यवस्था की गई उसके अनुसार जमीन पर किसान का कब्जा स्वीकार किया गया तथा प्रत्येक गांव के लिए बीस वर्षों की अवधि के लिए साधारण लगान की दरें निर्धारित की गईं थीं। व्यवस्था की इस नई प्रक्रिया से क्षेत्र के किसानों को

जमींदारों व सरकारी अधिकारियों की मनमानी व शोषण से मुक्ति मिली और वे लोग अपने श्रम व उद्यम का लाभ उठाने में समर्थ हो सके। जिले का पुलिस-प्रशासन अन्य प्रान्तों के प्रशासनों के आधार पर गठित किया गया। थोड़े बहुत उत्पात कुछ जमींदारों ने अवश्य किए जिनका संदेहास्पद सम्बन्ध डाकुओं और चोरों से था, अन्यथा सारे क्षेत्र में शांति बनी रही। जेल अनुशासन अच्छा था। एक कालेज की स्थापना की गई और गांवों में शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। इन सभी प्रशासनिक विभागों में विभागीय अध्यक्षों द्वारा वार्षिक निरीक्षण तथा देखरेख की समुचित व्यवस्था की गई थी।[२८]

अजमेर-मेरवाड़ा में अंग्रेज़ी प्रशासन को जिलों में कानून और व्यवस्था की स्थिति मजबूत होने तथा अजमेर शहर में कई विभिन्न क्षेत्रों से उकसाहट और तनाव का संकट पैदा होने पर भी जून, १८५७ से मार्च, १८५८ तक शांति बने रहने से बल मिला। यहाँ तक कि इस संकट की परिस्थिति में भी अजमेर के कमिश्नर की कचहरी प्रतिदिन लगा करती थी और व्यापार निर्विघ्न जारी था।[२९]

अजमेर-मेरवाड़ा के निवासियों के इस तरह के शांतिप्रिय और राजभक्त स्वभाव की सराहना अजमेर के कार्यवाहक डिप्टी कमिश्नर कैप्टिन ब्रुक्स,[३०] अजमेर के सहायक कमिश्नर लेफ्टिनेन्ट वाल्टर,[३१] कार्यवाहक सहायक कमिश्नर (ब्यावर) एवं लेफ्टिनेन्ट पियर्स[३२] ने अपनी रिपोर्टों में की थी। ब्रिगेडियर जनरल पी. लॉरेंस ने घटनाओं की जो रिपोर्ट प्रेषित की थी उसमें यह आशा उन्होंने व्यक्त की कि इस जिले द्वारा राजभक्ति का जो परिचय दिया गया उसकी वायसराय तथा भारत सरकार सराहना करेगी[३३]। अपनी रिपोर्ट के साथ जिले में घटित अपराधों की जो सूची इन्होंने भेजी उसमें बहुत कम संगीन अपराधों का उल्लेख था। राजनीतिक उथल-पुथल के वर्ष में इतने कम अपराध की घटनाएं जिले की प्रशासनिक स्थिरता पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। मेरों ने १८५७ के विद्रोह की घटनाओं के घटते ही यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वे अपने यहाँ आंतरिक उत्पात और अपराधों पर कड़ी निगाह रखेगें। जिले के केन्द्रस्थल नसीराबाद में भारतीय सैनिकों की एक पूरी ब्रिगेड द्वारा विप्लव और कतिपय अन्य विद्रोही पलटनों द्वारा कूच करते समय राह में पड़ने वाले गांवों के विद्रोह के बावजूद भी उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाओं का दृढता से पालन किया। सन् १८५५, १८५६ तथा १८५७ में संगीन जुर्म और अन्य अपराध क्रमशः २०३९, १४७७ तथा १५०७ रहे। १८५६ के मुकाबले में १८५७ में अपराधों में नाममात्र की ही वृद्धि हुई जबकि १८५५ के अपराधों की तुलना में सन् ५७ के अपराध के आंकड़े बहुत कम थे।[३४]

अंग्रेजों के अधीन अजमेर-मेरवाड़ा का प्रशासन जैसा अच्छा होना चाहिए था वैसा नहीं था। प्रशासन के किसी भी विभाग का कार्य इतना अच्छा नहीं था

कि वह पड़ोसी रियासतों के लिए आदर्श बन सकता।[३५] यदि अजमेर के लोगों ने खुले विद्रोह में भाग नहीं लिया तो इसका श्रेय अजमेर के प्रशासन को नहीं दिया जा सकता। इसका मुख्य कारण जिले के लोगों का राजनीतिक पिछड़ापन था।

अंग्रेजों के प्रशासन-तंत्र की कमजोरियां :

प्रशासन के बहुत अच्छा नहीं होने के कई कारण थे। अजमेर चारों ओर से पर्वत श्रेणियों से घिरा विस्तृत मैदानी भूभाग है। इसके दक्षिण में स्थित मेरवाड़ा सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र है। यहाँ तक कि कई गाँवों में तो बैलगाड़ी का पहुँचना भी असंभव था। ढालू घाटियों में ही खेती की जाती थी। कर्नल डिक्सन ने अधिकांश जलाशय इसी पहाड़ी क्षेत्र में बनवाए थे। इनमें से कुछ जलाशयों तक पहुँचने का मार्ग ही नहीं था। वहाँ केवल पैदल चलकर पहुँचा जा सकता था।

इसके अतिरिक्त मेरवाड़ा जिले का एक बड़ा भूभाग अंग्रेजों के अधिकार में नहीं था। यह अत्यन्त ही असंतोषजनक ढ़ग से कुछ अवधि के लिए पट्टे पर लिया हुआ क्षेत्र था। लोगों की बोली और रहन-सहन उत्तर-पश्चिमी सूबों की अपेक्षा गुजरात के अधिक निकट थी। फिर भी इन जिलों को उत्तर-पश्चिमी सूबों के अन्तर्गत रखा गया। सबसे बड़ा असंतोष इस क्षेत्र में वहाँ की सरकारी भाषा फारसी को लागू करने के कारण पैदा हुआ। यह भाषा लोगों के लिए अंग्रेजी की तरह ही मुश्किल थी। फारसी जुमलों का सरकारी दस्तावेजों में खूब प्रयोग किया जाता था जिससे वाक्य के वाक्य लोगों को सुनने पर भी अर्थहीन लगते थे। इसलिए इनमें उसके प्रति असंतोष होना स्वाभाविक था।[३६]

कर्नल हॉल और कर्नल डिक्सन की सफलता का कारण उनके द्वारा अपनाए गए विशेष प्रयास थे, जिनका सामान्यतया प्रशासन में अभाव पाया जाता है। इन दोनों ने प्रत्येक कार्य में जिले की आवश्यकता को प्राथमिकता दी थी। प्रशासन इनको नकेल नहीं सका था। ये दोनों पत्राचार की परिपाटी में भी ज्यादा नहीं उतरते थे तथा सरकारी कामकाज में स्थानीय भाषा का भी खूब प्रयोग करते थे। केन्द्रीय सरकार के कठोर नियन्त्रण के अभाव के कारण भी इनको काम करने की व्यापक छूट मिली हुई थी। इसलिए इनको सफलता मिलना स्वाभाविक था। अपनी पहल व उत्साह से इन दोनों अधिकारियों का प्रशासन लोकप्रिय सिद्ध हुआ। दोनों जिलों के छोटे होने से भी जनता को विशेष प्रशासनिक असुविधा नहीं होती थी।[३७]

आगे चलकर जब अजमेर और झांसी जिलों के अधिकारियों का एक ही सूची में समावेश किया गया तो उसके बड़े ही खराब परिणाम निकले। अजमेर के रेलमार्गों तथा हिमालय के ठंडे स्थलों से बहुत दूर होने के कारण प्रशासनिक विभागों के अध्यक्षों के व्यक्तिगत निरीक्षण से यह बहुत कुछ अछूता रहा। इसके अतिरिक्त यह जगह झांसी की अपेक्षा इतनी अधिक खर्चीली थी कि अच्छे अधिकारी यहाँ

पर अपनी नियुक्ति या निरीक्षण को सदा टालने के प्रयत्न में रहते थे[३८]। यहाँ के अधिकारियों का अल्प वेतन भी इस क्षेत्र की उपेक्षा का एक कारण था। कर्नल डिक्सन, जिन्होंने जिले की व्यवस्था व यहाँ की आर्थिक स्थिति का विशेष अध्ययन किया था, दुर्भाग्य से प्रशासन सेवा में अल्प वेतन रखने के पक्ष में थे जबकि इसके विपरीत कैप्टिन ब्रुक्स की मान्यता थी कि इस क्षेत्र में जिला अधिकारियों के अधिक स्वतंत्रता से काम करने में उनका अल्प वेतन बड़ा ही बाधक है।[३९] इस पूरे काल में सरकार ने विकास कार्यों के बजाय आर्थिक कटौती पर ज्यादा ध्यान दिया। जिन गाँवों के लोगों ने सरकारी अध्यापकों को वेतन भुगतान के लिए राशि देने में आनाकानी की, वहाँ स्कूल बन्द करने के आदेश दिए गए।[४०] इसके अलावा कमिश्नर के यहाँ स्थाई रूप से रहने के कारण प्रशासन में और भी शिथिलता आ गई थी। कमिश्नर इस जिले के डिस्ट्रिक्ट व सेशन कोर्ट के न्यायाधीश भी थे। उनके एक साथ अधिक समय तक अजमेर में नहीं रह पाने के कारण मृत्यु दंड के अपराधियों को फैसले के अभाव में लम्बे समय तक हवालाती कैदी बने रहना पड़ता था। उनको अपने निर्णय के लिए सेशन्स कोर्ट की बैठकों की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। जिले की सड़कें और यातायात अत्यन्त ही पिछड़ी हालत में था। क्षेत्र की समृद्धि के आधार बांध व जलाशय मरम्मत के अभाव में सदा ही ढहते रहते थे।[४१]

सरकार ने कर्नल डिक्सन को जब कमिश्नर नियुक्त किया था तब इसके पीछे केवल उनकी महत्वपूर्ण सेवाओं की सराहना का ही दृष्टिकोण नहीं था, अपितु प्रशासनिक आवश्यकता भी प्रमुख रही थी। कमिश्नर का पद ए०जी०जी० से अलग करने का उद्देश्य ए०जी०जी० को असैनिक प्रशासन के व्यस्त कार्यभार से, जिनमें उनका अधिकांश समय नष्ट हुआ करता था, मुक्त करना था। कर्नल डिक्सन को कमिश्नर के पद पर नियुक्त कर उन्हें नागरिक प्रशासन के सम्पूर्ण काम सौंप दिए गए थे। असैनिक प्रशासनिक कार्यभार के कारण पहले ए. जी. जी. का काफी समय तक अजमेर से निकलना ही नहीं हो पाता था। इस कारण राजपूताना की रियासतों से सम्बन्धित राजनीतिक कामकाज के लिए समय निकालना उनके लिए कठिन हो गया था। नई व्यवस्था के अनुसार जहाँ तक नागरिक प्रशासन का प्रश्न था, कर्नल डिक्सन का सीधा सम्बन्ध एवं पत्र व्यवहार उत्तर-पश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेंट से कायम कर दिया गया था।[४२] परन्तु कर्नल डिक्सन के देहावसान के बाद अजमेर और मेरवाड़ा का प्रशासनिक भार वहाँ एक डिप्टी कमिश्नर की नियुक्ति कर उसके हाथों में सौंप दिया गया था तथा ए. जी. जी. को वापस अजमेर का कमिश्नर नियुक्त कर दिया गया था। इस प्रकार कर्नल डिक्सन के देहान्त के समय से लेकर सन् १८७१ तक अजमेर-मेरवाड़ा ए० जी० जी० राजपूताना के अन्तर्गत एक डिप्टी कमिश्नर ही बना रहा। सन् १८५८ से १८७१ तक ए० जी० जी० उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार के अधीन थे। साल में छः महीने ए. जी. जी. का कार्यालय अजमेर

से २३० मील दूर आबू पर्वत पर रहता था। इन्हें अजमेर के राजस्व कमिश्नर, सेशन कोर्ट के न्यायाधीश, चीफ-सिविल कोर्ट के न्यायाधीश पद पर कार्य करना होता था तथा वे सामान्य प्रशासनिक मामलों में उत्तर-पश्चिमी सूबों के विभिन्न विभागाध्यक्षों के प्रति उत्तरदायी थे। इस व्यवस्था के कारण ए. जी. जी. वर्ष में केवल एक वार ही अजमेर में कचहरी कर पाते थे। इस कारण कई अभियुक्तों को वहुधा साल भर तक हवालात में वंद रहना पड़ता था।[४३]

ए. जी. जी. अपने कमिश्नर के कार्य में ही इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें रियासतों से सम्वन्धित राजनीतिक कार्यों के लिए समय ही नहीं मिलता था। कर्नल कीटिंग की यह वहुत सही मान्यता थी कि कोई भी व्यक्ति राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट पद पर कार्य करते हुए कमिश्नर की हैसियत से अजमेर जिले के साथ न्याय नहीं कर सकता है।[४४]

ए०जी०जी० राजाओं में व्याप्त वुराईयों को समाप्त करने व उन पर नियंत्रण रखने में भी असफल रहे। इसके लिए उन्हें दोषी इसलिए नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यदि उन्हें व्यस्त कार्यभार से मुक्त रखा जाता तो वे सम्भवतः अपने व्यक्तिगत प्रभाव का भी उपयोग करने में सफल हो सकते थे। यदि ए०जी०जी० को प्रशासनिक कार्यों से समय मिला होता तो वे विभिन्न रियासतों का दौरा कर वहाँ प्रशासन में फैली वुराईयों को रोकने की ओर ठोस कदम उठाते व इस वात का स्वयं निरीक्षण करते कि राजाओं ने सुधारों के जो आश्वासन दिए, वे पूरे हो रहे हैं या नहीं। इस तरह की देखरेख और निकटतम सम्पर्क के अभाव में अंग्रेजों और राजपूताने के **रजवाड़ों** के वीच अलगाव भी वढ़ता रहा। सेशन कोर्ट, सिविल अपीलों की सुनवाई तथा विभागाध्यक्षों के साथ संदर्भ जानकारी के पत्राचार में ही वे इस तरह व्यस्त रहते थे कि राजाओं व रियासतों सम्वन्धी मामलों की देखरेख का उनके पास समय ही नहीं था।[४५]

पूर्ववर्ती वीस वर्षों में ए०जी०जी० एक वार ही वीकानेर व वांसवाड़ा का दौरा कर सके इससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपनी राजनीतिक जिम्मेदारियों को विल्कुल नहीं निभा पा रहे थे। इस तरह के भारी कार्यभार का तथा एकतंत्र प्रणाली का कुप्रभाव यह हुआ कि अजमेर जिला घोर उपेक्षा का शिकार हुआ। राजस्व वोर्ड के एक वरिष्ठ सदस्य ने फरवरी १८६९ में अपने अजमेर प्रवास के वाद सरकार को प्रस्तुत रिपोर्ट में इस व्यवस्था की कड़ी टीका-टिप्पणी की। उन्होंने लिखा कि "वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत जिले की हालत में यद्यपि यह पड़ोसी रियासतों की तुलना में अवश्य कुछ अच्छी है तथापि अधिक सुधार की अपेक्षा नहीं की जा सकती।"[४६]

इस दुहरे प्रशासन के दोषों के अलावा उन्हें अन्य वहुत सी प्रशासनिक त्रुटियां

भी दृष्टिगोचर हुई। जिले में बड़े सैनिक महत्व के काम चल रहे थे इसलिए नसीराबाद तथा जिले में अन्यत्र नियुक्त सेना सम्बन्धी बहुत सी समस्याएं सामने आने लगीं। परन्तु नसीराबाद स्थित सेनाएं बम्बई प्रेसीडेंसी के नियंत्रण में थीं, क्योंकि यहां कि टुकड़ियां बम्बई सेना का अंग मानी जाती थीं। परिणामतः एक ही जिले पर नियंत्रण के चार पृथक्-पृथक् स्रोत थे; भारत सरकार, ए०जी०जी०, उत्तर-पश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेंट गवर्नर और बम्बई सरकार। वायसराय ने भी इन असुविधाओं तथा इनसे उत्पन्न निश्चित दोषों को स्वीकार किया था। जिले के लोगों की आर्थिक गिरावट की स्थिति यह थी कि उसमें हैसियत वाला (केवल एक अपवाद को छोड़कर) कोई भी जमींदार ऐसा नहीं था जो सर तक कर्ज में डूबा हुआ न हो और जिसकी जमींदारी उसके वास्तविक मूल्य से अधिक राशि में बंधक न रखी हुई हो। अधिकारी एक ओर तो अपने न्यायिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत डिगरी करते थे और दूसरी तरफ प्रशासनिक अधिकारी के रूप में उन पर रोक के आदेश जारी करते थे। वास्तव में स्थिति इस सीमा तक पहुँच गई थी कि निकट भविष्य में ही अविलम्ब प्रभावशाली प्रशासनिक परिवर्तन आवश्यक हो गया था।[४७]

चौथा चरण : पुनर्गठन (१८७०–१६००) :

उत्तर-पश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने जिले के प्रशासन को विकसित करने व सर्वोच्च नियंत्रण को नियमित बनाने के दृष्टिकोण से जिले के प्रशासन को पुनर्गठित करने की दिशा में कुछ सुझाव दिए थे। उनके अनुसार जिले में व्याप्त प्रशासनिक अनियमितताओं का एकमात्र हल प्रांत को अजमेर तथा मेरवाड़ा के दो पृथक्-पृथक् जिलों में विभाजित करना था। प्रत्येक जिले के लिए अलग-अलग सुपरिटेंडेंट, ए०जी०जी० की मातहती में नियुक्त एक नये अधिकारी के अधीनस्थ हो।[४८] इस नई व्यवस्था को लागू करने पर प्रशासनिक व्ययभार में ३५,८०८ रुपयों की वृद्धि होती थी और यदि इनमें नये सुपरिंटेंडेंट के कार्यालय के अधीनस्थ सेवाओं के व्ययभार तथा सुपरिटेंडेंट के प्रतिवर्ष चार माह के दौरों का अनुमान से प्रतिदिन के सात या आठ रुपयों के हिसाब से होने वाला व्यय और जोड़ दिया जाता तो व्यय-भार प्रतिवर्ष ४५,००० रुपए तक पहुँचता था।[४६]

वायसराय महोदय ने जिले को दो पृथक् जिलों के रूप में विभाजन के सुझाव को अनावश्यक समझा। उनके अनुसार न तो क्षेत्र ही इतना विस्तृत था और न राजस्व ही इतना पर्याप्त था कि उसके लिए दो पृथक् जिलाधिकारियों को औचित्य-पूर्ण ठहराया जा सके। उनके अनुसार सूबे के वर्तमान स्वरूप को कायम रखते हुए मेरवाड़ा के लिए एक सहायक अधिकारी की अलग से नियुक्ति करने पर उस समस्या का व्यावहारिक रूप से समाधान हो सकता था। वायसराय के अनुसार सबसे बड़ी आवश्यकता अजमेर जिले के लिए एक कमिश्नर के पद का निर्माण कर उस पर एक

ऐसे योग्य व्यक्ति की नियुक्ति की थी जो बुद्धिमान, अनुभवी एवं गैर नियमन प्रांतों के प्रशासन का अनुभव रखता हो तथा वह स्थाईतौर पर अजमेर रहे। कर्नल ब्रुक्स और इंगलिस दोनों ही अधिकारियों ने अजमेर प्रवास के समय वायसराय को यह सुझाव दिया था कि सामान्य प्रशासन चाहे सर्वोच्च सरकार अथवा ए० जी० जी० या उत्तर-पश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन रहे परन्तु जिले में एक उच्च अधिकारी की जो निरन्तर अजमेर में रह सके अत्यधिक आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त दीवानी मामलों के निर्णय के लिए विशेष प्रावधान की भी आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी।[५०]

सन् १८७० में वायसराय ने इसलिए अजमेर के लिए निम्नांकित प्रशासनिक पदों की स्वीकृति प्रदान की:—

पद	विवरण	राशि
१. कमिश्नर	दो हजार रुपया मासिक वेतन—वार्षिक वेतन-वृद्धि १०० रुपए, पद-शृंखला २५०० रुपए तक एवं औसतन स्थाई	२५०० रुपए
	प्रवास भत्ता।	१५० रुपए
२. डिप्टी कमिश्नर	रु. १०००, मासिक, वार्षिक वेतन-वृद्धि ५० रुपए-वेतन शृंखला १४०० तक।	१२०० रुपए
३. न्यायिक सहायक (भारतीय)	७०० रुपए, वार्षिक वेतन-वृद्धि ५० रुपए, वेतन शृंखला १००० रुपए तक।	८५० रुपए
४. सहायक कमिश्नर मेरवाड़ा		८०० रुपये
५. अतिरिक्त सहायक कमिश्नर मेरवाड़ा (भारतीय)		३०० रुपये
६. अतिरिक्त सहायक कमिश्नर अजमेर (भारतीय)		४०० रुपये
७. कमिश्नर कार्यालय		४०० रुपये
८. न्यायिक सहायक कार्यालय		३०० रुपये
	कुल	६,६५० रुपये

इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुल ६,६५० रुपये मासिक खर्च था जो वर्तमान मासिक खर्च पर २७३४ रुपए, अर्थात् ३२८०८ रुपए का प्रतिवर्ष अतिरिक्त भार था।[५१]

इस प्रकार १८७१ में अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासन में बड़ा महत्वपूर्ण

परिवर्तन हुआ । अजमेर-मेरवाड़ा उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार के नियंत्रण से हटाकर भारत सरकार के नियंत्रण में परराष्ट्र एवं राजनीतिक विभाग के अधीन कर दिया गया । ए० जी० जी० को इस प्रान्त का चीफ-कमिश्नर नियुक्त किया गया व प्रान्त के लिए एक अलग पद कमिश्नर का कायम किया गया । अजमेर और मेरवाड़ा में एक-एक सहायक कमिश्नर की नियुक्ति की गई । इस परिवर्तन के अन्तर्गत कमिश्नर को गैर नियमन् प्रान्त के गवर्नर के समकक्ष अधिकार प्रदान किए गए । इस प्रान्त का पुलिस सुपरिन्टेडेंन्ट तथा मुख्य न्यायाधीश भी वनाया गया । डिप्टी कमिश्नर को दूसरे गैर नियमन् प्रान्त के डिप्टीकमिश्नर के समकक्ष अधिकार व स्तर प्रदान किया गया । सहायक कमिश्नर मेरवाड़ा के अधिकार जिले के उपखंड अधिकारी जैसे रखे गए । इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत कमिश्नर पर राजस्व संबंधी किसी तरह का उत्तरदायित्व नहीं था । उसे प्रति तीन माह में एक बार महिने भर के लिए मेरवाड़ा का दौरा करना होता था अथवा आवश्यकतानुसार उसे समय-समय पर अपने उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत तथा जिले के उपखंड के मौलिक अथवा अपील सम्बन्धी फैसलों के लिए थोड़े समय के लिए भी उक्त क्षेत्र का दौरा करना आवश्यक था ।[५२]

लेफ्टिनेंट गवर्नर प्रान्त के शासन सम्बन्धी अधिकार ए०जी०जी० के हाथों में तीन कारणों से दे देना आवश्यक समझते थे:—

(१) ए०जी०जी० के अधिकार में पड़ोसी रियासतों पर भी देखरेख ज्यादा प्रभावशाली हो सकेगी ।

(२) यह व्यवस्था क्षेत्र के इस्तमरारदारों के हक में भी रहेगी क्योंकि इनकी भूमि-व्यवस्था भी पड़ोसी देशी रजवाड़ों जैसी ही थी ।

(३) नियमित अंग्रेज़ी प्रशासन की अपेक्षा इस गैर नियमन् क्षेत्र के लिए सीधे सादे व परिस्थितिवश नियंत्रण की आवश्यकता थी ।[५३]

परन्तु लेफ्टिनेंट गवर्नर के मतानुसार इसे उत्तर-पश्चिमी सूबे के नियंत्रण में रखने के तर्क में ज्यादा वजन था । उनके अनुसार उत्तर-पश्चिमी सूबों के अन्तर्गत रखने से राजस्व, पुलिस, जेल तथा शिक्षा विभागों पर अनुभवी विभागाध्यक्षों की देखरेख सम्भव हो सकती थी । रेल मार्ग खुल जाने से निरीक्षण नियमित रूप से सम्भव था । हमेंशा ऐसे एक व्यक्ति का मिलना बड़ा मुश्किल होता जिसमें राजनीतिक निपुणता व प्रशासनिक योग्यता का समावेश हो । अतएव लेफ्टिनेंट गवर्नर ने अजमेर-मेरवाड़ा को उत्तर-पश्चिम सूबे के अधीन रखने का सुझाव दिया व साथ ही उनकी राय थी कि उन सभी प्रश्नों पर जो अजमेर व निकटवर्ती राज्यों के बीच खड़े हों। ए०जी०जी० का कमिश्नर की हैसियत से सामान्य नियंत्रण रहे परन्तु राजस्व, पुलिस

और न्यायिक मामलों संबंधी जिला अधिकारी, उत्तर-पश्चिमी सूबों की सरकार के अधीन रहे जिससे कि ए०जी०जी० को दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक मामलों से मुक्त किया जा सके।[५४]

परन्तु वाईसराय ने ए.जी.जी., स्थानीय अधिकारीगण, सर डब्ल्यू मूरे तथा इंगलिश से विचार-विमर्श के पश्चात् यह मत प्रकट किया कि जबतक अजमेर का प्रान्तीय प्रशासन भारत सरकार को हस्तान्तरित नहीं कर दिया जाता है तबतक प्रशासन की वर्तमान दोषपूर्ण प्रक्रिया जारी रहेगी। ए०जी०जी अपने राजनीतिक उत्तरदायित्वों के लिए भारत सरकार के अधीन थे, सार्वजनिक निर्माण-विभाग के लिए ए०जी०जी० गवर्नर जनरल की कौंसिल के प्रति उत्तरदायी थे। अजमेर के कमिश्नर के रूप में वह उत्तर-पश्चिमी सूबों की सरकार के नियंत्रण में थे। नसीराबाद सम्बन्धी सैनिक महत्त्व के कार्यों के लिए वे बम्बई प्रेसीडेंसी के मुखापेक्षी थे। इसलिए प्रशासन के हित में था कि एक ही प्रान्त पर बहुविध नियंत्रणों को समाप्त किया जाए। गवर्नर जनरल की कौंसिल ने इसलिए यह निर्णय लिया कि अजमेर के लिए एक चीफ कमिश्नर का नया पद कायम कर ए. जी. जी. को अजमेर का चीफ कमिश्नर भी नियुक्त किया जाए। ए०जी०जी० को चीफ कमिश्नर की हैसियत से भारत सरकार के "परराष्ट्र विभाग" के अधीन रखा गया। चीफ कमिश्नर की हैसियत से वे अजमेर-मेरवाड़े के वित्त व ज्यूडीशियल कमिश्नर होंगे। ज्यूडीशियल कमिश्नर का न्यायालय अजमेर-मेरवाड़ा का सर्वोच्च न्यायालय होगा इसमें कमिश्नर की अदालत के निर्णयों के विरुद्ध जो कि डिस्ट्रिक्ट एवं सेशन्स के स्तर की थी—अपील की सुनवाई होगी।[५५]

अजमेर-मेरवाड़े के प्रशासन का नियंत्रण गृह विभाग की अपेक्षा परराष्ट्र विभाग के अन्तर्गत रखने के दो विशेष उद्देश्य थे :—

(१) यह जिला रियासतों से घिरा हुआ था इसलिए उनसे सम्बन्धित प्रश्न सदा ही उठा करते थे।

(२) अन्य विकसित क्षेत्रों की अपेक्षा यहाँ औपचारिक जटिलता को भी कम करना जरूरी समझा गया था। यह भी निर्णय लिया गया कि उत्तर-पश्चिमी सूबों की सरकार के शिक्षा विभाग के निदेशक, सफाई कमिश्नर, जेल एवं टीकों सम्बन्धी निरीक्षक अजमेर का दौरा कर अपनी रिपोर्ट चीफ कमिश्नर के माध्यम से ठीक उसी तरह प्रस्तुत करेंगे जैसा कि मध्य प्रान्त के सम्बंधित अधिकारीगण बरार क्षेत्र के बारे में अपनी रिपोर्ट हैदराबाद स्थित रेजीडेंट के माध्यम से प्रस्तुत करते थे।[५६]

१८७७ में फिर भारत सरकार ने वित्तीय कारणों से इस जिले के प्रशासन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। डिप्टी कमिश्नर का पद समाप्त कर दिया गया। कमिश्नर के अधीन अजमेर और मेरवाड़ा उपखंडों के लिए दो पृथक् असिसटेन्ट, प्रशासन में मदद के लिए नियुक्त किए गए। प्रत्येक असिसटेन्ट कमिश्नर को भारतीय दंड

संहिता के अन्तर्गत आने वाले अपराधों के निर्णय-हेतु जिला दंडनायक के अधिकारों के अलावा राजस्व तथा चुंगी कलक्टर के अधिकार भी प्रदान किए गए, जिनके लिए उसे कमिश्नर की देखरेख व उसके आदेशों के अन्तर्गत काम करना था। केकड़ी में अतिरिक्त असि० कमिश्नर की जगह एक छोटा अधिकारी नियुक्त किया गया। १८७७ में प्रशासनिक सेवाओं को इस तरह घटाया गया—

१—कमिश्नर	रुपए	२०००—००
२—असिस्टेन्ट कमिश्नर, अजमेर	,,	१०००—००
३—असिस्टेन्ट कमश्निर, मेरवाड़ा	,,	८००—००
४—छावनी दंडनायक	,,	६००—००
५—न्यायिक सहायक	,,	८००—००
६—अतिरिक्त असि० कमिश्नर, अजमेर	,,	४००—००
७—डिप्टी मजिस्ट्रेट	,,	१५०—००

उपर्युक्त प्रशासनिक व्यवस्था १ मई, १८७७ से लागू की गई।[५७] इस तरह अजमेर-प्रशासन को सन् १८७७ में जब पुनर्गठित किया गया तो डिप्टी कमिश्नर का पद समाप्त कर दिया गया और यह अनुभव किया गया कि अजमेर का प्रशासन कमिश्नर सम्हाले तथा उसकी व्यक्तिगत सहायता के लिए एक असिस्टेन्ट कमिश्नर रहे। असिस्टेन्ट कमिश्नर के जिम्मे स्वतन्त्र रूप से कुछ न्याय विभाग के काम भी थे। कुछ समय बाद जब यह अनुभव किया जाने लगा कि कमिश्नर के पास बहुत अधिक काम है तब धीरे-धीरे असिस्टेन्ट कमिश्नर को अधिकाधिक काम सौंपे जाने लगे। सरकारी अनुज्ञापत्रों के अनुसार पूर्ववर्ती डिप्टी कमिश्नर को जो अधिकार प्राप्त थे वे उसे प्राप्त हो गए। असिस्टेन्ट कमिश्नर भूराजस्व और चुंगी का कलेक्टर, जिला दण्डनायक, उपन्यायाधीश प्रथम श्रेणी, कोर्ट ऑफ वार्ड्स का व्यवस्थापक, जिला बोर्ड का अध्यक्ष तथा उप वन संरक्षक अधिकारी के कार्य करने लगा। अतिरिक्त असिस्टेन्ट कमिश्नर कोषाध्यक्ष का काम सम्हालता था। इसके अतिरिक्त वह प्रथम श्रेणी दंडनायक, प्रथम श्रेणी उप न्यायाधीश, जिला बोर्ड का सचिव होता था तथा चुंगी व अफीम संबंधी कुछ विभागीय काम भी देखता था।[५८]

निम्नांकित अंकतालिका[५९] से यह स्पष्ट होता है कि कैसे घाटे का बजट पूर्ति के बजट में परिवर्तित हुआ—

वर्ष	राजस्व	व्यय	अन्तर
१८७८—७९	६६०६८३	५१०५६९	१५०११९
१८८९—९०	१०१३४९८	५२००९१	४९३४०७
१८८९—९०	११०७४११	५२३२३१	५८४१८८

प्रशासनिक पुनर्गठन के वाद पहले साल ही लगभग पचास हजार का घाटा, डेढ़ लाख के फायदे में बदल दिया गया। आगामी दस वर्षों में आय में ४,४६,७२८ रुपए अर्थात् ६७ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई और ४,३४,०६६ रुपए का लाभ अर्थात् २८६ प्रतिशत से अधिक रहा। इन्हीं वर्षों में जवकि प्रशासन व्यय केवल दो प्रतिशत से कुछ ही अधिक वढ़ा था जवकि पुनर्गठन के पूर्ववर्ती तीन सालों में प्रतिवर्ष प्रशासनिक व्यय आय से अधिक था व लगभग पचास हजार का प्रतिवर्ष घाटा रहता था।[६०] इस आर्थिक उपलब्धि का दुष्प्रभाव प्रशासनिक कार्य कुशलता पर पड़ना स्वाभाविक था। प्रशासनिक खर्चों में कमी के औचित्य को सिद्ध करने के लिए अजमेर में १८७४ का शिड्यूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट १५ लागू किया गया। अंग्रेजों ने अजमेर के साथ यह सवसे वड़ा अन्याय किया था। अजमेर के प्रशासन को आर्थिक दृष्टिकोण से देखना अनुचित था। अजमेर जैसे छोटे से व राजपूत रियासतों से घिरे एकाकी जिले का प्रशासनिक व्यय अधिक होना स्वाभाविक था। १८१८ में अजमेर के अंग्रेज़ों के अधीन आने के पूर्व राजनीतिक परिस्थिति के कारण जिले का अधिकांश भाग वड़ी-वड़ी जमींदारियों के रूप में राजपूतों के अधिकार में चला गया था। इन जमींदारियों की आय एक हजार से लेकर एक लाख रुपए तक थी। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग दो तिहाई अजमेर से सरकार की आय नगण्य सी थी। ये इस्तमरारदार नाममात्र का नजराना अंग्रेज़ सरकार को देते थे।

सन् १८७७ के वाद जिले के प्रशासनिक कार्य में कई कारणों से वृद्धि हो गई थी। पहला कारण, १८८७ का वन्दोवस्त था जो कि अपने पूर्ववर्ती वन्दोवस्त के मुकावले कहीं अधिक जटिल था। उसमें भूराजस्व निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों के कारण राजस्व सम्वन्धी काम वढ़ गया था। दूसरा कारण, १८८४ में अजमेर में सदर आवकारी व्यवस्था का लागू होना था। तीसरा कारण, आयकर कानून लागू किया जाना था। इसके अलावा अजमेर तक रेलमार्ग स्थापित हो जाने से भी वित्तीय कार्यभार वढ़ गया था। जिले में स्वायत्त शासन संस्था नियम लागू करने के कारण पहले से ही कार्य के भार से दवे अजमेर के प्रशासन की स्थिति नये भार के कारण और भी विगड़ गई।

सन् १८८० में अजमेर के कमिश्नर को कुछ समय के लिए राजपूताना और पश्चिमी राजपूताना की रियासतों के उन भूभागों पर जहाँ रेलमार्ग का निर्माण हो गया था, सेशन्स न्यायाधीश का काम सौंपा गया था। उसे उन सभी अपराधों के वारे में निर्णय करने होते थे जो अवतक अलवर के पोलिटिकल एजेंट, रेजीडेन्ट जयपुर और पश्चिमी रियासतों की एजेन्सी के अधिकार क्षेत्र में थे।[६१]

प्रशासनिक पुनर्गठन के अन्तर्गत अजमेर-मेरवाड़ा में केवल तीन तहसीलदार और तीन नायव तहसीलदार रहे। सन् १८८३ में घटाकर तीन तहसीलदार और दो नायब तहसीलदार ही रहने दिए। उत्तर-पश्चिमी सूवों में तहसीलदार राजस्व कार्य

के अलावा राजस्व तथा फौजदारी अपराधों की सुनवाई और निर्णय भी किया करता था। अजमेर में तहसीलदार को इन उपरोक्त कामों के अलावा सामान्य नागरिक मामलों में मुन्सिफ का काम भी करना होता था। उत्तरी-पश्चिमी सूबों में नायब तहसीलदार के पास न्यायिक काम नहीं रहता था। अजमेर जिले में ये लोग अपने अन्य राजस्व कार्यो के अतिरिक्त तृतीय श्रेणी दण्डनायक व मुन्सिफ का काम भी करते थे। अतएव अजमेर में तहसीलदार कर्मचारियों को जो काम करने पड़ते और जो जिम्मेदारियां वहन करनी पड़ती थीं, वैसी उत्तर-पश्चिमी सूबों में वहाँ के तहसील कर्मचारियों को नहीं करनी पड़ती थीं। उत्तर-पश्चिमी सूबों की तहसीलों की तुलना में अजमेर तहसील अधिक बड़ी थी।[६२]

अजमेर और मेरवाड़ा के दोनों जिलों का राजस्व कार्य एक अधिकारी के जिम्मे था जो राजस्व अतिरिक्त सहायक आयुक्त (रेवेन्यू एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर) कहलाता था तथा उसका सदर कार्यालय अजमेर में स्थित था।[६३]

अजमेर और मेरवाड़ा जिले को तहसीलों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक तहसील एक तहसीलदार के अधीन थी और उसकी सहायता के लिए नायब तहसीलदार होता था। सन् १८५८ के पूर्व में तीन तहसीलें अजमेर, रामसर और राजगढ़ थीं। राजगढ़ तहसील सन् १८५८ में भंग कर दी गई और रामसर तहसील सन् १८७१ में जिले के पुनर्गठन के समय समाप्त कर दी गई थी। हॉल के कार्यकाल में मेरवाड़ा तीन तहसीलों में विभक्त था—ब्यावर, टाडगढ़ और सारोठ। कर्नल डिक्सन की मृत्यु के बाद सारोठ की तीसरी तहसील ब्यावर में मिला दी गई थी[६४]।

तहसीलदार के अधीन गिरदावर होते थे जिन्हें अपनी तहसीलों के अधिकार क्षेत्र में राजस्व एवं प्रशासनिक अधिकार प्राप्त होते थे। ये अपने हल्के के विभिन्न ग्राम अधिकारियों के कामों की देखरेख, निगरानी और उनके द्वारा तैयार किए गए आंकड़ों व सूचियों में संशोधन व परिवर्धन का काम करते थे। पटवारी गाँव के लेखालिपिक थे। प्रत्येक पटवारी के क्षेत्र में दो या अधिक गाँव रहते थे तथा उसकी सहायता के लिए कई बार सहायक पटवारी भी होते थे। ये लोग गाँव के राजस्व का हिसाब रखते थे, रजिस्टर तैयार करते और अपने हल्के में सरकार के हितों का ध्यान रखते थे।[६५]

राजस्व वसूली का काम पटेल और लम्बरदार किया करते थे उनका प्रमुख काम राजस्व कर वसूल करके सरकार के खजाने में जमा करवाना होता था। पिछले बन्दोबस्त के समय उनकी संख्या निर्धारित करदी गई थी। लम्बरदारों द्वारा वसूल किए गए राजस्व पर सरकार उन्हें ५ प्रतिशत की राशि देती थी। पटेलों को उनकी जमीन पर राजस्व में २५ प्रतिशत की छूट तथा सिंचाई कर की वसूली पर २ या ३ प्रतिशत का भत्ता मिलता था[६६]। अजमेर-मेरवाड़ा के चीफ कमिश्नर को सन् १९०८ में यह अधिकार प्रदान कर दिया गया कि वह भारत सरकार से बिना पूछे ही

अधीनस्थ सेवाओं की सभी श्रेणियों में नियुक्तियां और पदोन्नति, स्थाई अथवा अस्थाई कर सकते थे।[६७] अजमेर-मेरवाड़ा के लिए पृथक् प्रान्तीय सेवा का गठन इसलिए नहीं किया गया क्योंकि कर्मचारियों की संख्या बहुत कम थी।[६८] सन् १८८६ में रेवेन्यू एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर और रजिस्ट्रार की नियुक्तियां भी की गई। प्रथम अधिकारी केवल राजस्व सम्बन्धी मामलों को निपटाता था और द्वितीय अधिकारी बीस रुपयों तक के लघुवादों की सुनवाई कर सकता था।[६९]

सन् १६११ में मिंटो-मार्ले सुधार के कारण जबकि एक ओर संपूर्ण भारत के विभिन्न बड़े प्रान्तों में व्यापक प्रशासनिक परिवर्तन हुए, अजमेर में उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सन् १६१४ में एक छोटा सा परिवर्तन यह हुआ कि मेरवाड़ा में असिस्टेन्ट कमिश्नर की जगह एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर की नियुक्ति की गई।[७०]

अजमेर-मेरवाड़ा का पिछड़ापन

यद्यपि अजमेर-मेरवाड़ा दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा अंग्रेजों के प्रभुत्व में काफी पहले आ गया था तथापि इसका छोटा आकार, कम जनसंख्या तथा इसकी भौगोलिक स्थिति इसके एक स्वायत्त प्रान्त के रूप में विकसित होने में बुरी तरह से बाधक रही थीं। इस छोटे से क्षेत्र के लिए अन्य विशाल प्रान्तों के समान प्रशासन-व्यवस्था की स्थापना करना संभव नहीं था। भारत सरकार ने यहां के लोगों के श्रम और शक्ति के स्रोतों को विकास के पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किए जिसके फलस्वरूप यहां के लोगों का विकास नहीं हो सका व आर्थिक, राजनीतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में अन्य प्रान्तों की तुलना में यह अत्यन्त पिछड़ा रहा। यही कारण था कि अजमेर को कृषि, मेडिकल व टेकनीकल शिक्षा की दूसरे प्रान्तों के समान सुविधा उपलब्ध नहीं थी। यहां के युवकों को प्रशासनिक सेवाओं में भी अन्य प्रान्तों के युवकों को प्राप्त होने वाली सामान्य सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाई। यहाँ तक कि इस क्षेत्र की न्याय व्यवस्था को वह स्तर प्राप्त नहीं हो सका जो संयुक्त प्रांत या बम्बई की न्याय व्यवस्था को उपलब्ध था। चार्टर्ड हाईकोर्ट की स्थापना तो दूर की बात रही, अजमेर में जुडीशियल कमिश्नर पद पर भी हाईकोर्ट के न्यायाधीश पद के समकक्ष योग्यता अनुभव तथा उच्च स्तर के व्यक्ति की नियुक्ति भी नहीं हुई[७१]। केवल यही नहीं अजमेर-मेरवाड़ा को कभी ऐसा चीफ कमिश्नर का पद भी प्राप्त नहीं हुआ जो केवल इस प्रान्त के लिए हो। कम आय और छोटा क्षेत्र होने के कारण यहां अलग नियमित स्थाई सेवाओं का गठन नहीं हो सका और कम आय के कारण यह प्रान्त बाहर से आए अधिकारियों को अपनी समस्या और हित की ओर आकर्षित नहीं कर सका।[७२]

अंग्रेज शासित भारतीय प्रान्तों ने स्वायत्त शासन की दिशा में प्रगति प्रारम्भ कर दी थी परन्तु अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासन ने इस दिशा में कदाचित् ही कोई

विशेष प्रगति की। यह शिड्यूल्ड डिस्ट्रिक्ट ही बना रहा और वर्षों पुराने स्थानीय कानून बिना किसी संशोधन के यहाँ लागू होते रहे। यदि कभी किसी मामले में नये नियम तैयार किए भी गए तो उन पर स्थानीय जनता की राय जानने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।[७३]

अजमेर सन् १८७१ में उत्तर-पश्चिमी सूबों से हटा कर भारत सरकार के अन्तर्गत एक छोटी सी प्रशासनिक इकाई बना दिया गया था। यह सिर्फ भारत सरकार की राजपूताना की रियासतों के प्रति नीति के दृष्टिकोण से किया गया था। इसलिए भारत सरकार ने अजमेर प्रशासन को गृह विभाग के अन्तर्गत रखना या अन्य नियमक प्रान्तों की तरह प्रशासित करना ठीक नहीं समझा। जबकि अजमेर इस तरह के दर्जे का पूरा अधिकारी था। सन् १८७० का एक्ट १ यहाँ लागू किया गया और इसे एक पिछड़े प्रदेश की सभी कठिनाईयां, अन्याय, अयोग्यताएं और असुविधाएं झेलनी पड़ीं। सन १८७७ में यहाँ शिड्यूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट (१८७४) लागू किया गया। अंग्रेजी प्रशासन का अजमेर के साथ यह सबसे बड़ा अन्याय था। पिछड़े हुए तथा भारतीय सीमा पर स्थित क्षेत्रों पर ही यह एक्ट लागू किया जाता था। अजमेर के लोग न तो पिछड़े हुए थे और न यह भारतीय सीमा के कोने का क्षेत्र ही था। इन दो दुर्भाग्यपूर्ण कदमों का प्रतिफल यह हुआ कि अजमेर शेष अंग्रेजी भारत से अलग-सा कर दिया गया और जिस तरह अन्य अंग्रेज शासित प्रान्तों को जो सुविधाएं, अधिकार, संरक्षण तथा लाभ प्राप्त होते रहे उनसे इसे वंचित रहना पड़ा। अजमेर में पिछड़ेपन का यह सबसे बड़ा कारण रहा है।[७४]

यह हो सकता है कि अंग्रेजों की इच्छा जानबूझकर इस क्षेत्र के विकास के अवरोध की न रही हो। अजमेर-मेरवाड़ा के अधिकांश यूरोपीय अधिकारी भारत सरकार के पोलिटिकल डिपार्टमेंट में से थे। चीफ कमिश्नर या उसके प्रथम असिस्टेंट को अजमेर-मेरवाड़ा या किसी अन्य प्रान्त का प्रशासनिक अनुभव का होना जरूरी था। ये नियुक्तियां पोलिटिकल डिपार्टमेंट से होती थीं। इस विभाग में ज्यादातर अधिकारी ऐसे थे जिन्होंने इसके पूर्व में भारत में कभी काम ही नहीं किया था। यही बात कमिश्नर पर भी लागू होती थी। कुछ कमिश्नरों को राजस्व विभाग का अनुभव था तो कुछ को न्याय विभाग का व कई तो दोनों ही मामलों में अनुभवहीन थे। केवल एक ही अपवाद ऐसा है जिसमें इस पद पर नियुक्ति के पूर्व उक्त अधिकारी अजमेर-मेरवाड़ा जिले में काम कर चुका था। कमिश्नर सेशंस एवं सिविल जज तथा जिला दंडनायक के अलावा शिक्षा विभाग का डायरेक्टर, जेल तथा वन विभागों का इंस्पेक्टर जनरल, चैयरमैन मेयो कालेज तथा व्यवस्था समिति, राजपूताना में जन्म-मरण के अंकेक्षण कार्य का रजिस्ट्रार जनरल भी था। वह चूंगी, आयकर, सहकारी समितियां तथा जिला बोर्ड, नगरपालिका एवं राजस्व विभाग पर सामान्य निरीक्षण का कार्य भार भी वहन किए हुए था। यद्यपि व्यावहारिक रूप में वह इन

विशिष्ट मामलों में अन्तिम निर्णायक माना जाता था परन्तु सामान्यतः शिक्षा वन, सहकारी समितियां, चुंगी तथा ऐसे ही विशिष्ट क्षेत्रों में उसको कोई अनुभव नहीं होता था। जिन मामलों में टेक्नीकल अनुभव की आवश्यकता होती थी उनमें उसकी सहज बुद्धि ही मात्र आधार था।[७५]

अंग्रेजी भारत में प्रशासन के विकास और जनता में अपनी स्थिति और अधिकारों के प्रति चेतना जागृत होने पर इस तरह के क्षेत्रीय पिछड़ेपन की गंभीरता का अनुभव होने लगा। ये अधिकारीगण अजमेर-मेरवाड़ा की हालत व परिस्थितियों से पूर्ण परिचित नहीं थे।[७६] अजमेर का यह दुर्भाग्य था कि वह सभी मामलों में अन्य प्रान्तों में बनाए गए नियमों व उपनियमों द्वारा प्रशासित होता था। जबकि वे नियम वहाँ की सरकारें अपनी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार बनाती थीं। वे सब बिना यह समझे कि वे इस प्रान्त के लिए लाभदायक होंगे या नहीं, थोप दिए जाते थे।[७७]

एक पृथक् इकाई बने रहने के कारण, अजमेर-मेरवाड़ा भारत के अन्य अंग्रेज् शासित प्रान्तों में लागू किए जाने वाले सुधारों के लाभ से भी वंचित रहा। अन्य प्रांतों की तरह यहां न तो जिम्मेदार सरकार ही थी और न निर्वाचित संस्थाएं ही गठित हुईं। इसके प्रशासन में कौशल का अभाव सदा ही बना रहा क्योंकि एक छोटा-सा जिला होने के कारण पूर्णरूपेण अपने लिए पृथक् कमिश्नर, आई०जी०पी०, वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी, सहकारी समिति का रजिस्ट्रार, आबकारी अधिकारी और दो वरिष्ठ राजस्व अधिकारियों की स्वतंत्र नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता था। सन् १८७१ से इस जिले की प्रशासनिक पृथकता की घोषणा तथा १८७९ में शिड्यूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट १५ (१८७४) लागू करने के कारण यहाँ के प्रशासन को गंभीर क्षति पहुँची व साथ ही अन्य प्रांतों के मुकाबले में इसकी प्रगति और भी पिछड़ गई। अजमेर जिला भारत सरकार द्वारा नियंत्रित पोलिटिकल डिपार्टमेंट के अन्तर्गत मामूली सी छोटी प्रशासनिक इकाई बना रहा। अजमेर-मेरवाड़ा की जनता भारत के अन्य शासित प्रान्तों की जनता की तरह अपने शासन में हाथ नहीं बँटा सकती थी। सन् १९०९ में मिंटों-मार्ले सुधार तथा सन् १९१९ में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों से अजमेर-मेरवाड़ा पूर्णतया वंचित रहा।[७८]

इन सब बातों का अर्थ यह कदापि नहीं है कि सन् १८१८ में अंग्रेजों के आधिपत्य से लेकर अबतक अजमेर-मेरवाड़ा में कोई तरक्की नहीं हुई। १८वीं सदी में मुगलों के पतनकाल से लेकर अजमेर संघर्षशील शक्तियों के बीच शतरंज के मुहरों की तरह पिटता रहा और हर आक्रांता ने इस पर अपने दांत गड़ाए। इस संघर्ष में यह जिला एक तरह से विनष्ट-सा हो चला था और यहाँ की जनसंख्या कुल मिलाकर २५ हजार ही रह गई थी। जिले में अंग्रेजों के आधिपत्य के साथ

शांति और स्थाई प्रशासन का युग प्रारम्भ हुआ तथा जनसंख्या में भी वृद्धि होने लगी। ब्यावर जो अंग्रेजों के आगमन के समय एक छोटा-सा गांव था, अंग्रेजी शासन-काल में प्रमुख एवं महत्वपूर्ण व्यवसायिक केन्द्र बन गया था, जहां महत्वपूर्ण सूती उद्योग पनपा और उसके व्यापार में पंजाब के फजलका के बाद इसका स्थान बन गया था। मेरवाड़ा जिला जो उन दिनों ऐसे लोगों से भरा हुआ था जो हल के बजाय ढ़ाल तलवार पसंद करते थे। वह एक कृषि प्रधान और औद्योगिक केन्द्र बनने लगा। अजमेर-मेरवाड़ा का अंग्रेजी प्रशासन के अन्तर्गत कुछ हित अवश्य हुआ परन्तु अन्य प्रान्तों की तरह वह आगे नहीं बढ़ सका।

अध्याय तीन

१. मेरवाड़ा, अंग्रेजों, मारवाड़ और मेवाड़ के बीच असमान भागों में विभक्त था। चूंकि मेवाड़ और मारवाड़ अपने को हस्तांतरित गांवों की व्यवस्था करने में असमर्थ थे, अतएव इनमें से शांतिप्रिय गांव इन रियासतों के ठाकुरों को दिए गए व शेष मेरवाड़ा के अन्तर्गत रहे। (डिक्सन, स्केच ऑफ मेरवाड़ा १८५० पृ० ६२)।
२. अजमेर के प्रथम सुपरिटेंडेंट वास्तव में कर्नल निक्सन थे जिन्होंने केवल ९ दिनों तक काम किया, ९ जुलाई से १८ जुलाई, १८१८ तक (सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रिपटिव–१९४१ पृ० २३८)।
३. लाटूस-गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा (१८७५), पृ. ९१।
४. एफ. विल्डर द्वारा मेजर जनरल डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक २७-८-१८१८ (रा. रा. पु. मण्डल)।
५. एफ. विल्डर द्वारा मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी को प्रेषित पत्र, दिनांक २१-९-१८१८ (रा. रा. पु. मण्डल)।
६. डिक्सन, स्केच ऑफ मेरवाड़ा (१८५०), पृ. ५।
७. सर डेविड ऑक्टरलोनी द्वारा भारत सरकार के सचिव एच. मैकेंजी को पत्र दिनांक ६ जनवरी, १८२५ (रा. रा. पु. मंडल)
लाटूस-अजमेर-मेरवाड़ा की बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८७५) पृ. ७१,
सारदा-अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रिपटिव (१९४१) पृ. २०७।
८. डुरेल पॉक, अजमेर-मेरवाड़ा की मेडिको टोपोग्रफिकल रिपोर्ट (१९००) पृ. ८१।

९. लाटूश-सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा १८७५ पृ. ६२।

१०. संकट के दिनों में जो लोग खेत छोड़ कर दूसरे प्रदेशों को चले जाते थे-वे 'फरार' और जो लोग खेती छोड़कर आजीविका-हेतु शारीरिक मजदूरी करने चले जाते वे 'नादर' कहलाते थे।

११. सुपरिंटेंडेंट अजमेर द्वारा कर्नल सदरलैंड कमिश्नर को प्रेषित रिपोर्ट दिनांक २० जनवरी, १८४१। (रा. रा. पु. मंडल)।

१२. कर्नल सदरलैंड द्वारा सचिव, भारत सरकार को प्रेषित रिपोर्ट, दिनांक ७ फरवरी, १८४१ (रा. रा पु. मंडल)।

१३. लाटूस-सेटलमेन्ट रिपोर्ट १८७४।

१४. लाटूस-सेटलमेंट रिपोर्ट १८७४।

१५. सचिव भारत सरकार का ए. जी. जी. को पत्र दिनांक ११-१२-१८४१ फाइल नं० ६ (रा. रा. पु. मं.)।

१६. त्रिपाठी-मगरा-मेरवाड़ा का इतिहास १९१४ पृ. ६२ लाटूस-सेटलमेंट रिपोर्ट, अजमेर-मेरवाड़ा १८७४ अनुच्छेद १२।

१७. कार्यवाहक सचिव भारत सरकार द्वारा डिक्सन को पत्र, संख्या ६२१ अ दिनांक २८-१-१८५३ (रा. रा. पु. मं.)।

१८. कमिश्नर (द्वारा उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार के सचिव को पत्र, संख्या ५२ दिनांक ५ मार्च १८५३।

१९. सी. सी. वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खंड १—ए अजमेर-मेरवाड़ा (१९०४) पृ. १६।

२०. ए. जी. जी. द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र संख्या ११४ दिनांक २५ फरवरी, १८६७ (रा. रा. पु. मं.)।

२१. उपरोक्त।

२२. चीफ कमिश्नर कार्यालय फाइल क्रमांक ११७, पत्र व्यवहार दिनांक २९ जून १८६६ (रा. रा. पु. मंडल)।

२३. डिप्टी कमिश्नर द्वारा उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को (कैप्टिन जे. सी. ब्रुक्स) पत्र दिनांक २४ जुलाई, १८५८ (रा. रा. पु. मंडल)।

२४. उपरोक्त।

२५. उपरोक्त डिप्टी कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र संख्या ४८ दिनांक ६ फरवरी, १८६०।

२६. कैप्टिन वी. लॉयर द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र दिनांक मई, १८६० को (रा. रा. पु. मंडल)।

२७. मेजर वी. पी. लॉयड द्वारा जनरल लॉरेंस कमिश्नर अजमेर को पत्र क्रमांक १०४ । १८६४ दिनांक २५ अक्टूबर १८६४। (रा. रा. पु. मंडल)।

२८. आर. सिमसन सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार द्वारा सी. वेले सचिव गृह विभाग भारत सरकार को पत्र दिनांक २७-४-१८६९ क्रमांक ५५७। १८६९ (रा. रा. पु. मंडल)।

२९. ब्रिगेडियर जनरल एस. पी. लॉरेंस कार्यवाहक कमिश्नर अजमेर द्वारा डब्ल्यू म्यूर. सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र दिनांक १८-८-५८ क्रमांक २३ । १८५८ (रा. रा. पु. मंडल)।

३०. पत्र क्रमांक ६४ दिनांक ८-४-१८५८। (रा. रा. पु. मंडल)।

३१. पत्र क्रमांक ४० दिनांक १८-२-१८५८। (रा. रा. पु. मंडल)।

३२. पत्र क्रमांक १० दिनांक २०-१-१८५८। (रा. रा. पु. मंडल)।

३३. पत्र क्रमांक २३, १८५८ दिनांक १८-६-१८५८। (रा. रा. पु. मं.)।

३४. ब्रिगेडियर जनरल एस. पी. लॉरेंस कार्यवाहक कमिश्नर अजमेर द्वारा डब्ल्यू. म्यूर. सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र दिनांक १८-८-५८ क्रमांक २३। १८५८।

३५. फाइल शीर्षक 'भारत सरकार के अन्तर्गत अजमेर-मेरवाड़ा का पृथक् चीफ कमिश्नर के रूप में गठन, विदेश विभाग' फाइल क्रमांक ११७। १८६७-१८७१ (रा. रा. पु. मं.)।

३६. लेफ्टि. कर्नल आर. एच. कटिंग्स, ए. जी. जी. राजपूताना द्वारा श्री डब्ल्यू. एस.सेटन सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार क्रमांक ११५ दिनांक २६-६-१८६९ (रा. रा पु. मं.)।

३७. फाइल क्रमांक ११७। १८६७-१८७१ (रा. रा. पु. मं.)।

३८. लेफ्टि. गवर्नर की टिप्पणी २७ मार्च १८६८ (रा. रा. पु. मं.)।

३९. ब्रुक्स का पत्र क्रमांक ६४, अनुच्छेद १३, दिनांक ८-४-१८५८ (रा. रा. पु. मंडल)।

४०. सी. ग्रो. क्रमांक २३२, दिनांक ५-४-१८५८ (रा. रा. पु. मं.)।

४१. आर. सिमसन, सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार द्वारा सी, वेले सचिव

५१ अनुच्छेद १२ उपरोक्त।

५२. अनुच्छेद १३ प्रोसीडिंग्स क्रमांक १९९५ पी० दिनांक २२–११–१८७०।

५३. पत्र क्रमांक ९५७, दिनांक २७–४–१८६९ उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार।

५४. उपरोक्त।

५५. नोटिफिकेशन क्रमांक १००७ दिनांक २६–५–१८७१ शिमला, परराष्ट्र विभाग, राजनीतिक (रा० रा० पु० मं०)।

५६. नोटिफिकेशन क्रमांक १००७ दिनांक २६–५–१८७१ शिमला, परराष्ट्र विभाग, राजनैतिक। (रा० रा० पु० मं०)।

५७. फाइल क्रमांक ७३, प्रस्ताव—फोर्ट विलियम दिनांक २७ मार्च १८७७ (रा० रा० पु० मं०)।

५८. कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र क्रमांक ३०८६० १८९० दिनांक २३–११–१८९०।

५९. अजमेर बजट वर्ष ८८–८९ और १८८९–९० (रा० रा० पु० मं०)।

६०. उपरोक्त।

६१. कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र क्रमांक ३०८६०। १८९० दिनांक २२–नवम्बर १८९०।

६२. उपरोक्त।

६३. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स अजमेर, (१९०४) खंड १–ए०।

६४. अकाल प्रशासन नियमावली अजमेर-मेरवाड़ा (१९१५) पृष्ठ ३

६५. उपरोक्त पृष्ठ ४।

६६. उपरोक्त पृष्ठ ५।

६७. सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार द्वारा ई० जी केल्विन चीफ कमिश्नर अजमेर मेरवाड़ा को पत्र शिमला दिनांक ११ जून १९०८ पत्र क्रमांक २३९२१ ए० बी० फाइल क्रमांक ५७०।

६८. फाइल क्रमांक ५७० पत्र संख्या ९९९१–२ (९) १९११ दिनांक २४ नवम्बर १९११ कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र।

६९. फाइल क्रमांक ७३ ए०।

७०. सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रियटिव। (१९४१) पृष्ठ २२४।

७१. सारदा, स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स पृष्ठ ३२०–३२१ भारत सरकार द्वारा

अजमेर-मेरवाड़ा में प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था पर रिपोर्ट के लिए नियुक्त "एसवर्थ समिति" को प्रस्तुत ज्ञापन।

७२. लेजिस्लेटिव असेम्बली दिल्ली में हर विलास सारदा का भाषण दिनांक २९ फरवरी १९२५।

७३. हर विलास सारदा, स्पीचेज एवं राईटिंग्स, पृष्ठ ३२९, ३३०, ३३१।

७४. भारत सरकार की सलाहकार समिति को, समिति के सचिव श्री लतीफी के अनुरोध पर हर विलास सारदा द्वारा प्रस्तुत नोट दिनांक १२ मई १९३२।

७५. एसवर्थ कमेटी रिपोर्ट पृष्ठ २९।

७६. लेजिसलेटिव असेम्बली, नई दिल्ली में २४ फरवरी, १९२५ को हरविलास सारदा का भाषण।

७७. एसवर्थ कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ १२।

७८. हर विलास सारदा द्वारा भारत सरकार की सलाहकार समिति को प्रस्तुत ज्ञापन, १२ मई, १९३२।

४

भू-भोग तथा भू-राजस्व खालसा-भूमि

अजमेर में राजस्व-प्रशासन अंग्रेज़ सरकार के लिए सबसे गंभीर समस्या थी। लगातार कई परीक्षणों के पश्चात् स्थाई प्रक्रिया स्थापित की जा सकी। अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र मोटेतौर पर दो भागों में विभक्त था। खालसा या वह भूमि जिसका राजस्व सीधा सरकार को भुगतान किया जाता था, (और जिसका निजी वर्चस्व इंग्लैण्ड के सम्राट के हाथों में था।) और तालुकादारी जिस भूमि पर इस्तमरारी व्यवस्था लागू थी तथा जिसके लिए किसी भी तरह की सैनिक सेवाओं का बंधन नहीं था।

खालसा भूमि का सीधा सम्बन्ध और उसका नियन्त्रण अंग्रेज़ सम्राट के प्रशासन के अंतर्गत था। इस भूमि पर सरकार का नर्चस्व वास्तविक एवं मालिकाना हक ठीक वैसे ही थे जैसे रियासती राजाओं या ठाकुरों के उनकी ज़मीनों पर खेती करने वाले किसानों पर थे [1]। इस अधिकार के अन्तर्गत सरकार किसी भी धार्मिक संस्थान या किसी व्यक्ति की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे अथवा उसके वंशजों को भूमि बख्शीश या ईनाम के तौर पर भेंट कर सकती थी। ऐसी बख्शीश या भेंट यदि एक सम्पूर्ण गाँव या आधे गाँव की होती तो जागीर[2] कहलाती थी। सन् १९०४ में ऐसे ५१ गाँव जागीरों में दिए गए थे[3]।

खालसा भूमि का भोग :

खालसा भूमि में बिस्वेदारी प्रथा अतीत काल से ही चली आ रही थी।

इसके अनुसार किसान विकास के लिए अपनी भूमि में कुँआ, वाड़ी, मेड़बंदी अथवा अन्य निर्माण कार्य करता था उस भूमि में उसका मालिकाना हक मान लिया जाता था। इन हकों को विस्वादारी हक कहा जाता है। जो मेवाड़ और मारवाड़ा में प्रचलित 'बापोता' जैसे ही है तथा दक्षिण भारत में ऐसे हक को 'मीराज' कहते हैं। 'बापोता' और 'मीराज' वंश परम्परागत भूमि अधिकार होते हैं। विस्वादारी अधिकार प्राप्त किसान को उसकी भूमि से तबतक बेदखल नहीं किया जा सकता था, जबतक वह सरकार को राजस्व देता रहता था[४]। उसे साथ ही अपने द्वारा निर्मित या विकसित कुँओं तथा भवनों आदि को बेचने, बंधक रखने या भेंट करने का अधिकार था। केवल इतना ही नहीं, कुँओं इत्यादि के हस्तांतरण के साथ विकसित भूमि का भी हस्तांतरण माना जाता था। कालांतर में विस्वेदारी अधिकारों का अर्थ स्थाईतौर पर विकसित भूमि में किसान के मालिकाना हकों के रूप में माना जाने लगा[५]। सन् १८३० के पश्चात् सरकार ने विकसित भूमि में केवल अपने मालिकाना हकों का परित्याग कर विस्वेदारों का मालिकाना दर्जा स्वीकार कर लिया था।

असिंचित और बंजर भूमि :

सरकार का बंजर भूमि तथा असिंचित भूमि पर स्वामित्व था। इस क्षेत्र में अत्यन्त कम वर्षा के कारण असिंचित भूमि का कोई महत्व नहीं था[६]। किसान असिंचित भूमि पर एक दो फसल अवश्य पैदा कर लिया करते थे, परन्तु वे उस पर स्थाईतौर पर कृषि नहीं करते थे और बाद में दूसरी ऐसी नई भूमि को जोत लिया करते थे, क्योंकि जिले में ऐसी भूमि का बाहुल्य था। इन्हीं कारणों से, सरकार ने इस भूमि पर नई ढाणियां (खेड़े) बनाए और नए काश्तकारों को बसाने व उन काश्तकारों को जो इस जमीन को विकसित करना चाहते थे पट्टा प्रदान करते, व सभी किसानों से जिनमें विस्वेदार भी शामिल थे इस भूमि पर उनके अपने मवेशियों की चराई के कर की वसूली के अधिकार का भी उपयोग किया।[७]

इस प्रश्न पर काफी विवाद था कि पड़ती भूमि पर सरकार का या ग्राम पंचायतों का स्वामित्व है। परन्तु सन् १८३६ में एडमस्टन ने भूमि बन्दोवस्त के समय अजमेर के प्रथम दो सुपरिन्टेडेंट की राय को, कि सरकार ऐसी सभी भूमि की मालिक है, मानकर सरकार के स्वामित्व को मान्यता प्रदान की थी[८]। इन अधिकारों को पुराने विस्वेदारों को भी स्वीकार करना पड़ा। जब कर्नल डिक्सन ने नये खेड़े बसाने और उन नये किसानों को जो इसे विकसित करने व कुँए खोदने को तैयार थे, रियायतीदर पर यह भूमि देने का निर्णय किया तब कर्नल डिक्सन की इस योजना का विस्वेदारों ने कोई विरोध नहीं किया और न यह मांग ही की नया किसान इस भूमि का लगान उन्हें दिया करे।[९]

सन् १८१९ के बाद भूधृति में परिवर्तन :

सन् १८४९ में पहली बार गाँवों की सीमाओं का निर्धारण किया गया और थामसन की देखरेख में गाँव बन्दोबस्त किया गया। इस बन्दोबस्त से खालसा भूधृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। रैयतवारी की जगह मौजावार की व्यवस्था लागू की गई[10]। रैयतवारी व्यवस्था में प्रत्येक किसान के अपने द्वारा विकसित भूमि में उसके कुछ विशेष हक स्वीकार किए गए थे परन्तु इसमें कृषक 'समाज' को हक नहीं थे वरन् यह अधिकार व्यक्तिगत किसान को ही था। मौजावार व्यवस्था के अन्तर्गत कृषक समाज को भाईचारा स्वामित्व संस्थान में बदल दिया गया था 'मौजावार व्यवस्था का सार यह है कि एक निर्धारित भूमि का क्षेत्रफल जो उस गाँव का सीमा क्षेत्र होता था, उस गाँव के कृषक समाज की सपत्ति घोषित किया जाता था, और इस कृषक समाज को उस क्षेत्रफल की भूमि का मालिक समझा जाता था।[11] गाँव की सारी पड़ती भूमि गाँव तथा खेड़े की सम्मिलित भूमि संपत्ति (समालात ज़मीन) मान ली जाती थी। ये खेड़े कर्नल डिक्सन द्वारा नये बसाए गए थे और उन्होंने पृथक् से इनकी व्यवस्था की थी।

मेरवाड़ा में मेरों की लूट-खसोट की वृत्ति, विरल जनसंख्या और पथरीली भूमि होने के कारण निश्चित भूधृति की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव नहीं हो सका था। परन्तु इस क्षेत्र में भी जहाँ पहले राजपूत शासक शांति व्यवस्था स्थापित करने में असफल हुए थे वहाँ कर्नल हॉल और डिक्सन को सफ़लता मिली। उन्होंने वहाँ नए खेड़े बसाए, तालाबों का निर्माण करवाया और किसानों को पट्टे जारी किए। सन् १८५१ के बंदोबस्त में इन नए बसे हुए किसानों को भी सरकार ने पुराने किसानों के समकक्ष मान लिया और उनके कब्जे की भूमि में उनका मालिकाना हक स्वीकार कर लिया था।[12]

विल्डर का प्रशासन :

२८ जुलाई, १८१८ को अजमेर अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया था। इसके पूर्ववर्ती वर्ष में, खालसा भूमि से वास्तविक भू-राजस्व में मराठों को कुल १ १५,०६० रुपए प्राप्त हुए थे।

अजमेर के प्रथम सुपरिंटेंडेंट विल्डर ने लगान की दरें 'संभावित आधी फसल" निर्धारित की थीं। विल्डर ने भारत सरकार को प्रचलित व्यवस्था को रद्द करने का सुझाव दिया क्योंकि वे इसे अत्यन्त आपत्तिजनक एवं असंतोषप्रद मानते थे। उनका सुझाव था कि खालसा भूमि में प्राचीन परम्परा के अनुसार फसल को कूतकर उसके मूल्य को बांट लेना चाहिए। एफ. विल्डर ने दिनांक २७--९--१८१८ को सर डेविड ऑक्टरलोनी को लिखा 'यदि आप स्वीकार करें तो मैं यह प्रस्तावित करने की अनुमति चाहता हूँ कि इस वर्ष सम्पूर्ण खालसा भूमि में फसल का बराबर भाग

करके, इससे पूर्व प्रचलित अत्यन्त आपत्तिजनक और असंतोषजनक व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त कर दिया जाए। इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत अधिक भूराजस्व प्राप्त हो सकेगा, जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूँ। इसके फलस्वरूप लोगों में जो संतोष और विश्वास उत्पन्न होगा उससे आगे चलकर लोगों में और अधिक उद्यम एवं विकास के प्रति परिश्रम की भावना को बल मिलेगा।" लोगों ने कूती गई फसल का आधा मूल्य लगान के रूप में देना सहर्ष स्वीकार कर लिया क्योंकि पहले की व्यवस्था में भी आधी फसल राजस्व के रूप में ली जाती थी और निकटवर्ती पड़ोसी रजवाड़ों में भी इतना ही लगान लिया जाता था[१३]। पहले वर्ष सरकार को भू-राजस्व से १ ५६,७४६ रुपए प्राप्त हुए।

फसल के विभाजन की इस दर को एफ. विल्डर अत्यन्त औचित्यपूर्ण मानते थे और इनकी यह भी मान्यता थी कि इससे निश्चय ही लोगों . मन में "नई सरकार की उदारता और न्यायप्रियता के प्रति विश्वास पैदा होगा।" उनकी मान्यता तो यहाँ तक थी कि तीन सालों में यह जमा दुगुनी हो जाएगी जो अंग्रेजों के पूर्व किसी भी सरकार द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकी थी और यह भी लोगों पर बिना किसी नए भार को थोपे ही उपलब्ध हो सकेगी[१४]। आगामी वर्षों में जमा में वृद्धि के बारे में वे इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने सरकार को सुझाव दिया कि तीन वर्ष का क्रमिक बन्दोबस्त लागू कर देना चाहिए जिसमें पहले वर्ष १,७६,४३७ की राशि, दूसरे वर्ष २,०१,६६१ रुपए तथा तीसरे वर्ष २,४६,४३०३ की राशि भूराजस्व में किसानों से वसूल की जाए।[१५]

ऐसा प्रतीत होता है कि विल्डर को जिले के सीमित साधन व कृषि की गिरी हुई हालत का ज्ञान नहीं था। इसलिए उनके द्वारा निर्धारित राशि, अपूर्ण व अविश्वस्त आंकड़ों व जानकारी पर आधारित थी।[१६] "वास्तव में वे इस क्षेत्र की वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ थे इसलिए उनके प्रशासनिक दृष्टिकोण में तथा लाटूस व वॉइटवे में एक गहरा अन्तर विशेषकर राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में परिलक्षित होता है। उनका केवल एक ही उद्देश्य था कि किसी तरह से सरकारी राजस्व में वृद्धि की जाए और यह वृद्धि किन सिद्धान्तों के आधार पर संभव है, इसके विश्लेषण का उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने इस क्षेत्र में इतने अव्यवस्थित ढंग से काम किया कि न तो उन्होंने अपने द्वारा सुझाई गई पूर्ति के आधारों की जानकारी ही प्रदान की और न वे तथ्य ही प्रस्तुत किए जिनके आधार पर कथित कर व्यवस्था का निर्धारण किया गया था। सरकार ने भी बन्दोबस्त का यह सुझाव कुछ हिचकिचाहट के साथ यह जानते हुए भी कि संभावित विकास कार्यों पर आधारित बंदोबस्त हानिकारक व अनिश्चित हो सकता है, स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप आगे चलकर कृषकों की भावनाएं कुंद हो चली और उनकी संपत्ति-संचय में विकास कार्यों के प्रति भावना को भी ठेस पहुँची।[१७]

विल्डर के अनुमानों को पहले वर्ष में ही धक्का लगा जबकि दोनों फसलें नष्ट हो जाने से बंदोबस्त अस्त-व्यस्त हो गया। तब उन्होंने यह निर्णय लिया कि सरकार एक निश्चित वार्षिक राशि १,६४,७०० रुपए लगान के रूप में वसूल करले तथा शेष रकम माफ कर दे। यह प्रस्ताव सरकार ने भी स्वीकार कर लिया और पांचसाला बंदोबस्त की स्वीकृति प्रदान कर दी। चतुर्थ वर्ष में यह अनुभव किया गया कि उपर्युक्त निर्धारित राशि भी भारी पड़ती है और लोगों को राजस्व चुकाने के लिए कर्ज लेना पड़ रहा है। यह स्थिति भी उन दिनों थी जबकि पूर्ववर्ती तीन वर्षों में फसलें अच्छी हुईं थीं। पाँचवे वर्ष अकाल की स्थिति पैदा हो जाने से केवल ३१,६२० रुपए की रकम ही राजस्व के रूप में वसूल की जा सकी।[१८] उस वर्ष १० जून तक छुटपुट बरसात हुई, इसके बाद केवल दो बौछारें १२ और २० अगस्त को हुई। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में लू की लपटों से तालाब और कुँए सूख गए और खरीफ की फसल झुलस कर नष्ट हो गई। इसके कारण बहुत से मवेशी मर गए और शेष बचे हुए पशुधन को लोग चराई के लिए मालवा की ओर ले गए। अनाज रुपए का बीस सेर बिकने लगा था। मार्च में दो बार भारी हिमपात (पाला पड़ना) से पहले से ही कमज़ोर बचीखुची रबी की फसल भी नष्ट हो गई।

छः सूखे और अकालग्रस्त वर्ष अजमेर में बिताकर विल्डर महोदय दिसम्बर, १८२४ में स्थानांतरण पर अन्यत्र चले गए। उन्होंने कभी भूमि की स्थिति व लोगों की हालत की सही जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं किया। यह एकदम अविश्वसनीय एवं चौंका देने वाला तथ्य है कि जब अजमेर के पूरे राजस्व एवं पुलिस-प्रशासन का मासिक व्यय केवल १३७४ रुपए थे उनका अपना मासिक वेतन ही ३००० रुपए था। विल्डर का दृष्टिकोण तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार की नीति की स्पष्ट झलक प्रस्तुत करता है।[१९]

पुर्नव्यवस्था काल (१८२४–४१)

विल्डर के स्थान पर नियुक्त हेनरी मिडलटन ने राजस्व अन्न के रूप में उगाहने की नीति को पुनर्जीवित किया। उनकी यह धारणा थी कि 'नगदी के रूप में लगान देने के बजाय यह व्यवस्था गरीब किसानों द्वारा अधिक पसंद की जाएगी।[२०] जिन्हें अकाल ने झकझोर दिया है और जो इतने गरीब हो गए हैं कि अपने कुँओं तक की मरम्मत कराने में असमर्थ हैं तथा सूदखोरों के चंगुल में फँसे पड़े हैं।' परन्तु पहले वर्ष (१८२५-२६) के अनुभवों से ही वे यह बात समझ गए कि यह व्यवस्था नहीं चल सकेगी। २६ नवम्बर, १८२६ तक उन्होंने नए खाते तैयार कराए तथा सरकारी आय के स्रोतों का आधार गत वर्षो के आंकड़ों को रखा। राजस्व-कर उन्होंने १,४४,०७२ रुपए निश्चित किया और इसे पाँच साल के लिए मंजूर किया। शीघ्र ही यह बात भी सामने आ गई कि मिडलटन द्वारा आँका गया लगान

भी अधिक है। निर्धारित राशि पहले साल उनके द्वारा वसूल की गई, परन्तु यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो गई कि आगामी वर्ष में इतनी राजस्व वसूली भी संभव नहीं हो सकेगी।[२१]

अक्टूबर, १८२७ में मिडलटन के स्थान पर केवेंडिश की नियुक्ति हुई। इन्हें सहारनपुर जिले में राजस्व प्रशासन के कार्य का अच्छा अनुभव था। केवेंडिश उत्साही एवं योग्य अधिकारी थे उन्होंने शीघ्र ही इस्तमरार, भौम और जागीर के बारे में महत्वपूर्ण अंकेक्षण किया। केवेंडिश ने कतिपय कारणों से मिडलटन द्वारा निर्धारित राजस्व को दुर्वह माना। उन्होंने लिखा कि कृषि योग्य भूमि उतनी ही रही है, जितनी मराठों के समय में थी जिससे वे केवल ८७,६८६ रुपए का राजस्व उगाहते थे। वह भी जबकि कूते की दर आधे से अधिक फसल की थी। अजमेर की भूमि पथरीली होने से किसान को अधिक परिश्रम करना पड़ता है और इसलिए आधी फसल लगान के रूप में देना उसकी क्षमता के बाहर है। कर-निर्धारण, भूमि की उपज के आधार पर नहीं होकर अनिर्धारित और मनमाने रूप में वसूल किया जाता है, और पहले का लगान उन अच्छे वर्षों के आधार पर किया गया है, जबकि खाद्यान्नों के भाव ऊँचे थे।[२२] उन्होंने मिडलटन द्वारा निर्धारित क्षेत्र में वे दरें लागू की जो उन्होंने पहले सहारनपुर में लागू की थीं और यह लेखा प्रस्तुत किया कि राजस्व १,४४,०७२ रुपए के बजाय ८७,६४५ रुपए होना चाहिए। उनके अनुसार प्रारम्भ से ही जिले में राजस्व तीन कारणों से अधिक कूता गया था। एक तो यह था कि मराठे अपनी ताकत के आधार पर बिना किसी नियमित आधार के किसानों से ज्यादा से ज्यादा कर वसूल करते थे। दूसरा कारण यह था कि संधिया ने जब अजमेर अंग्रेजों को हस्तांतरित किया तो उसने यहाँ की राजस्व राशि को बढ़ा चढ़ाकर बताया था फलस्वरूप विल्डर ने उस असंभव स्तर की प्राप्ति के लिए भारी प्रयत्न किया। तीसरा कारण यह था कि सन् १८१८-१९ का वर्ष अजमेर के लिए खुशहाली का वर्ष था। जब कि पड़ोसी रियासतों मेवाड़, मारवाड़ में पिंडारी सरदार अमीर खान की लूटपाट के कारण कृषि चौपट हो जाने से वहाँ अन्न की भारी कमी हो गई थी और इन रियासतों में अनाज के निर्यात के कारण अजमेर में भाव बहुत ऊँचे चढ़ गए थे। इस नव विजित क्षेत्र में अंग्रेज अधिकारियों द्वारा प्रथम कर निर्धारण चूँकि अनाज के गलत भावों पर आधारित था इसलिए उस राशि की प्राप्ति असंभव थी। उन्होंने इस क्षेत्र में अपने प्रवेश के समय प्रचलित भावों को आधार बना लिया था जो क्षेत्रीय अशांति के कारण काफी ऊँचे थे। वे यह अनुमान नहीं लगा सके कि शांति एवं व्यवस्था स्थापित होने व मार्ग खुले रहने से कृषि में वृद्धि एवं भावों का नीचे गिरना स्वाभाविक है।[२३]

केवेंडिश ने नया बन्दोबस्त करने व अकाल तथा अभाव की स्थिति में किसानों

को लगान देने के लिए बाध्य करने के बारे में सरकार को उन्होंने व्यक्तिगत जोत के आधार पर कूते का सुझाव दिया जबकि मिडलटन की बन्दोबस्त प्रक्रिया में इसका ख्याल नहीं रखा गया था।[२४] इस बात पर उन्होंने विशेष रूप से प्रकाश डाला कि अभाव के दिनों में जो छूट, सहायता इत्यादि इकट्ठी प्रदान की जाती है वह वास्तविक किसानों तक नहीं पहुँच पाती है। तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी और पटेल इसे आपस में बाँट लेते है। इस बात का श्रेय कवेंडिश को है कि उन्होंने पहली बार यहाँ पटवारी खातों की प्रथा चालू की पटवारियों के हल्के में अधिक ग्राम रखे गए यहाँ तक कि अभी तक जिन ग्रामों के लिए कोई पटवारी नहीं था वहाँ भी पटवार व्यवस्था स्थापित की गई तथा प्रत्येक पटवारी को यह आदेश दिया गया कि वह जो भी रकम किसानों से वसूल करे उसकी लिखित रसीद प्रदान करे[२५] सरकार ने केवेंडिश के प्रस्तावों को सामान्यतः स्वीकार किया परन्तु जहाँ तक लगान के भारी होने का प्रश्न था, यह निर्णय लिया कि नए बन्दोबस्त से पहले प्रत्येक ग्राम की वास्तविकता का पता लगाने का गंभीर प्रयत्न किया जाना चाहिए। २६ यह अजमेर का दुर्भाग्य ही था कि यहाँ का प्रथम बन्दोबस्त केवेंडिश जैसे कुशल अधिकारी की अपेक्षा मिडलटन जैसे व्यक्ति ने किया। अंग्रेज़ अधिकारियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि उस साल खाद्यान्न के ऊँचे भावों के कारण राजस्व अधिक निर्धारित किया गया था। परन्तु फिर भी सरकार ने अपने राजस्व में संशोधन करना अस्वीकार कर दिया। सरकार ने केवेंडिश द्वारा प्रस्तावित कतिपय सुधारों एवं सुझावों को अवश्य स्वीकार कर लिया जैसे, अकाल व अभाव के दिनों में किसानों को छूट दी जाय इत्यादि। सत्य तो यह है कि जबतक अजमेर में केवेंडिश रहे, किसानों को लगातार छूट मिलती रही और किसी भी वर्ष लगान की राशि मिडलटन द्वारा निर्धारित लगान की रकम तक नहीं पहुँच पाई।[२७]

केवेंडिश के उत्तराधिकारी मेजर स्पीयर्स ने नए बंदोबस्त का कोई प्रयत्न नहीं किया परन्तु उसके साथ यह ध्यान रखते हुए कि निर्धारित लगान की रकम अत्यधिक भारी है, वे यथा संभव छूट प्रदान करते हैं। यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया था कि मिडिलटन के बन्दोबस्त में परिवर्तन आवश्यक है। एडमंस्टन ने जिनकी नियुक्ति मेजर स्पीयर्स के स्थान पर हुई थी अगले साल ही अल्पावधि बन्दोबस्त लागू किया और लगान की राशि १,१६,३०२ रुपए निर्धारित की तथा साथ ही यह प्रावधान भी रखा कि जो किसान बंदोबस्त की नई दरों पर भुगतान न करना चाहे वे पुरानी खाम दरों पर फसल का आधा भाग कर के रूप में दे सकते हैं।[२८]

सन् १८३५-३६ में एडमंस्टन ने नियमित बंदोबस्त का काम हाथ में लिया जिसे आगामी दस वर्षों की अवधि के लिए निर्धारित होना था। अतएव इसे दशवार्षिक बंदोबस्त की संज्ञा दी गई। एडमंस्टन ने क्षेत्र की स्थिति के बारे में पूर्ववर्ती

भूराजस्व की प्रशासनिक भूलों का अतिरंजित चित्रण प्रस्तुत करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया कि जिले का विकास तो दूर रहा उसकी अवनति हुई है। जामा को अधिक निर्धारित कर उसकी वसूली में जितनी कठिनाई हो उतनी अनियमित रूप से प्रतिवर्ष छूट देने की चली आ रही प्रथा को समाप्त करने का उन्होंने प्रयत्न किया। एडमंस्टन ने केवेंडिश की तरह अन्न के भावों का अन्दाजा नहीं लगाया बल्कि उन्होंने कर निर्धारण-हेतु भावों का निर्णय करने के लिए एक प्रणाली निर्धारित की। ग्रामों की पैमाइश की गई जिसके अनुसार कृषि योग्य भूमि २६,२५७ एकड थी। उन्होंने इस भूमि को तीन श्रेणियों में विभक्त किया—चाही (सिंचित) ८,९८९ एकड़, तालाबी २१८० एकड और बारानी (असिंचित) २५,०८८ एकड़। इसके पश्चात् उन्होंने नगदी फसलों वाली भूमि या दो फसली भूमि (मक्का और कपास) का लगान निश्चित किया जो खास तहसील में उस समय प्रचलित मूल्यों के आधार पर था। इसके साथ ही उन्होंने प्रति बीघा अन्य फसलों की औसत उपज को आँका। पटेलों और महाजनों को छोड़कर लगान फसल का आधा भाग निर्धारित किया व उसको नगदी में परिवर्तन करने के लिए उन्होने पूर्ववर्ती पाँच वर्षो के प्रचलित मूल्यों के औसत मूल्य को निर्धारित किया। इस तरह से वे एक काम चलाऊ जमाबन्दी प्राप्त करने में सफल रहे, जो १५७१५१ रुपयों के लगभग थी। उन्होंने प्रत्येक ग्राम का दौरा किया और प्रत्येक जगह के बारे में सरकारी लगान की मांग पिछली वित्तीय स्थिति, वर्तमान हालत और भावी संभावनाओं के सदर्भ में निर्धारित की और किसी भी ग्राम को छोड़ा नहीं गया। दो छोटे गाँवों को खाम मे लिया गया क्योंकि वे एडमस्टन के निर्धारित स्तर के सिद्ध नहीं हुए। शेष ग्रामों ने उनकी शर्तें स्वीकार कर ली थीं। बन्दोबस्त की निर्धारित राशि १२७५२५ रुपए और खाम ग्रामों को जोड़ने पर उक्त राशि १,२९,८७२ रुपए निश्चित् की गई।[२९]

एडमंस्टन के मतानुसार अजमेर-निवासी अधिकतर लापरवाह, दरिद्र और कर्जदार थे। बोहरे ग्रामों के एक तरह से स्वामी बन गए थे। वे किसानों को सरकारी लगान जमा करवाने व मवेशी खरीदने के लिए रुपया कर्ज पर देते थे। वे ग्राम समाज के खर्च को संचालित किया करते थे। यहाँ तक कि किसान ब्याह शादी या अन्य त्यौहारों पर क्या खर्च करेंगे, वह भी इनसे संचालित होता था। महाजन किसानों को ऋण का हिसाब नहीं देते थे, और इनसे लिया गया ऋण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलता ही रहता था। एडमंस्टन ने प्रत्येक ग्राम में राजस्व कर-निर्धारित करने के लिए मुखिया से सम्पर्क स्थापित किया क्योंकि उनकी यह मान्यता थी कि वह ग्राम समाज की इच्छानुसार ही व्यवहार करता है।[३०]

दस वार्षिक बन्दोबस्त कृषि योग्य भूमि और व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर किया गया था। प्रत्येक ग्राम का कर-निर्धारण न्यायिक तथा औचित्यपूर्ण

ढंग से किया गया था फिर भी यह कई माने में अधूरा एवं असमान था क्योंकि गाँव का लगान प्रत्येक किसान पर समान रूप से बाँट दिया गया था। अबतक किसान आधी फसल पटेलों को देते थे और प्रत्येक गाँव की राशि में जो कमी होती थी उसकी पूर्ती जो लोग खेती नहीं करते थे उनको करनी पड़ती थी। केवेंडिश ने कुछ अंशों में खेवट-प्रथा लागू की थी परन्तु सभी खेतदारों के सम्मिलित उत्तरदायित्व की भावना व्यावहारिक रूप से सम्पूर्ण जिले के लिए अजनबी चीज़ थी। इसे एडमंस्टन ने पूरे जिले में पहली बार लागू किया। एक किसान, जिसका कर उपज का आधा भाग निर्धारित किया गया था, उसे फसल अच्छी हो या बुरी हो, चुकाना ही पड़ता था। उसे इस प्रथा के अनुसार उन किसानों के कर की रकम भी चुकानी पड़ती जो किन्हीं कठिनाईयों के कारण दूसरी जगह चले गए थे या जिन्होंने साधन के अभाव में कृषि छोड़ कर मज़दूरी पर निर्वाह करना प्रारम्भ कर दिया था।[३१]

यद्यपि अजमेर-मेरवाड़ा पर अंग्रेजों के आधिपत्य के बाद यह प्रथम व्यवस्थित बंदोबस्त होते हुए भी इसमें कई गंभीर दोष थे। लगान की दर, जो फसल का आधा भाग थी, बहुत अधिक थी। वास्तव में यह दर उत्तर-पश्चिमी सूबों की प्रति एकड़ राजस्व भार से दुगनी थी।[३२] अतएव, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि किसान और अन्य लोग यह मांग करने लगे थे कि वास्तविक उपज के आधार पर लगान वसूली की प्रथा पुनः जारी की जाय। यद्यपि सरकार ने बंदोबस्त में किसी तरह के आधारभूत परिवर्तनों की इजाजत नहीं दी थी तथापि ग्रामों को यह छूट दी गई कि वे चाहें तो सीधी व्यवस्था के अन्तर्गत जा सकते हैं। ८१ ग्रामों ने इसे स्वीकार कर राहत की सांस ली। इससे यह स्पष्ट हो गया था कि एडमंस्टन का बंदोबस्त उन किसानों की स्थिति सुधारने में असफल रहा, जो अर्थाभाव के कारण अपने कुँओं की मरम्मत करने और अपनी जोतों को सुधारने में असमर्थ थे।[३३]

कर्नल सदरलैंड जिन्होंने एडमंस्टन के जाने के कुछ ही दिनों बाद अजमेर के कमिश्नर का पद संभाला था, कर-निर्धारण की इस प्रथा की कड़ी आलोचना की। उन्होंने इस प्रथा को अजमेर जिले के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त ठहराया तथा एक अलग ही ढंग की प्रक्रिया सुझाई जो कर्नल डिक्सन द्वारा मेरवाड़ा में लागू की गई थी। सदरलैंड ने अनुभव किया कि यदि वैसी ही व्यवस्था अजमेर के लिए लागू की जाय तो वह पूर्णतया लोकप्रिय सिद्ध होगी। कर्नल सदरलैंड ने जनवरी, १८४१ में अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि कपास, मक्का, गन्ना और अफीम की फसल देने वाली जोतों पर नकद दर लागू की जाए और अन्य फसलों वाली जोतों की पैमाइश की जाकर लगान बंदी की जाए तथा उपज का एक तिहाई भाग सरकारी राजस्व के रूप में लिया जाए व निकटवर्ती प्रमुख मंडियों में प्रचलित बाजार भावों के वार्षिक

आधार पर उसे नगदी में परिवर्तित किया जाय ।[34] नई भूमि पर खेती करने के लिए किसानों को प्रोत्साहन स्वरूप यह सुझाव दिया कि इनसे भूराजस्व प्रथम वर्ष में फसल का छठा भाग, दूसरे वर्ष में पांचवां भाग, तीसरे वर्ष में चौथा भाग और तत्पश्चात् तीसरा भाग लिया जाना चाहिए। उन किसानो को जो मेड़बंदी करें या नये कुँए खोदें उन्हें राजस्व में कुछ छूट भी दी जाए जिससे अधिकाधिक पड़त भूमि में खेती को प्रोत्साहन मिल सके ।[35]

कर्नल डिक्सन का बन्दोबस्त (१८४२)

इन सुझावों के आधार पर सदरलैंड ने डिक्सन के बंदोवस्त की भूमि का तैयार की जो अजमेर-मेरवाड़ा में अंग्रेजों के राजस्व प्रशासन के इतिहास में एक मानक सिद्ध हुआ है। फरवरी, १८४२ में अजमेर के सुपरिटेंडेंट पद पर नियुक्त होने के पूर्व डिक्सन मेरवाड़ा के सुपरिटेंडेंट थे और वहाँ उनका प्रशासन इतना सफल रहा कि भारत सरकार ने अजमेर जिले की कर-निर्धारण जैसी पेचीदी समस्या भी उनके हाथों में सौंपने का निर्णय लिया।

डिक्सन के आगमन के साथ ही अजमेर जिले में भौतिक विकास का नया चरण प्रारम्भ हुआ। आगामी छः वर्षों में अकेले मेड़बंदी के निर्माण और मरम्मत पर ही ४,५२,७०७ रुपए सरकार ने व्यय किए। कृषि विकास के लिए किसानों को सरकार ने उदार ऋण प्रदान किए। लगान की सरकारी मांग आधे से घटाकर $\frac{2}{5}$ कर दी गई। इसके साथ ही किसानों को यह सुविधा भी प्रदान की गई कि जो इसे स्वीकार न करना चाहे वह पुरानी खाम व्यवस्था मंजूर कर सकता है। जब कभी कोई नया तालाब बनाया जाता या मरम्मत की जाती तो लगान के साथ निर्माण व्यय का कुछ प्रतिशत अतिरिक्त जोड़ा जाता था ।[36]

कर्नल डिक्सन ने अजमेर जिले में कर-निर्धारण के संबंध में भी मेरवाड़ा के ग्रामों में अपने द्वारा किए गए राजस्व एवं प्रशासनिक कार्यों के अनुभवों का उपयोग किया। ये ग्राम उनकी सीधी व्यवस्था के अन्तर्गत थे। एडमंस्टन द्वारा निर्धारित लगान से उन्होंने प्रति गाँव पर आठ प्रतिशत रुपए तालाबों के निर्माण में व्यय किए गए तथा व्यय की पूर्ति के लिए जोड़े। जब कभी उन्हें यह अनुभव होता कि कोई ग्राम इस राशि का भार सहज वहन कर सकता है, तभी वे उस ग्राम पर यह भार लगाते थे। यदि उन्हें यह लगता कि कोई ग्राम इससे अधिक राशि देने में भी समर्थ है तो वे उसका लगान ऊंचा रखते व यदि कोई ग्राम सामान्य स्तर भी पूरा करने में असमर्थ होता तो वे निर्धारित राशि कम कर देते थे। लगान निर्धारित होने के पश्चात् ही लगान की दरें निर्धारित की जाती थीं। अलग-अलग गाँवों में आपस में राजस्व भाट की भिन्नता के कारणों को कभी समझने का प्रयास नहीं किया गया। जिले की पूर्ण जानकारी के बावजूद कर्नल डिक्सन अपने से पूर्व निर्धारित लगान में व्याप्त

असमानता को नहीं रोक सके[३७]।

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की राय में १,५८,२६३ रुपयों की राशि उचित थी। इसके अनुसार वे एडमंस्टन द्वारा निर्धारित लगान में तालाबों के निर्माण पर किए गए खर्च का ६ प्रतिशत व्यय भार और जोड़ देना चाहते थे। सन् १८४७--४८ में सरकार के लिए फसल की दो तिहाई वसूली संभव हो सकी तथा १,६७,२३७ रुपयों की राशि खजाने को उपलब्ध हुई। एडमस्टन की लगान व्यवस्था के मुकाबले में किसानों को डिक्सन की व्यवस्था के अन्तर्गत कम भार लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि असिंचित क्षेत्र में कृषि का बहुत विकास हुआ[३८]।

कर्नल डिक्सन को अपने द्वारा की गई व्यवस्था की व्यावहारिकता पर पूर्ण विश्वास था। नई बन्दोबस्त प्रक्रिया को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा 'यदि मौसम अनुकूल रहा और तालाब भर गए तो लोग आसानी से हंसी-खुशी लगान चुका सकेंगे। यदि सूखा पड़ता है तो हमने इतनी छूट की व्यवस्था कर ली है कि लगान भरने की पीड़ा लोगों को छू तक नहीं सकेगी। यह बात ध्यान में रखना जरूरी है कि हमनें लाभ जनता के लिए रखे हैं और अपने लिए घाटे का भार। अजमेर-मेरवाड़ा जैसे क्षेत्र में जहाँ मौसम अत्यन्त ही अनिश्चित रहता है जमींदारों को बकाया लगान के लिए, जबकि फसल हुई ही नहीं हो परेशान करना, उन्हें हतोत्साहित करना है।"

कर्नल डिक्सन के नए बन्दोबस्त की मंशा अकाल के वर्षों को छोड़कर सालाना जमा वसूली की नहीं थी। उसने लगान की रकम इतनी ऊँची निर्धारित की कि जिसे डिक्सन के अनुसार अच्छे वर्षों में वसूल किया जा सकता था। परन्तु उन्होंने आवश्यकतानुसार छूट देने की व्यवस्था भी रखी थी। जनता ने इसे बड़े अनमने ढंग से स्वीकार किया था। कर्नल डिक्सन ने अपने बन्दोबस्त पर टिप्पणी करते हुए कहा "जनता को यह समझने में कि इस व्यवस्था में उनके हित और लाभ को मुख्य स्थान दिया गया है, हमारा प्रयास व्यर्थ रहा।"राजगढ़ परगने ने तत्काल नए लगान को स्वीकार कर लिया। रामसर के किसानों ने जिन पर काफी भारी लगान लागू किया गया था कुछ हिचकिचाहट अवश्य दिखाई परन्तु डिक्सन के प्रभाव और उनके समझाने से नयी व्यवस्था स्वीकार कर ली।

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने यद्यपि बन्दोबस्त की स्वीकृति प्रदान कर दी थी परन्तु उनके मन में यह भय अवश्य था कि लगान इतना अधिक है कि संभवतः यह जिला इतनी राशि आसानी से भुगतान नहीं कर सकेगा। परन्तु उन्हें कर्नल डिक्सन के स्थानीय अनुभव और क्षेत्र के बारे में गहरी जानकारी के प्रति विश्वास के कारण इस पर आपत्ति प्रकट नहीं की। कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को भी लेफ्टिनेन्ट गवर्नर जैसा ही अंदेशा इस नई व्यवस्था के बारे में था परन्तु अंत में कर्नल डिक्सन द्वारा

प्रस्तावित बन्दोवस्त उसी रूप में इक्कीस वर्षों के लिए स्वीकार कर लिया गया। बन्दोबस्त के अन्तर्गत निर्धारित कर नहीं देने पर यहाँ मंसूख करने व खाम व्यवस्था लागू करने का प्रावधान था।

यह बन्दोवस्त केवल नाम के लिए ही मौजावार था। कर्नल डिक्सन ने वसूली की जो पद्धति अपनाई उससे यह व्यवहार में रैयतवारी बन गया था। कर्नल डिक्सन ने ग्रामों को हल्कों में विभाजित कर, प्रत्येक हल्के की वसूली के लिए एक चपरासी के अधीन रखा था। चपरासी—पटेल और पटवारी की सहायता से प्रत्येक जोतदार से पटवारी के रजिस्टर में उसके नाम के आगे चढ़ी रकम वसूल करता था। यदि जोतदार किन्हीं कारणों से यह राशि नहीं चुकाता तो ग्राम के बनिए के माध्यम से जिसके यहाँ उसका खाता होता था, यह रकम वसूल कर ली जाती थी। यदि निर्धारित राजस्व वसूली के ये सभी तरीके निष्फल रहते तो कर्नल डिक्सन को यह निर्णय लेना होता था कि इसमें कितनी छूट दी जानी चाहिए और वे इस प्रस्तावित छूट की राशि की स्वीकृति के लिए सरकार को प्रार्थना करते थे। इस तरह की छूट के लिए मई, १८५४ में कर्नल डिक्सन ने १६,३२५ रुपए की राशि सरकार को प्रस्तावित की थी। यदि किसी ग्राम का लगान चुकाने में कोई बाधा उपस्थित होती तो डिप्टी कलेक्टर को वहाँ भेज कर लगान को नए सिरे से विभाजित करने की व्यवस्था की जाती थी। इस तरह की प्रशासनिक प्रक्रिया पुरानी मौजावार पद्धति से मौलिक रूप से ही भिन्न थी। इस व्यवस्था के लिए ऐसे कलेक्टरों की आवश्यकता थी जिन्हें ग्राम के साधन-स्रोतों की पूरी-पूरी जानकारी हो[३९]।

अजमेर का बन्दोबस्त सम्पन्न करने के बाद कर्नल डिक्सन ने मेरवाड़ा में लगान-निर्धारण का काम हाथ में लिया। मेरवाड़ा के बारे में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने किसी तरह का निर्देशन व नियम लागू नहीं किया। कर्नल डिक्सन को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई कि वे जो भी उचित समझें लागू कर सकते हैं। डिक्सन २७ सितम्बर, १८५० को मेरवाड़ा में भी बन्दोबस्त लागू करने में सफल हुए[४०]। नया बन्दोवस्त बीस साला था। बन्दोबस्त में वार्षिक राजस्व की राशि १,८८,७४२ रुपए निर्धारित की गई[४१]।

कर्नल डिक्सन ने इस बन्दोबस्त में न तो भूमि को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करने वाली विशद प्रक्रिया और न मूल्य-निर्धारण की ही प्रक्रिया अपनाई। किसी भी ग्राम के लिए एक मानक माँग को निर्धारित करते समय उन्होंने एडमंस्टन द्वारा निर्धारित लगान को आधार माना और जलाशय या मेड़बन्दी का ६ प्रतिशत निर्माण-व्यय और जोड़ दिया। कर्नल डिक्सन ने इस जिले के बारे में अपने गहन अनुभवों के आधार पर और भी कतिपय महत्वपूर्ण निर्णय लिए। ग्राम की पैमाइश होने के बाद लगान निर्धारित किया गया। इसके अन्तर्गत विभिन्न ग्रामों के राजस्व

का भार एक-सा नहीं था। कर्नल डिक्सन ने पहले ग्रामों की हालत का अध्ययन किया और जब उन्हें यह विश्वास हुआ कि अमुक गाँव उपज का आधा हिस्सा और अगर वहाँ तालाब का निर्माण हुआ है तो ६ प्रतिशत निर्माण कर देने की स्थिति में है, तो उन्होंने उतना उस गाँव का लगान निश्चित कर दिया। अगर उन्हें यह मालूम पड़ता कि किसान इससे अधिक दे सकते हैं या इतना नहीं दे सकते तो राशि को घटाया या बढ़ाया जा सकता था[४२]।

डिक्सन का बन्दोबस्त संतोषजनक ढंग से काम करता रहा और सन् १८४७४८ में सरकार को राजस्व से राशि १,६७,२३७ रुपए प्राप्त हुए। अबतक प्राप्त राजस्व में उपरोक्त राशि सर्वाधिक थी। यह राशि उनके द्वारा प्रस्तावित १,७५,७५६ की राशि के लगभग थी। उपरोक्त राशि उन्होंने १ प्रतिशत सड़क का कर घटाकर तथा १ प्रतिशत जलाशय-निर्माण कर के समावेश के आधार पर प्रस्तावित की थी।[४३]

सन् १८५७ में कर्नल डिक्सन की मृत्यु से अजमेर जिले को उनकी सेवाओं से वंचित होना पड़ा। उनके निधन के साथ ही क्षेत्र में भौतिक विकास एवं नव-निर्माण का युग समाप्त हो गया। निस्सदेह उनके प्रशासन-काल में प्रकृति भी अनुकूल रही। उनके बाद राजस्व से प्राप्त राशि स्थिर रही। उनके बन्दोबस्त के सिद्धान्त को भुला दिया गया और यह भावना शनैः शनैः बल पकड़ती गई कि निर्धारित लगान सरकार की एक निश्चित वार्षिक माँग है जिसकी पूरी वसूली आवश्यक है।[४४]

कर्नल डिक्सन के बाद बन्दोबस्त एवं कर-निर्धारण की यह जटिल समस्या अजमेर के प्रथम डिप्टी चीफ कमिश्नर कैप्टिन जे० सी० ब्रुक्स ने अपने हाथ में ली। उन्होंने २४ जुलाई, १८५८ को भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट में लिखा कि शामलात की भूमि से प्राप्त लाभ का कोई लेखा नहीं रखा गया है और छूट की राशि सम्पूर्ण गाँव द्वारा उपभोग करने के कारण वास्तविक पीड़ितों तक पूरी नहीं पहुंच पाती है। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने तालाब के पेटे की भूमि पर लगान को अधिक व अनुचित ठहराया। उन्होंने पटवारियों की वेतन वृद्धि कर उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारा तथा उनके हल्कों में और छोटे-छोटे गाँव जोड़ दिए ताकि काम की कमी न रहे।[४५] ब्रुक्स ने यह अनुभव किया कि इस बन्दोबस्त में किसानों पर कर का भार अधिक है क्योंकि गत तीन वर्षों में गेहूँ और जौ के बाज़ार भाव पूर्व स्तर से आधे रह गए थे।[४६] सन् १८६७ तक राजस्व की राशि पूरी वसूल की जाती रही। सन् १८६६ में राजस्व प्रत्येक ग्राम के पटेल से वसूल करने के आदेश लागू किए गए।[४७]

लाट्रस का बन्दोबस्त :

पुराने बन्दोबस्त की समाप्ति की अवधि समीप आ जाने से सन् १८७१ में लाट्रस को नए बन्दोबस्त के लिए बन्दोबस्त अधिकारी नियुक्त किया गया। अजमेर के कमिश्नर सॉन्डर्स ने उन्हें इस सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक निर्देशन प्रदान किया। उनसे जहां तक संभव हो सके प्रत्येक पटवारी के हल्के में एक जरीब सक्रिय रखने की सलाह दी गई ताकि काम जल्दी पूरा हो सके तथा उन्हें यथासंभव प्रत्येक ग्राम के जोतदार की विगतवार तफसील तैयार करने को कहा गया जिसमें उनके जोत की भूमि और उसकी श्रेणी का उल्लेख हो। पैमाइशों के दौरान क्षेत्रीय मानचित्र भी तैयार करवाने व पैमाइशों के सम्पन्न हो जाने के बाद प्रत्येक जोतदार को स्थानीय क्षेत्रीय मानचित्र की तथा बन्दोबस्त रेकॉर्ड में उसकी प्रविष्टि की एक-एक प्रति प्रदान करने का आदेश भी दिया गया।[४८]

खतोनी और खसरा के बारे में निम्नांकित प्रविष्ठियां सुझाई गईं—

१. क्रमांक

२. लम्बरदार का नाम

३. मालिक का नाम, जाति, पैतृक-हिस्से की राशि तथा हिस्से का भाग।

४. जोतदार का नाम, जाति, पैतृक, मौरूसी अथवा नहीं कुल जोत।

५. शुमार सूची में दर्ज खेतों की संख्या।

क्षेत्रफल—

६. उत्तर-दक्षिण मीन

७. पूर्व-पश्चिम मीन

सर्वे का विस्तृत क्षेत्र—

८. पड़त

९. कृषियोग्य

१०. नव तोड़

भूमि की किस्म—

११. कुओं से सिंचित

१२. अन्य स्रोतों से सिंचित

१३. असिंचित

१४. कुल रकबा

१५. फसलों की विगतें

लगान—

१६. दर

१७. राशि[४६]

डब्ल्यू. जे. लाटूस की यह दृढ़ मान्यता थी कि मूल लगान अत्यधिक निर्धारित था।[५०] कृषियोग्य भूमि में विशेष वृद्धि नहीं हुई थी यद्यपि कुँए काफी संख्या में खोदे गए थे तथापि अधिकांश कुँए उन क्षेत्रों में खोदे गए हैं जहां जलाशयों से सिंचाई होती थीं। उनके अनुसार अकाल के बाद कृषि-सम्पत्ति में उल्लेखनीय ह्रास हुआ था। अकाल के कारण पशुओं की संख्या बहुत कम हो गई थी। डब्ल्यू. जे. लाटूस का कहना था कि उन्हें राजस्व कर उपज का छठा भाग रखने का निर्देश दिया गया था जबकि कई गांव ऐसे थे जिनसे एक चौथाई राजस्व प्राप्त किया जा सकता था।[५१]

लाटूस ने नए लगान का निर्धारण ग्रामों के आधार पर न करके खेड़ों के आधार पर किया। गवर्नर जनरल ने भी उनके इस कदम का स्वागत किया।[५२] यह अनुभव किया गया कि पहाड़ियों और घाटियों के कारण ग्राम एक दूसरे से अधिक पृथक् हैं और खेड़ों के लोगों के एक स्थान पर जमा रहने के कारण आपसी सद्भाव और भाईचारे की भावना विद्यमान है। इसलिए लगान उनके आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। यह जानते हुए भी कि इस प्रकार के पृथक्करण से लोगों से संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना शिथिल होगी, इसे व्यावहारिक रूप दिया गया।[५३] इस पद्धति का एक लाभ यह हुआ कि पहले ग्रामों पर एक सा ही राजस्व भार था उसके बजाय विभिन्न स्तर के ग्रामों में राजस्व की विभिन्न दरें लागू की गईं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, उन्होंने लगान निर्धारित करने के लिए ग्रामों को अलग-अलग समूहों में विभक्त किया और इन समूहों में कुछ आदर्श ग्राम छांटे जो आसानी से राजस्व चुकाते रहे थे। इन आदर्श ग्रामों की आय की राशि के आधार पर उन्होंने विभिन्न किस्मों की मिट्टी वाले खेतों के लिए उपयुक्त दरें निर्धारित की।[५४] उन्होंने एक सामान्य अच्छे वर्ष में एक एकड़ भूमि में प्राप्त उपज को इन दरों के निर्धारण का आधार माना।[५५] लाटूस द्वारा प्रयुक्त भूमि की किस्मों पर आधारित दरों की प्रक्रिया को बाद में अन्य ग्रामों में भी लागू किया गया जहां पूर्ववर्ती वर्षों के आँकड़ों से यह ज्ञात हो सका कि ये ग्राम निर्धारित राशि का भुगतान आसानी से कर पाने में समर्थ हैं।[५६] अकाल के वर्ष के बारे में खुली तौर पर यह स्वीकार किया कि "प्रस्तावित भूराजस्व वसूल नहीं होगा।"[५७] लाटूस की राय में डिक्सन का बन्दोबस्त मौसम के विपरीत तथा मूल लगान अत्यधिक ऊँचा होने के कारण असफल रहा था। सरकार ने भी राजस्व की दरों के बारे में अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन की

आवश्यकता को महसूस करते हुए लाट्स को इस पर विचार करने के लिए कहा ।[५८]

सिंचाई कर की समस्या का भी लाटूस ने हल निकाला । उन्होंने सिंचाई कर को राजस्व से पृथक् करके निर्धारित किया । तालावों का वर्गीकरण उनकी सिंचाई की क्षमता के आधार पर प्रत्येक तालाब से सिंचाई कर की आय की निश्चित राशि निर्धारित कर दी गई, जो कि उस तालाब से पानी लेने वाले किसान से वसूल की जाती थी । इससे आबपाशी में कुछ सीमा तक स्थिरता आ सकी । सम्पूर्ण अजमेर-मेरवाड़ा की आबपाशी की राशि ५५,४३२ रुपए निर्धारित की गई । तालाब से सींची जाने वाली ज़मीन (तालाबी) की प्रति एकड़ अधिकतम न्यूनतम व औसत दरें क्रमशः ५–५ रुपए, ३–६ रुपए व ३–८ रुपए निर्धारित की गईं । तालाबों के सूदे जाने पर उनके पेटे की ज़मीन जो आबी कहलाती थी उसकी दरें क्रमशः १–१४ रुपए और १–६ रुपए प्रति बीघा निर्धारित की गईं ।[५६]

किसान अपना लगान ग्राम के किसी भी मुखिए के माध्यम से जमा करा सकते थे । इस पद्धति के अनुसार मुखिया ग्राम का "वास्तविक प्रतिनिधि" बन गया था और संयुक्त उत्तरदायित्व की असंगतियां बहुत कुछ समाप्त हो गईं थीं । यद्यपि उन दिनों संयुक्त उत्तरदायित्व की प्रणाली को स्थाई रूप से समाप्त नहीं किया जा सका था ।[६०]

राजस्व, जिसमें आबपाशी कर भी सम्मिलित था मेरवाड़ा में १,१८,६६१ रुपए एवं अजमेर में १,४२,८९६ रुपए निर्धारित किया गया । इस तरह दोनों जिलों को मिलाकर कुल राजस्व राशि २,६१,५५७ रुपए निर्धारित हुई । लाटूस द्वारा अजमेर-मेरवाड़ा के लिए निर्धारित सरकारी देय राशि डिक्सन के बन्दोबस्त की निर्धारित राशि से १४ प्रतिशत कम थी । सरकारी आय में से ५ प्रतिशत लम्बरदारों के वेतन व्यय तथा १ प्रतिशत हल्का मुखिया के वेतन के रूप में काट दिया जाता था ।[६१]

लाटूस के बन्दोबस्त को दस वर्षों से बन्दोबस्त के रूप में स्वीकार किया गया। केवल सन् १८७७ और १८७८ के सूखे के वर्षों को छोड़कर शेष वर्ष सामान्य थे । सन् १८७७ में भी लोगों ने निर्धारित लगान की पूरी राशि अदा की थी । वास्तव में सन् १८८० से १८८४ तक केवल ६५५ रुपयों की अजमेर में तथा ५६१ रुपयों की मेरवाड़ा में छूट दी गई ।[६२]

लाटूस द्वारा निर्धारित दसवर्षी बंदोबस्त की अवधि सन् १८८४ में समाप्त हो रही थी । सन् १८८२ में भारत सरकार ने लगान मुलतवी और छूट की समस्याओं की ओर ध्यान दिया और यह अनुभव किया गया कि इस दिशा में नए सिरे से विचार की आवश्यकता है । नई प्रक्रिया इतनी परिवर्तनीय न हो कि समूची करा-धान व्यवस्था ही पुनः नए सिरे से करनी पड़े । विशेषतः भारत सरकार इस बारे

में उत्सुक थी कि सूखे एवं अनिश्चित भू-भागों में जारी परिवर्तनीय कराधान की पद्धति परीक्षण के तौर पर एक निश्चित भू-भाग में जारी रखकर उससे प्राप्त अनुभवों के आधार पर देश में अन्यत्र भी ऐसे भू-भागों में लागू की जाय।"[६३] इस पद्धति के अन्तर्गत प्रशिक्षित पटवारी और कानूनगों की आवश्यकता अनुभव की गई जिससे मानचित्रों और रेकॉर्ड को समय-समय पर तैयार किया जा सके।[६४]

लाट्स के बंदोबस्त के बाद चूँकि कृषि भूमि में अधिक वृद्धि हो गई थी तथा सन् १८६८ का वर्ष जिसमें कि बन्दोबस्त की दरें लागू की गईं थीं अकाल का वर्ष होने के कारण लगान की दरें निर्धारित हुईं थीं इसलिए नए बंदोबस्त की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। सन् १८८२ में सरकार ने नया बन्दोबस्त करवाने का फैसला किया। इस कार्य के लिए उत्तर-पश्चिमी सूबे की सरकार से एक अनुभवी अधिकारी की मांग की गई। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने इस कार्य के लिए अपने प्रांत के अनुभवी बन्दोबस्त अधिकारी वाईटवे की सेवाए अजमेर को प्रदान कीं।[६५]

वाईटवे द्वारा प्रस्तावित सुधार

वाईटवे ने लगान निश्चित करने के लिए ग्राम को इकाई माना। तालाब अथवा कुँओं से युक्त ग्रामों तथा कुँओं की खुदाई की सम्भावना से युक्त घाटियों को इस प्रकार का क्षेत्र निर्धारित किया जिसके लगान में घट-बढ़ नहीं हो सकती थी। मेरवाड़ा में सभी क्षेत्रों को उपर्युक्त श्रेणी में रखा गया जबकि अजमेर में १३६ ग्रामों में से ६१ ग्रामों को इस प्रकार की श्रेणी में रखा गया जिनके लगान में घट-बढ़ हो सकती थी। जिसे हम परिवर्तनीय क्षेत्र कह सकते।[६६]

अपरिवर्तनीय लगान वाले क्षेत्रों के कर-निर्धारण के लिए असिंचित भूमि की तीन साल की औसत उपज को कर का आधार तथा इन तीन सालों में दो अच्छे साल और एक सुखे का साल रखा गया। इस क्षेत्र में से लाट्स द्वारा बंदोबस्त किया हुआ क्षेत्र छोड़ दिया गया और शेष क्षेत्रों का राजस्व असिंचित भूमि की दर पर तय किया गया। असिंचित भूमि में १२,२७० एकड़ की वृद्धि पाई गई जिससे वाईटवे की व्यवस्था के अन्तर्गत राजस्व में २७,००० की राशि की वृद्धि निर्धारित हुई।[६७]

परिवर्तनीय लगान वाले क्षेत्रों के कर-निर्धारण के लिए, ग्रामों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया—वे ग्राम जिनके कर का निर्धारण स्थाई रूप से दिया जाय तथा वे ग्राम जिनमें समयानुसार परिवर्तनशील दरें लागू होती रहें। वाईटवे महोदय ने परीक्षण के तौर पर अजमेर और मेरवाड़ा के कुछ ग्रामों का चयन किया और उनमें परिवर्तनशील पद्धति लागू की। परिवर्तनशील पद्धति लागू करना कठिन था क्योंकि असिंचित भूमि पर राजस्व की दरें बहुत कम थीं। इसके अतिरिक्त परिवर्तनशील पद्धति किसी पहाड़ी ग्राम में लागू भी नहीं की जा सकती थी क्योंकि उनमें कृषि

भूमि सदा उतनी ही बनी रहती थी और सामान्य वर्षों में भी अजमेर-मेरवाड़ा में फसलो की उपज संतोषजनक ही होती थी। यहां खेतों की मेड़ बांध कर उनमें वर्षा का जल रोका जाता था। पुष्कर तहसील को भी परिवर्तनशील लगान-पद्धति में से हटा देना पड़ा क्योंकि मिट्टी के टीलों के खेतों में बिखरने से जमीन के उपजाऊपन में वृद्धि होकर अच्छी फसलें होती थीं, विशेषतः गन्ना और बाजरा। असिंचित भूमि अधिकांशतः अजमेर के गंगवाना, राजगढ़ और रामसर चकलों में थी। परिवर्तनशील पद्धति के परीक्षण के तौर पर, वाईटवे ने अजमेर में २६ गांव तथा ब्यावर के १७ गांव छांटे।[६८] उनके द्वारा अपनाया गया सिद्धांत यह था कि निर्धारित राशि और पिछले बंदोबस्त के समय की लगान-दरों को अपरिवर्तित रहने दिया जाय इनमें कुंओं से युक्त वे भूखण्ड नहीं थे जिन्हें सरकार ने लोगों को प्रदान किए थे।[६९]

वाटईवे ने यह सिफारिश की कि वह सारी भूमि जो कि कुंओं व नाड़ी से सींची जाती है और जो लाटूस के वन्दोबस्त के समय थी उनसे आबपाशी पर लगान दर वसूल किया जाय। दो फसली भूमि के लिए उन्होंने यह सुझाव दिया कि उस भूमि में जो कुंओं से सिंचित होती है और जिससे दो फसलें ली जाती हैं उनसे प्रथम फसल पर पूरी दर वसूल की जानी चाहिए और दूसरी फसल पर एक चौथाई ज्यादा वसूल होनी चाहिए। जिस भूमि पर एक फसल वर्षा से होती है और दूसरी सिंचाई से वहां कर की वसूली दोनों दरों के अनुसार होनी चाहिए।[७०] असिंचित दो फसली भूमि के लिए उन्होंने सुझाव दिया कि उससे दोनों फसलों पर एक ही लगान वसूल किया जाना चाहिए।[७१] भारत सरकार ने वाईटवे महोदय को यह सलाह दी थी कि जिले के ग्रामों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाना चाहिए—

१. निर्धारित स्थाई लगान वाले ग्राम।

२. परिवर्तनीय लगान वाले ग्राम।

३. वे ग्राम जिनमें अंशतः स्थाई और अंशतः परिवर्तनीय लगान लागू हैं।[७२]

क्षेत्र की भौगोलिक बनावट एवं वर्षा की अनिश्चितता के कारण किसी भी जोतदार के पास सम्पूर्ण जोत कदाचित् ही सिंचित जोत रही होगी। उसकी जोत में असिंचित कृषि भूमि का समावेश था जिसकी उपज नाममात्र थी। वाईटवे ने किसी भी ग्राम को अंशतः स्थाई और अंशतः परिवर्तनीय लगान वाले क्षेत्र की श्रेणी में नहीं विभाजित किया जबतक कि उस ग्राम की प्राकृतिक बनावट से ऐसे दो स्पष्ट भाग न झलकते हों।[७३]

वाईटवे ने अपनी रिपोर्ट में कहा "मैंने जो व्यवस्था प्रस्तावित की है, इसके अनुसार ग्राम का लगान असिंचित भूमि वाली दरों से सम्बन्ध रखता है जो भविष्य

में मूल्यों में वृद्धि होने पर बढ़ाया जा सकता है ताकि सरकार को उचित लगान प्राप्त हो सके। साथ ही भविष्य में कभी लगान में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव किए जाने पर उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। यह परिवर्तन केवल सामान्य कृषि भूमि में वृद्धि पर ही निर्भर करेगा और इसके फलस्वरूप लगान में भी स्वाभाविक वृद्धि हो सकेगी।" वाईटवे के अनुसार इस व्यवस्था की अच्छाई यह थी कि सरकार और किसान दोनों को अच्छी फसलों के लाभ प्राप्त होते थे और संकट के दिनों में दोनों को ही हानि उठानी पड़ती थी।[७४]

भीषण अकाल या प्राकृतिक कोप के दिनों के लिए उन्होंने यह सुझाव दिया कि कमिश्नर को ऐसे अधिकार प्राप्त होने चाहिएं जिनके अन्तर्गत वह असिंचित भूमि की औसत फसल को "शून्य", "चौथाई" या "आधी उपज" के रूप में घोषित कर सके। ऐसे मामलों में सिंचित भूमि का लगान उतना ही रहना चाहिए, परन्तु यदि फसल "आधी" घोषित की जाती है तो चार एकड़ असिंचित भूमि को दो एकड़ के तुल्य और यदि फसल "एक चौथाई" घोषित होती है तो एक एकड़ को "शून्य" के बराबर मानकर लगान नहीं लिया जाना चाहिए।[७५]

परिवर्तनीय लगान की उनकी पद्धति निम्नांकित उदाहरणों से जो स्वयं वाईटवे ने प्रस्तुत किए हैं, आसानी से समझी जा सकती है:—

"अमुक ग्राम में यह निश्चित किया गया है कि निम्नांकित भूमि सामान्यतः जोत-भूमि में है:—

एकड़		प्रति एकड़ रुपए में	कराधान रुपए में
असिंचित	१२४	—।१० आने	७७।८
आबी	४०	१।६	६२।८
तालाब	८	२।१३	२२।८
कुँए	५०	३।१२	१८७।८
	२२२		३५०—

इस क्षेत्र को असिंचित इकाई के बहुअंश में घटाने पर जिसकी कि आबी दरें असिंचित की अढ़ाई गुणी, तालाबी साढे चार गुणी और कुँओं से सिंचित भूमि की लगान दरें ६ गुणी होती हैं। असिंचित क्षेत्र के रूप में लिए जाने पर उपरोक्त क्षेत्र इस प्रकार होगा:—

	एकड़
असिंचित	१२४: १=१२४
आबी	४०: २½=१००
तालाबी	८: ४½=३६
कुंओं वाली	५०: ६ =३००
	५६०

उन्होंने यह भी विश्लेषण किया कि यह उपर्युक्त ५६० एकड़ "असिंचित क्षेत्र" कहलाएगा और दस आना प्रति एकड़ के हिसाब से असिंचित दर द्वारा गुणित किए जाने पर इससे ३५० रुपए का राजस्व प्राप्त होगा।[७६]

असिंचित क्षेत्र में प्रतिवर्ष हेरफेर होता था अतएव भूराजस्व भी प्रतिवर्ष घटता-बढ़ता रहता था। वाईटवे के अनुसार यह स्थिति टल सकती थी यदि असिंचित दरें एक विशेष सीमा तक ही परिवर्तित की जाएं। वाईटवे का कहना था कि हम यह मान सकते हैं कि अमुक ग्राम के मामले में उपरोक्त सीमा पौने नौ आने तक की है और सवा ग्यारह आने तक अच्छी फसल के दिनों की दरें हैं तो उपरोक्त दर पूर्व दर तक बढ़ सकती है और अकाल के दिनों में बाद की दर तक घटाई जा सकती है। इससे वह लगान भी प्रभावित नहीं होगा जिसके बारे में हम मानते हैं कि असिंचित भूमि इकाई की मानक दर दस आना है।[७७]

उपरोक्त बन्दोबस्त बीस वर्षों के लिए निर्धारित किया गया था, तथापि इसकी अवधि समाप्त होने के दिनों में सरकार ने इसमें कुछ विशेष संशोधन किए। ये संशोधन मुख्यतः परिवर्तनशील लगान वाले ग्रामों के बारे में थे। परिवर्तनशील लगान की प्रक्रिया लोकप्रिय नहीं हुई और सरकार ने समय-समय पर परिवर्तनशील लगान के स्थान पर निश्चित लगान लागू किया। सन् १८९५ में, राजस्व के विलम्बन और छूट के बारे में विशेष नियम निर्धारित किए गए। इन नियमों के अन्तर्गत जो व्यवस्था लागू की गई वह इतनी लाभप्रद रही कि अकाल एवं प्राकृतिक संकट के समय, छूट के मामले में अविलम्ब कार्यवाही की जा सकी थी।[७८]

अजमेर-मेरवाड़ा में किसानों को राहत पहुँचाने की परम्परा सी चली आ रही थी। जो भी किसान अपनी जमीन पर कुंए आदि खुदवाकर विकास करता था, उस पर उस बन्दोबस्त तथा आगामी बन्दोबस्त के दौरान बढ़ी हुई दरें लागू नहीं की जाती थीं। यही प्रक्रिया तकावी ऋण और अन्य निजी कर्जों द्वारा विकास कार्यों पर भी लागू होती थीं। इस्तमरारदारी जमींदारियों में बढ़ी दरों का भार तत्काल लागू कर दिया जाता था और वहां इन पर कर-निर्धारण से छूट की अवधि किसी भी सूरत में आठ साल से अधिक नहीं होती थी। कुछ भार तो

विकास के पहले वर्ष ही लागू कर दिया जाता था। इतने कड़े नियमों के बावजूद भी इस्तमरारदारी किसान खालसा क्षेत्र के किसानों की तुलना में अधिक समृद्ध थे जबकि खालसा भूमि के किसान उन दिनों भारी कर्जे में डूबे हुए थे। ऋण-प्राप्ति कानून की पेचीदगी और जमानत सम्बन्धी बड़े कड़े नियमों के कारण खालसा-भूमि के किसान सन् १८८३ के एक्ट १६ के अन्तर्गत ऋण के लिए प्रार्थनापत्र देना बहुधा पसंद नहीं करते थे।[७६]

यद्यपि खालसा-भूमि में भूप्राप्ति निर्धारित करने का काम कम समय में संतोषजनक ढंग से पूरा हो गया था तथापि राजस्व को स्थाई आधार प्रदान करने की समस्या वैसी ही बनी रही। मराठों ने यहाँ नाममात्र का भी बन्दोबस्त नहीं किया था। विल्डर (१८१८--२४) व मिडलटन (१८२४--२७) ने, जो कि यहाँ अंग्रेज़ी शासन के प्रारम्भ में अधिकारी नियुक्त हुए थे इस क्षेत्र की गरीबी का सही ज्ञान न होने के कारण कुछ समृद्ध वर्षों के आँकड़ों व मराठों द्वारा उगाई गई रकम पर विश्वास करने के कारण राजस्व की राशि बहुत ऊँची निर्धारित की थी। केवेंडिश के सुधारों ने राजस्व प्रशासन को कुछ व्यवस्थित रूप दिया था। एडमंस्टन दस वार्षिक बन्दोबस्त जो अजमेर-मेरवाड़ा के अंग्रेज़ी शासन के अन्तर्गत आने के बाद प्रथम व्यवस्थित बन्दोबस्त था लोकप्रिय नहीं हुआ, क्योंकि उसमें निर्धारित संयुक्त उत्तरदायित्व की प्रणाली के प्रति किसानों में उत्साह का अभाव था।

कर्नल डिक्सन कलाट्स का बन्दोबस्त दस वर्षों के लिए लागू किया गया था। बन्दोबस्त सम्बन्धी कतिपय समस्याओं को गम्भीरता से नहीं लेने के कारण अधिक सफल नहीं रहा। वाईटवे महोदय ने भी इस दिशा में सुधार लाने में महत्व-पूर्ण योगदान दिया, परन्तु बार-बार अकाल का होना, कम उपजाऊ भूमि और वर्षा की अनिश्चितता के कारण अजमेर-मेरवाड़ा में लगान की निर्धारित वार्षिक राशि की वसूली अच्छे और बुरे दोनों ही मौसम में संतोषप्रद नहीं हो सकी।

अध्याय ४

१. जे. डी. लाटूस—'सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा' पृ. २६ (१८७४)
२. उपरोक्त।
३. असिस्टेंट कमिश्नर द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र, संख्या २६८१ दिनांक ६ अगस्त, १६०६।
४. जे. डी. लाटूस—"सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" पृ. २७ (१८७४)

५. उपरोक्त पृ. २७ (१८७४)

६. सुपरि. एफ. विल्डर द्वारा मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, दी अजमेर, राजस्व कार्यालय, २७ सितम्वर, १८१८ (रा. रा. पु. मण्डल)।

७. जे. डी. लाटूस—"सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" पृ. २७ (१८७४)।

८. उपरोक्त।

९. उपरोक्त।

१०. वी. एच. वॉडन पावेल "ए मेन्यूग्रल ऑफ दी लैंड रेवेन्यू सिस्टम एण्ड लेण्ड टेन्योर्स ऑफ ब्रिटिश इंडिया" पृ. ५२९-३८।

११. जे. डी. लाटूस—"सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" पृ. २७ (१८७४)

१२. उपरोक्त।

१३. श्री एफ. विल्डर द्वारा मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र दिनांक २७-९-१८१८ (रा. रा. पु. मं.)

१४. श्री विल्डर सुपरि. अजमेर द्वारा मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी रेजीडेंट दिल्ली को पत्र दिनांक २७-९-१८१८ "सरकारी भूमि का प्रस्तावित राजस्व इस वर्ष लगभग १,४४,००० शेरशाही रुपए होगा। यह रकम उससे कहीं अधिक होगी जो वापू सिंधिया को प्राप्त हुआ करती थीं और साथ ही हम इस व्यवस्था में अपने भावी वन्दोवस्त को लागू करने में सर्वोत्तम आधार लागू कर सकेंगे और विना लोगों को असंतुष्ट किए दिनोंदिन अधिक राजस्व प्राप्त हो सकेगा। मुझे जो विभिन्न किसानों की संख्या उनके हल, कुँए, वैलों के विभिन्न लेखे प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार भावी राजस्व आज के उदार आंकड़ों की तुलना में कहीं अधिक प्राप्त होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह राशि तीन या चार सालों में आसानी से दुगुनी हो जाएगी और इस्तमरार परगने भी हमारी व्यवस्था में सौंपे जाएं तो मुझे विश्वास है कि जो राशि अभी कूंती गई है अर्थात् २,६७,७६२ रुपए इसी तरह वढ़ कर हमारे राजस्व में जुड़ सकेंगे।"

१५. श्री विल्डर सुपरि. अजमेर द्वारा मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी, रेजीडेन्ट दिल्ली को पत्र दिनांक १८ फरवरी, १८२०।

१६. श्री एफ. विल्डर, सुपरि. अजमेर ने सर डेविड ऑक्टरलोनी रेजीडेन्ट दिल्ली को पत्र (दिनांक २७-९-१८१८) लिखा कि भूमि की वनावट किस्म (इस सूवे की) के वारे में यह कहा जा सकता है कि वह रेतीली होने के वावजूद अच्छी और अत्यधिक उपजाऊ है और दो फसलें पैदा की जा सकती

हैं तथा ऐसा शायद ही कोई ग्राम होगा जिसमें कुँए नहीं हों और उनमें पानी २० या ३० फीट से अधिक गहरा हो। यहाँ की ज़मीन चना और जौ की फसलों के लिए अधिक उपयुक्त है।

१७. जे. डी. लाटूस "सैटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" पृ. २०।

१८. श्री फ्रांसिस हाकिन्स रेजीडेन्ट मालवा व राजपूताना द्वारा पत्र क्रमांक ५३, दिनांक १२-२-१८२३ रा. (रा. पु. मण्डल) लाटूस—गजेटिर्स अजमेर-मेरवाड़ा (१८७५) पृ. ९३।

१९. सर डेविड ऑक्टरलोनी द्वारा एच. मैकेंजी, सचिव भारत सरकार को पत्र दिनांक ६-१-१८२५ (रा. रा. पु. मं.)।

२०. लाटूस-सेटलमेन्ट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा, पृ. ७१ (१८७४)।

२१. उपरोक्त, पृ. ७१ और ७२।

२२. केवेंडिश का पत्र दिनांक १० मई, १८२३ (रा. रा. पु. मं.)।

२३. श्री केवेंडिश द्वारा रेजीडेन्ट को पत्र दिनांक २९ अप्रेल, १८२९।

२४. व्यक्तिगत जोत को कूंतने की व्यवस्था। खेवटदारी व्यवस्था के नाम से जानी जाती थी।

२५. श्री केवेंडिश सुपरि. अजमेर द्वारा केलबुक रेजीडेन्ट मालवा व राजपूताना को पत्र दिनांक १० व १२ जुलाई, १९२९ (रा. रा. पु. मं.)।

२६. सचिव भारत सरकार का फ्रांसिस हाकिंस रेजीडेन्ट मालवा व राजपूताना को पत्र, क्रमांक ७४ दिनांक ९-२-१८३० (रा. रा. पु. मं)।

२७. जे. डी. लाटूस "सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" (१८७४) पृ. ७२-७३।

२८. उपरोक्त, पृ. ७४।

२९. एडमस्टन-सेटलमेंट रिपोर्ट, दिनांक २६ मई, १८३६ (रा. रा. पु. मं.)।

३०. उपरोक्त।

३१. अकाल के दिनों में अन्य प्रदेशों को भाग जाने वाले 'फरार' व खेती छोड़ कर शारीरिक श्रम से मज़दूरी कमाने वाले 'नादर' कहलाते थे।

३२. लाटूस—"सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" (१८७४), पृ. ७५।

३३. सी. सी. वाट्सन-राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, अजमेर-मेरवाड़ा, १-ए (१९०४), पृ. १२।

३४. उपरोक्त पृ. १३।

३५. उपरोक्त पृ. १३ ।

३६. कर्नल डिक्सन द्वारा डब्ल्यू. म्यूर सचिव उ. प्र. सरकार, आगरा, क्रमांक २६५ (१८५६) रा. रा. पु. मं. ।

३७. फाइल क्रमांक १८३, कमिश्नर कार्यालय, भूमि प्रशासन, राजस्व बन्दोबस्त और सर्वे बन्दोबस्त रेकॉर्ड्स, प्राचीन क्रम 'बी' १८५०-१८५२, (रा. रा. पु. मं.) ।

३८. उपरोक्त ।

३९. फाइल क्रमांक 'बी' ३ । ५ प्रा. १८५० से १८५२-अजमेर सेटलमेंट रिपोर्ट, कर्नल डिक्सन (रा. रा. पु. मं.) ।

४०. कर्नल डिक्सन द्वारा जे. थार्टन सचिव उ. प्र. सू. सरकार को पत्रसंख्या २७८, १८५० दिनांक २७-९-१८५० ।

४१. लाटूस-सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा (१८७४) पृ. १०४ ।

४२. पत्र संख्या १५८, १८५२ । कर्नल डिक्सन द्वारा डब्ल्यू. म्यूर उ. प्र. सूबा सरकार को पत्र संख्या १५८, १८५१ (रा. रा. पु. मं.) ।

४३. जे. डी. लाटूस "सेटलमेंट रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा" (१८७४) पृ. ७८ ।

४४. जे. सी. ब्रुक्स द्वारा पत्र दिनांक २४ जुलाई, १८५८ ।

४५. डेविड्सन द्वारा मेजर ईडन कार्यवाहक कमिश्नर अजमेर को पत्र संख्या १४६ फाइल क्रमांक १४४५ (रा. रा. पु. मं.) ।

४६. उपरोक्त ।

४७. लायड डिप्टी कमिश्नर अजमेर द्वारा मेजर ईडन कार्यवाहक कमिश्नर को पत्र दिनांक ७-१२-१८५९ (रा. रा. पु. मं.) ।

४८. सॉडर्स कमिश्नर अजमेर द्वारा ब्रुक्स चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक ८-११-१८७१ (रा. रा. पु. मं.) ।

४९. एचिसन सचिव भारत सरकार, परराष्ट्र विभाग द्वारा कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र, दिनांक २८ अक्टूबर, १८७१ (रा. रा. पु. मं.) ।

५०. उपरोक्त ।

५१. लाटूस द्वारा सॉन्डर्स कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक १६-४-१८७२ फाइल क्रमांक १९३, पृ. ८ ।

५२. ब्रुक्स-कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा एचिसन सचिव भारत सरकार परराष्ट्र विभाग को पत्र दिनांक १३-२-१८७२ व परराष्ट्र

विभाग का पत्र क्रमांक ३७७ दिनांक २८ अक्टूबर, १८७१, अनुच्छेद ३।

५३. सान्डर्स कमिश्नर द्वारा ब्रुक्स चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दि. २३ अप्रेल, १८७२ (रा. रा. पु. मं.) ।

५४. सेटलमेंट रिपोर्ट १८७४।

५५. लाटूस द्वारा सान्डर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को १६ अप्रेल, १८७२ (रा. रा. पु. मं.)।

५६. उपरोक्त।

५७. सेटलमेंट रिपोर्ट १८७५।

५८. लाटूस द्वारा सॉन्डर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक १६ अप्रेल, १८७२ (रा० रा० पु० म०)।

५९. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १--ए (१९०४) अजमेर--मेरवाड़ा, पृष्ठ ५४०।

६०. बाडेन पावेल—"ए मेन्यूअल आफ दी लेन्ड रेवेन्यू सिस्टम एण्ड लेंड टेन्योरस ऑफ इंडिया" पृष्ठ ५४०।

६१. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १--ए, (१९०४) अजमेर--मेरवाड़ा, पृष्ठ २२।

६२. उपरोक्त, पृष्ठ २३ व ब्रुक्स कार्यवाहक चीफ कमिश्नर द्वारा एचिसन सचिव भारत सरकार परराष्ट्र को पत्र, दिनांक १२ जून, १८७२।

६३. सचिव, भारत सरकार का चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दि० ६ अक्टूबर, १८८७ (रा० रा० पु० म०)।

६४. उपरोक्त (रा० रा० पु० म०)।

६५. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १--ए (१९०४) पृष्ठ २३--२४।

६६. उपरोक्त।

६७. उपरोक्त।

६८. आर० एस० वाईटवे द्वारा एल० एस० सॉडर्स कमिश्नर अजमेर--मेरवाड़ा को पत्र दिनांक ११ जुलाई, १८८४ (रा० रा० पु० म०)।

६९. एच० एम० ड्यूरोड सचिव, भारत सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक १८८७, फाइल क्रमांक २२।

७०. वाईटवे, वन्दोवस्त अधिकारी, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सॉडर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक १६ जून, १८८५ (रा० रा० पु० म०)।

७१. उपरोक्त।

७२. उपरोक्त।

७३. वाईटवे, वन्दोवस्त अधिकारी अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र, दिनांक १६ जनवरी, १८८६ (रा० रा० पु० म०)।

७४. उपरोक्त।

७५. उपरोक्त।

७६. उपरोक्त।

७७. उपरोक्त।

७८. सी० सी० वाट्सन राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १-ए (१९०४) अजमेर-मेरवाड़ा, पृष्ठ २६-२७।

७९. कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २७ फरवरी, १८९१ (रा० रा० पु० म०)।

५

इस्तमरारदारी व्यवस्था

अजमेर-मेरवाड़ा में भूमि की व्यवस्था पड़ोसी राजपूत रियासतों जैसी ही थी। भूमि सामान्यत: दो भागों में विभक्त थी—तालुकेदारी और खालसा। तालुकेदारी भूमि वह थी जो अधिकांशत: जागीरदारों के पास ठिकानों के रूप में थी। इन ठिकानों के अधिपति यद्यपि आरम्भ में अपने राजाओं व सरदारों की सैनिक सेवा के लिए बाध्य थे तथापि कालांतर में इस प्रथा का स्थान इस्तमरारदारी प्रथा ने ले लिया था। राजस्थान में राज्य का अनादिकाल से भूमि पर वास्तविक स्वामित्व चला आ रहा था। राज्य ने जिन सामंतों को ठिकाने प्रदान किए वे भी अपनी प्रजा पर राज्य जैसे अधिकारों का प्रयोग किया करते थे।[1]

कर्नल टॉड ने राजस्थान की सामंत-व्यवस्था की व्याख्या एक ऐसी व्यवस्था के रूप में की है जो समाज के सभी तत्वों पर छाई हुई रहती है। उन्होंने इसकी यूरोप की मध्यकालीन सामंत-प्रथा से तुलना की है।[2] यह हो सकता है कि यूरोप के इन मध्यकालीन राज्यों और राजस्थान के सामन्तों के मध्य परम्पराओं एवं प्रथाओं की कुछ समानता हो, परन्तु इस आधार पर दोनों को एक मान लेना अथवा उनमें से एक को दूसरे की अनुकृति कहना अनुचित है। यह हो सकता है कि दोनों के स्वरूप में कुछ समानता हो, परन्तु यह समानता केवल ऊपरी ही है।[3]

ये अपने स्वामित्व के आधार एवं प्राप्ति की प्रक्रिया में एक दूसरे से भिन्न थे। फलस्वरूप इन ठिकानों में विभिन्न प्रथाएं और परम्परागत अधिकार प्रचलित

थे जो ठिकाने की सेवाओं और सहयोग के आधार पर प्रदान किए गए थे। इन ठिकानेदारों का यह कर्तव्य था कि वह अपने स्वामी की सेवा करेंगे और स्वामी का यह कर्तव्य होता था कि उन्हें सुरक्षा प्रदान करेंगे। यदि इनमें से कोई भी ठिकानेदार इन नियमों का उल्लंघन करता तो उसका ठिकाना जब्त कर लिया जाता था। आपसी सहयोग ही एकमात्र ऐसी आधारशिला प्रतीत होती है, जिस पर सामंत-व्यवस्था टिकी हुई थी।[४]

अजमेर के ठिकानेदार

अजमेर के ठिकानेदारों को भी राजपूताना की रियासतों के जागीरदारों के समान विशेष अधिकार प्राप्त थे।[५] ये ठिकाने भी आरम्भ में सेवाओं के आधार पर प्रदान किए गए थे तथा कई सामंत व्यवस्थाओं से प्रतिबंधित थे। कर्नल टॉड के अनुसार ये ठिकाने सीधे उत्तराधिकारी को वंश परम्परागत भोग के लिए जीवनपर्यन्त प्राप्त हुआ करते थे और सीधे उत्तराधिकारी के अभाव में राजा द्वारा स्वीकृत गोद लिए व्यक्ति को विरासत में मिला करते थे। किसी भी अपराध या अयोग्यता की स्थिति में सरकार इन ठिकानों को छीन सकती थी। नए उत्तराधिकारी से नजराना प्राप्त करने के पश्चात् ही राजा उसे जागीर ग्रहण करने देता था। सभी तथ्य इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि इन ठिकानों को राज्य जब चाहे तब पुनः ग्रहण (जब्त) करने में समर्थ था।[६] अजमेर के अधिकांश ठिकानों के भोग की स्थिति वही थी जो कर्नल टॉड द्वारा वर्णित है। यद्यपि ये ठिकाने ठिकानेदार को उसके जीवनकाल के लिए प्रदान किए जाते थे व मृत्यु के पश्चात् इनके खालसा किए जाने की व्यवस्था थी परंतु कालान्तर में ये वंशपरम्परागत बन गए थे।[७]

अजमेर में अंग्रेज़ों के आगमन के समय इस सामन्त-व्यवस्था के अन्तर्गत ७० ठिकानेदार तथा चार छोटे ठिकानेदार थे जो "इस्तमरारदार" कहलाते थे। इनमें से ६४ ठिकाने राठोड़ों के, १ सिसोदियों का, १ गौड राजपूत और ४ चीतों के पास थे। इन ठिकानों में से १९८ गांवों से फौज खर्च वसूल किया जाता रहा था और ७९ गांवों पर यह कर लागू नहीं था। ये ठिकाने प्रारम्भ में जागीरें थीं, जो कि सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में प्रदान की गई थीं। ठिकानेदार, जिसे कि वे प्रदान की गई थीं उसकी मृत्यु पर ये राज्य (जिसने प्रदान किए थे) द्वारा अपने हाथ में लिए जा सकते थे परन्तु दूसरी जागीरों के समान बाद में ये भी वंशपरम्परागत हो गई थीं। अजमेर के ये ठिकाने, सम्पूर्ण मुगलकाल, अल्पकालीन अर्थ स्पष्ट नहीं है। जोधपुर रियासत के राज्य-काल में व मराठों के शासन-काल में मौजूद थे।[८]

अजमेर के अधिकांश ठिकानों की 'बख्शीश' के मूल कारणों का ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि कई मामलों में मूल बख्शीशदाता व मूल प्राप्तकर्ता के नाम और जिन आधारों पर ये ठिकाने दिए गए थे उनका प्रमाण उपलब्ध नहीं होता

है। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में इनमें से कुछ जागीरें गुहिलों, चौहानों तथा राठोड़ों के द्वारा दी गई थीं। मुगलों द्वारा मनसवदारी प्रथा[९] के अन्तर्गत सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में भी कुछ जागीरें प्रदान की गई थीं। भिनाय,[१०] सावर,[११] जूनिय,[१२] मसूदा,[१३] पीसांगन,[१४] के ठिकानेदार मुगलों के मनसवदार थे। इनमें से भिनाय ठिकाना सबसे पुराना था। जहाँ तक पद और प्रतिष्ठा का प्रश्न है, भिनाय के बाद द्वितीय स्थान मसूदा ठिकाने का है। राठोड़ों के पास जो ठिकाने थे उनमें अधिकांश औरंगजेब द्वारा तत्कालीन जोधपुर महाराजा जसवंतसिंह के कारण उनके संवधियों और मित्रों को प्रदान किए गए थे।[१५]

मुगल काल में ये ठिकाने मनसवदारी प्रथा के अन्तर्गत दिए जाते थे तथा ठिकानेदारों को सम्राट की फौज के लिए एक निश्चित संख्या में घुड़सवार प्रदान करने पड़ते थे। मुगल शासकों ने मनसवदारों को निरन्तर वदलते रखने की परम्परा रखी थी ताकि ये लोग अधिक शक्तिशाली न वन सकें। उनकी (जागीरदार की) मृत्यु के साथ ही जागीर और मनसब स्वतः सम्राट की हो जाती थी। यदि मुगल साम्राज्य एक ताकत के रूप में कायम रहता तो वर्तमान ठिकानेदारों के पूर्वज कभी के इन ठिकानों से हटा दिए गए होते।[१६] मुगल काल में अजमेर के ये ठिकाने बरावर वने रहे। मुगल साम्राज्य के पतन के वाद अजमेर का सूबा जोधपुर महाराजा के आधिपत्य में चला गया था। इस काल में अधिकांश ठिकाने दूसरे लोगों से वलपूर्वक छीन कर राठोड़ों को दे दिए गए थे।[१७] इन ठिकानेदारों का प्रारम्भ आज सही तौर पर वतलाना कठिन है। संभवतः इनमें से अधिकांश के पूर्वज इस क्षेत्र के मूल राजपूत नरेशों एवं विजेताओं के सम्वन्धी रहे होंगे। यह भी संभव है कि मारवाड़, मेवाड़, ढूंढार और हाड़ौती के राजपूत सरदारों की तरह इन्हें भी ये अपनी जीत के हिस्से के रूप में प्राप्त हुआ हो अथवा यह ठिकाने दिल्ली के मुगल सम्राटों द्वारा अथवा तत्कालीन राजपूत विजेताओं द्वारा वख्शीश में दिए गए हों। इन इस्तमरारदारों के अधीन जो कस्बे व गाँव थे उनको देखते हुए यह आसानी से कहा जा सकता है कि अजमेर के ठिकानेदारों को वास्तव में वड़े-वड़े भूभाग प्रदान किए गए थे। अजमेर में अंग्रेज़ों के आधिपत्य के आरम्भिक दिनों में पूरे खालसा क्षेत्र में केवल ८१ गांव थे जवकि इस्तमरारदारों के अधिकार में २८० कस्वे और गांव थे। खालसा भूमि से औसत आय १,२६,००० रुपयों की थी जवकि इस्तमरारदारी ठिकानों की आय ३,४०,००० रुपए थी। ये सभी इस्तमरारदारियाँ मराठों के आगमन के पूर्व से ही विद्यमान थीं। केवल कुछ ही ऐसे ठिकाने थे जिनका दो सौ या तीन सौ साल के पूर्व अस्तित्व न रहा हो। कर्नल सदरलैंड की यह मान्यता थी कि इनके वंशपरम्परागत अधिकार का दावा निर्द्वन्द्व है।[१८] मराठा शासनकाल में ये इस्तमरारदार-राजा, तालुकेदार, इलाकादार, जमींदार, ठाकुर और भोमया कहलाते थे। मराठा शासनकाल के अन्तर्गत इन ठिकानों की भोग की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ था।

मराठों को इन जागीरदारों की सैनिक सेवाओं की आवश्यकता नहीं थी । उन्हें हमेशा धन की बहुत आवश्यकता रहती थी । फलस्वरूप उन्होंने इन जागीरों पर निर्धारित घुड़सवारों की संख्या के आधार पर नगद राशि सैनिक सेवा समाप्त कर दी थी । मराठों की नीति विभिन्न मदों के अन्तर्गत अपने राजस्व में वृद्धि करने की रही थी । उनके समय में लगान एवं भूमि के कोई निश्चित प्रक्रिया एवं सिद्धान्त नहीं थे । फलस्वरूप छोटे-छोटे ठिकानेदारों और जागीरदारों पर बड़े ठिकानों की तुलना में यह भार अधिक था क्योंकि बड़े ठिकानेदारों की शक्ति को देखते हुए उनसे विरोध मोल लेने व उन पर हाथ डालने का मराठों का भी साहस नहीं होता था ।[19]

मराठा शासन-काल में परिवर्तन

मराठों की एक नीति थी 'जितना लिया जा सके ले लो' इन ठिकानेदारों में जो शक्तिशाली थे, उनके प्रति मराठों का दूसरों की अपेक्षा थोड़ा बहुत पक्षपात भरा दृष्टिकोण रहता था । ये लोग अपना वार्षिक कर इच्छानुसार घटा बढ़ा देते थे । इन पर लगाए जाने वाले उपकर भी निश्चित नहीं थे तथा ऐच्छिक के अनुसार बदलते रहते थे । इन करों की वसूली व निर्धारण का मापदण्ड मौसम की अनुकूलता, ठिकानेदार की परिस्थिति, उसकी शक्ति, उसका अपने सम्बन्धियों पर प्रभाव व साथ ही सूबेदार से उसकी मित्रता पर अधिक निर्भर करता था । इन दो मुख्य करों को छोड़कर जो 'मदद खास' और 'फौज खर्च' कहलाते थे, मराठों ने अन्य कई उपकर लागू कर रखे थे तथा उनकी संख्या घटने के बजाय बढ़ती ही रहती थी । मराठों ने ठिकानेदारी में एकदम कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं किया था । उन्होंने केवल विभिन्न मदों के अन्तर्गत राजस्व में वृद्धि की नीति अपनाई थी । मुगलों की अपेक्षा मराठों की व्यवस्था इन ठिकानेदारों के अधिक हित में थी क्योंकि मुगलों के शासन में ठिकाने छिनने का यह भय सदा बना रहता था परन्तु मराठाकाल में यह भय नहीं था ।[20]

मराठों ने अजमेर के ठिकानों के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया कि उन्होंने उनके द्वारा प्रदत्त सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में नगद भुगतान का आधार स्थापित किया । उपर्युक्त प्रथा के अन्त के साथ ही वह सामन्ती प्रक्रिया भी समाप्त हो गयी जिसके अन्तर्गत ठिकानेदार और ठिकानों के वास्तविक स्वामी एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते थे । इससे ठिकानों पर राज्य के नियन्त्रण की प्रक्रिया निर्जीव हो गयी थी ।[21] मुगलों के काल में इन ठिकानों की बख्शीश की प्रथा का आधार सैनिक सेवा था और सम्भवतः यह व्यवस्था जोधपुर नरेश महाराजा अजीतसिंह के शासनकाल में भी प्रचलित थी । सन् १७५४ में मराठों ने इस व्यवस्था से छुटकारा पा लिया और इसके विकल्प में उन्होंने वार्षिक कर को आधार बनाया । यह राजस्व समय-समय पर स्थानीय अधिकारियों की इच्छानुसार घट-बढ़

कर आंका जाता रहा, परन्तु सन् १८०८ या १८०९ के लगभग मराठों ने "असल जामा" को कम दर पर स्थाई करने का प्रयास किया था। उन्होंने यह भी निर्णय लिया था कि भविष्य में इसके अतिरिक्त राजस्व वृद्धि अन्य करों या उपकरों के रूप में अलग से वसूल की जानी चाहिए। मराठों द्वारा लिए गए इस निर्णय का कारण कदाचित् यह रहा होगा कि कालांतर में कभी इस सूबे को जोधपुर रियासत को लौटाना पड़ सकता था या अन्य किसी परिवर्तन की स्थिति में इन करों व उपकरों को आसानी से माफ किया जा सकता था, जबकि इन्हें असली "जामा सम्मिलित करने पर यह संभव नहीं हो सकता था। सन् १८०८ से लेकर १८१८ तक अजमेर से तांतिया और बापू सिंधियां ने ३,४५,७४० रुपए की राशि वसूल की जिसमें से २,१०,२८० रुपए की राशि असल जमा के तौर पर थी और शेष विभिन्न करों एवं उपकरों से प्राप्त हुई थीं। मराठा शासनकाल में अजमेर में इस प्रकार के लगभग ४० कर एवं उपकर प्रचलित थे।[२२]

अंग्रेज़ और इस्तमरारदार

मराठों ने कभी भी अपने अधीन ठिकानों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया। उनकी मुख्य इच्छा धन बटोरने की थी। उन्होंने जागीरदारों को भूमि का स्वामी माना और किसानों को पूर्णतया उनकी दया पर छोड़ दिया। प्रजा के अधिकार, परम्पराओं और उनके हितों की मराठों ने अवहेलना की जिसके फलस्वरूप ठिकानेदारों का अपने ठिकाने में रहने वाली जनता पर स्वामित्व व असीमित अधिकार स्थापित हो गए थे। केवल इतना ही नहीं इन लोगों ने ठिकानों की प्रजा पर अनेक अनुचित कर एवं उपकर थोप दिए थे जिन्हें स्थानीय बोली में 'लाग-बाग' कहा जाता था।[२३]

अंग्रेज़ों ने इसमें परिवर्तन नहीं किया। सन् १८४१ तक ठिकानेदार अतिरिक्त कर वसूल करते रहे क्योंकि वे इसे असली 'जामा' का अंग समझते थे। यद्यपि उनकी वसूली अलग से पृथक् मुद्दे के अन्तर्गत की जाती थी। अंग्रेज़ सरकार भी कई वर्षों तक इन ठिकानों से वह सारी राशि वसूल करती रही, जो इनसे मराठे वसूल करते थे, क्योंकि अतिरिक्त करों से प्राप्त राशि सम्पूर्ण जिले के राजस्व की तीन चौथाई थी और इसके छोड़ देने से अत्यधिक आर्थिक हानि होती थी। अंग्रेज़ों ने इस्तमरारदारों को भूमिपति के रूप में स्वीकार नहीं किया था। सरकार ने इन्हें तालुकेदार माना जो सरकार के साथ आधे राजस्व के उपयोग के अधिकारी थे। यह विशेषाधिकार वंशपरम्परागत था, परन्तु इसे किसी को बेचा नहीं जा सकता था और न किसी को भेंट या बख्शीश में प्रदान किया जा सकता था।[२४]

अंग्रेज़ों ने ठिकानों के स्वरूप की सामान्य जानकारी प्राप्त किए बिना ही अजमेर के ठिकानेदारों को इस्तमरारदार मान लिया था। अजमेर के ठिकानेदार

इसके पूर्व कभी भी निश्चित त्याग कर के अधिकारी नहीं रहे थे, जबकि इस्तमरारदार शब्द के संकीर्ण अर्थ में यह अधिकार अंतर्निहित होता है। अंग्रेजों ने इनके आय के भाग को निश्चित कर इनका नवीन नामकरण किया जिन्हें इस्तमरारदार कहते हैं। ये ठिकाने जिन भोग व्यवस्थाओं के आधार पर आरम्भ में प्रदान किए गए थे, उनके बारे में कुछ भी निश्चित नहीं किया जा सका क्योंकि सरकार को प्राप्त अधिकांश सनदें जाली थीं। थोड़ी बहुत जो सच्ची सनदें सामने भी आई, उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि अजमेर इस्तमरारदारों द्वारा भोगी जाने वाली भूमि या तो जागीरों की थी या जीवनपर्यन्त भोग के आधार पर प्रदान किए गए ठिकाने थे। उनके आधार पर इन्हें इस्तमरारदार नहीं ठहराया जा सकता था।[२५]

अंग्रेज़ अपने शासन के प्रारंभिक दिनों में अजमेर में प्रचलित विभिन्न भूधृति प्रक्रियाओं को ठीक तरह से समझ नहीं सके थे। यदि वे इसका सम्पूर्ण अध्ययन करके निर्णय लेते तो वे भी ठीक मराठों की तरह प्रतिवर्ष या पांच व दस साल में लगान वृद्धि के हिस्से का अंश इन ठिकानों से लेने की व्यवस्था लागू करते। अंग्रेज़ों ने अपने प्रारंभिक काल से ही इन ठिकानेदारों को इस्तमरारदार स्वीकार कर लिया था। जिसकी वजह से बाद में इसमें किसी तरह का संशोधन अत्यन्त कठिन हो गया था। बाद में किसी भी संशोधन या परिवर्तन से इन ठिकानेदारों में स्थानीय अधिकारियों के प्रति ही नहीं बल्कि अंग्रेज़ों के प्रति भी असंतोष की भावना उत्पन्न हो सकती थी। किसी भी परिवर्तन को लागू करना नितांत आवश्यक होने पर भी इस बात की सतर्कता रखी जाती थी कि परिवर्तन धीरे-धीरे एवं सामान्य रूप से लागू किया जाए। किसी भी इस्तमरारदार के निधन पर उसके पुत्र को उत्तराधिकारी स्वीकार करते समय बहुधा उससे संशोधन स्वीकार करने को कहा जाता था। इस दिशा में अंग्रेज़ों के समक्ष केवल दो ही विकल्प थे एक तो स्थिति को यथावत् जारी रखना, अथवा पुरानी प्रक्रिया में संशोधन करने पर अपने प्रति इन ठिकानेदारों के तीव्र असंतोष का सामना करना। अंग्रेज़ शासन के प्रारम्भिक दिनों में यह संकट झेलने को तैयार नहीं थे। अतएव उन्होंने स्थिति को यथावत् बनाए रखना एवं यथा समय सुझाव के रूप में परिवर्तन लाने का मार्ग ही ग्रहण किया।[२७]

अजमेर के इस्तमरारदारों ने अपने अधिकारों को भूमिपतियों के रूप में अन्य लोगों की अपेक्षा सबसे अधिक दृढ़ता से प्रस्तुत किए, जबकि उन्हें भूमिपति के वास्तविक अधिकार कभी भी प्राप्त नहीं हुए थे। केवेन्डिश की यह मान्यता थी कि जबतक किसी न्यायालय द्वारा इस सम्बन्ध में उचित निर्णय प्राप्त नहीं हो जाता है, तब-तक के लिए अजमेर के ठिकानेदारों को भविष्य में सिर्फ जमींदार ही माना जाए।[२८]

इन इस्तमरारदारों की वैधानिक स्थिति अंग्रेज़ों की नज़रों में सदैव संदेहास्पद रही थी। विल्डर के अनुसार एक भी इस्तमरारदार अपने दावे के प्रमाणस्वरूप

विश्वसनीय सनद प्रस्तुत करने में सफल नहीं हुआ था। विल्डर को तो यह संदेह था कि इनके पास शायद ही ऐसी कोई सनद रही होगी क्योंकि सभी ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अराजकता के दौरान उनकी सनदें नष्ट हो गईं अथवा खो गईं थीं।[२९]

अजमेर में इस्तमरारदारी प्रथा का स्वरूप वर्षों के लम्बे पत्र व्यवहार के पश्चात् कहीं जाकर निश्चित हो सका था। अजमेर के लगभग सभी अंग्रेज़ अधिकारियों ने इस संदर्भ में गवर्नर जनरल को अपने-अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किए थे क्योंकि सरकार पूरी जानकारी के बाद ही किसी अंतिम निर्णय पर पहुँचना चाहती थी। स्थानीय अंग्रेज़ अधिकारियों के विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी यहाँ इस्तमरारदारी व्यवस्था का कोई निश्चित एवं वैधानिक स्वरूप सही ढंग से निर्धारित करने में सफलता नहीं मिल सकी। अंग्रेज़ों को भी यही नीति अपनानी पड़ी कि इन तालुकेदारों का अस्तित्व किसी न्यायसंगत आधार की अपेक्षा वर्तमान स्वरूप के आधार पर ही स्वीकार कर लिया जाए।[३०]

इन इस्तमरारदारों की पुश्तैनी एवं वैधानिक स्थिति के संबंध में सबसे पहली रिपोर्ट अजमेर के प्रथम सुपरिटेंडेंट विल्डर ने प्रस्तुत की थी। उनके अनुसार ये ठिकाने इस्तमरारदारी या निश्चित राजस्व के आधार पर शताब्दियों से इनको प्राप्त थे। इस तथ्य के बावजूद उनका सुझाव था कि अंग्रेज़ सरकार को इन्हें इनसे ले लेना चाहिए ताकि अंग्रेज़ प्रशासन का लाभ सामान्य जनता को सुलभ हो सके। विल्डर के मतानुसार इन जागीरदारों का अपने अधीनस्थ भूमि पर स्वामित्व का दावा अस्पष्ट था क्योंकि इनमें से एक भी इस संदर्भ में विश्वसनीय सनद या प्रमाण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा था। इनका दीर्घकालीन अधिकार ही एकमात्र उनके दावे का आधार था। विल्डर इन ठिकानेदारों का, राजस्व के इतने बड़े भाग पर स्वामित्व स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए उन्होंने यह सुझाव दिया था कि यदि ये ठिकानेदार अपने ठिकानों की व्यवस्था अंग्रेज़ों के हाथ सौंपने को तैयार नहीं हैं तो इनसे प्राप्त भू-राजस्व में वृद्धि की जानी चाहिए अन्यथा जिले से प्राप्त राजस्व धीरे-धीरे घटकर नाममात्र का रह जाएगा।[३१]

सर डेविड ऑक्टरलोनी ने भी इन इस्तमरारदारों के दावों पर विचार करते समय यह अनुभव किया था कि इन दावों के साथ सरकार के हितों का मेल बैठाने के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था स्थापित करना आवश्यक है। फलस्वरूप, उन्होंने इन इस्तमरारदारों की गत दस वर्षीय आय के आंकड़ों का अध्ययन इस दृष्टिकोण से किया कि यदि इन ठिकानों की व्यवस्था अंग्रेज़ी प्रशासन अपने हाथ में ले तो उचित मुआवजा कितना देना चाहिए। उनकी यह मान्यता थी कि यदि ये लोग अपने अधिकार के प्रमाण स्वरूप सनदें अथवा अन्य तथ्य प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं तो

इनकी भूमि को लिया जा सकता है । ऑक्टरलोनी तत्कालीन व्यवस्था में परिवर्तन के प्रबल इच्छुक थे और इन ठिकानेदारों द्वारा किसी भी तरह के परिवर्तन के विरोध को अनुचित समझते थे । उनका यह भी मत था कि ऐसे मामलों में कोई भी सरकार अन्य सरकारों द्वारा प्रदत्त अधिकारों को मानने या उन्हें यथावत् जारी रखने के लिए बाध्य नहीं होती है ।[32]

परन्तु अंग्रेजी शासनकाल के आरम्भिक दिनों में सरकार का दृष्टिकोण यह था कि सरकार को भूमिधारकों को प्रमाणस्वरूप सनदें प्रस्तुत करने में असमर्थ होने पर भी इस्तमरारदार मान लेना चाहिए क्योंकि सदियों से ठिकाने पर इनका अधिकार चला आ रहा था । तत्कालीन भारत सरकार इन ठिकानों से प्राप्त राजस्व की राशि उनके द्वारा अर्जित लाभ के अनुपात में प्राप्त करना चाहती थी । सरकार का यह भी दृष्टिकोण था कि इन ठिकानों के कर-निर्धारण में वृद्धि की जा सकती है । सरकार ने भावी राजस्व के निर्धारण के लिए नए आधार प्रस्तुत करना इसलिए भी अत्यन्त आवश्यक समझा क्योंकि वर्तमान निर्धारित राशि से सरकार को भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ती थी । यदि इन्हें ठिकानों का वास्तविक स्वामी स्वीकार कर लिया जाता तो सरकार इनके दस वर्ष के लाभ के औसत को अपनी भावी मांग का आधार मान सकती थी । वर्तमान लाभ के आधार पर सरकार का विचार इन्हें सम्पूर्ण लाभ से वंचित करने का नहीं था । यदि इन्हें भूस्वामी स्वीकार नहीं किया जाता तो इन्हें अपनी भूमि की व्यवस्था से मुक्त करना अत्यन्त कष्टदायक काम था । इन्हें अपनी भूमि से वंचित करने के लिए भी मुआवजे का आधार निश्चित करने का प्रश्न था । मुआवजे के आधार के लिए भी गत दस वर्षों के विकास कार्यों व कृषि-भूमि में वृद्धि से प्राप्त लाभ को दृष्टिगत रखकर ही निर्णय लिया जा सकता था । सरकार ने यह भी मत प्रकट किया था कि यदि इस्तमरारदारों को रखा जाता है तो जनता के संरक्षण के लिए भी सरकार को कदम उठाना आवश्यक होगा ऐसा करने में चाहे राजस्व के कुछ अंशों से वंचित ही क्यों न होना पड़े । सरकार एक तरफ जनता के व्यक्तिगत अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहती थी और दूसरी तरफ इन पूर्ववर्ती सरकारों द्वारा प्रदान किए गए इन ठिकानों को भी ।[33]

इस संदर्भ में विल्डर के पत्र व्यवहार से यह ज्ञात होता है कि ये ठिकानेदार उनके राजस्व में किसी भी तरह की जांच के विरोध में थे । स्पष्टतः उनके इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप अंग्रेज सरकार केवल इतना ही ज्ञात कर सकी कि ये ठिकानेदार जो अभी इन ठिकानों पर अधिकार किए हुए हैं प्राचीनकाल से वंशपरम्परागत रूप में उपभोग कर रहे थे ।[34] विल्डर के पत्र इस आशय पर कुछ प्रकाश डालते हैं कि इन भूस्वामियों के पास कितनी ज़मीन थी और ये सरकार को उसकी उपज का कितना भाग दिया करते थे और पुनर्ग्रहण व अन्य करों द्वारा इसमें कितनी वृद्धि

संभव थी।[३५] विल्डर का यह मत था कि इस मामले में पैमाइश ही सही निर्णायक सिद्ध हो सकती है, यद्यपि यह तथाकथित विशेषाधिकारों का उल्लंघन था। इस्तमरारदारों ने आरम्भ में इसका कड़ा विरोध भी किया परन्तु बाद में उन्हें इसकी स्वीकृति देनी पड़ी।[३६]

यद्यपि विल्डर इन ठिकानेदारों की आय के आंकड़े प्राप्त करने में सफल नहीं हुए तथापि वे बिना किसी भारी अड़चन के इन ठिकानों की भूमि की पैमाइश का काम पूरा कर सके थे। वे इस निर्णय पर पहुंचे कि आरंभ में इन ठिकानेदारों की जितनी आय अनुमानित थी, उससे कहीं अधिक वे प्राप्त करते हैं। विल्डर की यह मान्यता थी कि इन ठिकानों को यथास्थिति में बनाए रख कर भी सरकार के राजस्व में भारी वृद्धि की संभावना है।[३७]

विल्डर के स्थानांतरण के पश्चात् उनके स्थान पर नियुक्त मिडलटन को इन इस्तमरारदारों से, जो सामान्यत: कर्ज में डूबे हुए थे, सरकारी राजस्व वसूल करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। उन्होंने भी यह मान्यता प्रकट की थी कि इन ठिकानेदारों के अधिकारों की वैधानिकता में संदेह इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि अंग्रेज़ों की पूर्ववर्ती सरकारों ने भी इन्हें यथास्थिति में रहने दिया था और इन ठिकानेदारों को अपने अधिकारों से वंचित नहीं किया था।[३८] केवेंडिश को उनकी भूमि-व्यवस्था, सम्पत्तियां, उनके अधिकार, विशेपाधिकार तथा उनके कर्तव्य के बारे में विस्तृत विवेचन सरकार को प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा गया था।[३९] कई घरानों के इतिहास की छानबीन के बाद केवेंडिश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मराठों ने सनद और पट्टों की कभी परवाह नहीं की और उन्होंने प्रत्येक ठाकुर की हैसियत के अनुसार उससे धन राशि वसूल की थी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में भी इस बात का उल्लेख किया है कि अंग्रेज़ सरकार को भी अपने पूर्ववर्ती शासकों द्वारा उदाहरण का पालन करना चाहिए।[४०]

केवेंडिश ज्यों ज्यों इस संदर्भ में गहरे उतरते गए उन्हें पूर्ण विश्वास होता गया कि अंग्रेजों को यह अधिकार है कि वे अपनी इच्छानुसार इन पर नया राजस्व लागू कर सकते हैं। यद्यपि उन्होंने यह अवश्य प्रकट किया कि कृषि के विस्तार एवं विकास के प्रोत्साहन स्वरूप यह आवश्यक होगा कि एक नियमित व व्यवस्थित प्रभार लागू किया जाए। उन्होंने सुझाया कि इस दिशा में सबसे अधिक लाभप्रद व्यवस्था यह होगी कि ठिकानेदार की अर्जित आय की राशि में से आठ आना हिस्सा सरकार का हो। इस दिशा में वे यह चाहते थे कि सरकार अपना स्तर मराठा शासन के अंतिम वर्ष को निर्धारित करे। केवेंडिश महोदय का यह दृष्टिकोण था कि यदि सरकार आरम्भ से ही इस्तमरारदारियों की व्यवस्था को सही अर्थों में ग्रहण करती तो उसे मराठों की तरह प्रति पांच या दस वर्षों में अपने प्रभारों में ठिकानेदार की अर्जित आय

के अनुसार राजस्व-अनुपात में वृद्धि की व्यवस्था लागू करने में सफलता प्राप्त हो सकती थी।[४१] इस तरह के कतिपय सुझाव प्रस्तुत करने के पश्चात् केवेंडिश ने भी यही राय प्रकट की कि इन ठिकानों की यथास्थिति बनाए रखना अंग्रेज़ी शासन के हित में है। उन्होंने इसी उद्देश्य से वर्तमान व्यवस्था को ठिकानेदारों के जीवनपर्यन्त यथावत् लागू रखने का सुझाव दिया। वर्तमान ठिकानेदार के निधन के पश्चात् नये उत्तराधिकार के समय इस व्यवस्था में परिवर्तन लाया जाए। उन्होंने न्यूनतम अहितकारी कदम को ही चुना जो तत्कालीन प्रथा के जारी रखने के पक्ष में था।[४२]

केवेंडिश की राय में इस्तमरारदारों का अपने अधीनस्थ ठिकानों पर न तो कोई दावा और न कोई अधिकार ही सिद्ध हो सकता था। क्योंकि वे यहां के मूल निवासी नहीं थे और न ही इस भूमि पर प्रारम्भ से ही उनका अधिकार था। यद्यपि इन लोगों में से अधिकांश का अधिकार दो सौ वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं था तो भी मराठों ने उनके भू-स्वामी मानकर उनके आंतरिक मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख किया है कि इस्तमरारदारों द्वारा अपनी प्रजा से जो फौज खर्च वसूल किया जाता था, उसे बंद करने पर प्रजा को जितना लाभ नहीं पहुंचेगा उससे कहीं अधिक इस्तमरारदारों में असंतोष फैलेगा। केवेंडिश के मतानुसार मराठों में प्रमुख ठिकानेदारों को ही राजस्व के लिए जिम्मेदार ठहराया था।[४३]

केवेंडिश की जांच रिपोर्ट पर भारत सरकार के अधिकारियों ने गंभीर विचार-विमर्श किया। भारत सरकार के लिए यह संतोष का विषय था कि इस जांच रिपोर्ट के आधार पर वे इन ठिकानों से राजस्व वसूली में अभिवृद्धि करने के लिए वैधानिक रूप से समर्थ थे। सरकार ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि ठिकानों की अर्जित आय में सरकार का हिस्सा राजस्व का आधा भाग होगा परन्तु कहीं भी यह आश्वासन नहीं दिया गया कि सरकार ठिकानेदारों को स्वामित्व के अधिकार प्रदान करने के पक्ष में है।[४४] सरकार केवल इनके वंशपरम्परागत राजस्व वसूली के अधिकार स्वीकार करने को तत्पर थी। सरकार की यह मान्यता थी कि उन्हें ठिकानों को बेचने का अधिकार नहीं है।[४५] भारत सरकार ने इन ठिकानों में अपना राजस्व आधा निर्धारित किया।[४६] छोटे और बड़े ठिकानेदारों के बीच राजस्व के संबंध में कोई भेदभाव नहीं रखा।[४७] सरकार ने यह भी निर्णय किया कि वह ठिकानों के आंतरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगी।[४८] सरकार की यह मान्यता थी कि ठिकानेदारों को किसानों को उनकी ज़मीन से बेदखल करने का अधिकार नहीं है तथा किसानों का उनकी जमीन व मकान पर पैतृक हक होना चाहिए।[४९]

इस्तमरारदार सरकार द्वारा उनकी आय संबंधी जांच के विरोध में थे। ठिकानेदार अबतक अपने ठिकानों की व्यवस्था बिना किसी हस्तक्षेप के किया करते थे

सरकार के पास ऐसी कोई ताकत नहीं थी जिनके आधार पर यह जानकारी प्राप्त की जा सकती कि जागीरों के अंतर्गत कितनी कृषि योग्य भूमि है, उसमें कितनी उपज होती है, सरकार अगर जागीरों को जब्त करले तो उससे अतिरिक्त आय में क्या वृद्धि होगी और अगर जागीरें उन्हीं के पास रहने दी जाए तो राजस्व में वृद्धि करने की क्या संभावना है ? यद्यपि भूमि की पैमाइश अवश्य की गई थी, परंतु उसका फल कुछ नहीं निकला। इन ठिकानों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न नगण्य से रहे। कदाचित् इसी कारण से केवेंडिश ने इन ठिकानेदारों को स्थिर रखते हुए एक रुपये में आठ आने का उनपर निश्चित राजस्व नियत करने का सुझाव दिया था।

अजमेर-मेरवाड़ा के कमिश्नर कर्नल आंल्विस की यह मान्यता थी कि केवेंडिश द्वारा निर्धारित कर इन ठिकानेदारों पर काफी ज्यादा है। उन्होंने भारत सरकार को इन ठिकानेदारों की अंग्रेज् सरकार के प्रति वफादारी को देखते हुए राशि को घटाने का सुझाव दिया था परंतु भारत सरकार ने आल्विस के सुझाव को इस आधार पर कि सरकार इस समय इस्तमरारदारों के अधिकारों तथा उनमें भूधृति के मामले को पुनर्जीवित करना आवश्यक नहीं समझती-कार्यान्वित नहीं किया।[५०]

सदरलैंड ने ठिकानों की वास्तविक स्थिति की जानकारी के लिए १५ ठिकानों का स्वयं दौरा कर सरकार को इन ठिकानों की स्थिति, सरकार के प्रति उनके दायित्व तथा सरकार के अधिकार आदि पर अपनी-अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। सदरलैंड के मतानुसार अंग्रेजी शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों में स्थानीय अधिकारीगणों ने इन ठिकानेदारों के प्रति कठोर रुख अपनाया था। कर्नल सदरलैंड इस्तमरारदारी भूमि को पुनर्ग्रहण करने के पक्ष में इसलिए नहीं थे क्योंकि जनता इन ठिकानों के एक दीर्घकाल से चले आ रहे वंशपरम्परागत अधिकार को स्वीकार करती थी।[५१]

कर्नल सदरलैंड के मन में आशंका घर किए हुए थी कि अंग्रेज् सरकार के इन प्रयासों का अर्थ राजपूत ठिकानेदार कहीं यह नहीं लगा लें कि अंग्रेज् उन्हें वंश-परम्परागत अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि उनमें यह भावना प्रवेश कर गई तो अंग्रेज् सरकार को इन लोगों के व्यापक असंतोष का सामना करना पड़ सकता है। वे इस बात को मानने को तत्पर नहीं थे कि ये राजपूत ठिकानेदार केवल सरकारी वेतन भोगी बनने के लिए अपनी भूमि, कस्बों, गढ़ों व गाँवों के आधिपत्य को सहज सौंप देंगे।[५२]

सदरलैंड के अनुसार सरकार को ठिकानों से अपने राजस्व को बढ़ाने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं था। सदरलैंड की यह मान्यता भी थी कि उन्हें अपनी आय के स्रोतों की जांच या निर्धारित 'मामला' में वृद्धि उन्हें स्वीकार नहीं होगी। उनके अनुसार कई ठिकानेदार आज प्रचलित भूधृति से बिल्कुल भिन्न आधार पर प्रारम्भ से चले आ रहे थे। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा

सकता है कि मराठों द्वारा सेवा के स्थान पर लागू की गई नगद वसूली की प्रथा ठिकानेदारों के लिए पूर्व प्रचलित प्रथा की तुलना में अधिक भार थी या नहीं। यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि क्या मराठों को इस तरह के परिवर्तन के अधिकार थे? मराठा इसके अतिरिक्त चौथ और सरदेशमुखी भी वसूल करते रहे थे। ठिकानेदार यह रकम भी अपने ठिकानों को लूट एवं इनके आतंक से बचाने की आशा से चुकाते थे। अधिकांश मामलों में यह राशि स्थानीय मराठा सूबेदारों द्वारा थोपी जाती थी और प्राप्त रकम कदाचित् ही सिंधिया के खजाने में जमा हो पाती थी।[५३]

कर्नल सदरलैंड के अनुसार न्यायपूर्ण एवं सही नीति यही थी कि सरकार इन ठिकानों पर केवल 'मामला' या 'भेंट' तक ही अपना लगान सीमित रखे। वह इनकी आय की जांच के पक्ष में भी नहीं थे। उन्होंने सरकार को यह सलाह दी कि वह ठिकानों पर अपना कर ठिकानों की आय में वृद्धि के अनुपात से बढ़ाने के इरादे को भी त्याग दे क्योंकि गत बाईस वर्षों के अंग्रेज़ी शासनकाल में जो लगान वृद्धि इन ठिकानों पर थोपी गई थी उससे ये ठिकानेदार अंग्रेज़ सरकार की नीति तथा उसके व्यवहार के बारे में सशंकित हो चले हैं और उनमें अविश्वास की भावना घर करने लगी है। उनकी मान्यता तो यहां तक थी कि सरकार अपने को केवल निश्चित 'मामला' वसूली तक ही सीमित रखे और अन्य सभी मांगें समाप्त कर दें। सरकार नए उत्तराधिकारी से गद्दी नशीनी के समय पर निर्धारित एक वर्ष के 'मामला' की राशि इन ठिकानों से मांग सकती है। उनके अनुसार केवल यह कदम ही अजमेर की इस्मरारियों में समृद्धि एवं आशा का संचार करने के लिए पर्याप्त था।[५४] उनका यह कहना था कि ठिकानेदार न तो अपने क्षेत्र में जलाशयों के निर्माण में रुचि लेते थे क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि इसके कारण उनकी आय में अगर वृद्धि हुई तो सरकार 'मामला' के अलावा दूसरे करों में वृद्धि करेगी जो कि उन पर अतिरिक्त भार होगा।[५५]

कर्नल सदरलैंड का सबसे महत्वपूर्ण तर्क इस तथ्य पर आधारित था कि एक ओर तो दूसरे प्रदेशों में अंग्रेज़ सरकार ने चौथ वसूली को समाप्त ही नहीं किया बल्कि कई स्थानों पर वसूल की गई राशि तक उन्हें लौटाने के लिए बाध्य किया, जबकि दूसरी ओर अंग्रेज़ सरकार मराठों द्वारा प्रचलित इस लूट की प्रथा को अजमेर में जारी रखे हुए थी। उन्होंने सरकार का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि मराठा आधिपत्य के समय इन ठिकानेदारों ने उनके द्वारा थोपे गए अतिरिक्त करों का सक्रिय विरोध किया था। यदि अंग्रेज़ सरकार की इच्छा इन अतिरिक्त करों को अनिश्चित काल तक जारी रखने की है तो इन्हें मराठों की तरह पृथक् रूप से वसूल किया जाना चाहिए व इन्हें निर्धारित 'मामला' की राशि में समाहित नहीं करना चाहिए।[५६]

कर्नल सदरलैंड ने अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से कहा कि ये अतिरिक्त कर उन किसानों पर विशेष आर्थिक भार डाल रहे हैं जिनके अधिकारों एवं हितों की अंग्रेज़ सरकार संरक्षक बनी हुई है। यह राशि जनता को ही देनी पड़ती है।[५७] इन अतिरिक्त करों का भार किसान पर निर्धारित 'हासिल' से अधिक होता है जो कि किसान के सामर्थ्य के बाहर है। इन करों को वसूल करने के लिए ठिकानेदार द्वारा प्रत्येक घर पर अतिरिक्त कर लागू किए जाते थे और उनके न देने पर जुर्माना व जब्ती की व्यवस्था थी। प्रत्येक ठिकानेदार ने फौज खर्च को चुकाने के लिए कई तरह के कर अपने ठिकानों में लागू कर रखे थे। इस परिस्थिति के लिए अंग्रेज़ सरकार ही जिम्मेदार थी क्योंकि जनता पर यह सब भार ठिकानेदार सरकार के अतिरिक्त करों के कारण डालते थे। सदरलैंड का कहना था कि इन करों की वजह से किसान को इस बात का कभी ज्ञान ही नहीं हो पाता था कि उसे राजस्व कर क्या देना है? उनके अनुसार इन करों की वसूली के कारण एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी जिसमें शक्तिशाली निर्बल को आसानी से कुचल सकता था और इन जागीरों व इस्तमरारियों में किसान को न्याय मिलना संभव नहीं था, क्योंकि इस मामले में सरकारी अधिकारी भी किसी तरह की किसानों को सहुलियत पहुंचाने में असमर्थ थे क्योंकि यह रकम सरकार के करों के कारण ही ठिकानेदार किसानों से वसूल करते थे। खालसा क्षेत्र में यह प्रथा बहुत पहले ही समाप्त कर दी गई थी।[५८]

सदरलैंड की यह मान्यता थी कि मराठों के द्वारा थोपे गए इन अतिरिक्त करों को समाप्त करना इस्तमरारदार और किसान दोनों को एक बहुत बड़ी राहत पहुंचाना होगा। इन करों को कायम रखना वे अंग्रेज़ सरकार के लिए अशोभनीय मानते थे। उनका कहना था कि जिस दिन ये समाप्त कर दिए जाएं उस दिन जनता में खुशी की लहर दौड़ जाएगी।[५९]

सदरलैंड के अनुसार भारत के अन्य किसी भी प्रदेश में अंग्रेजों का सम्पर्क राजपूताना जैसे जागीरदारों से नहीं हुआ था। जोधपुर रियासत में सैनिक सेवा के उपलक्ष में जागीरदारों के पास चालीस लाख प्रतिवर्ष की आय की जागीरें थीं जबकि राज्य उसमें से केवल बीस लाख की राशि उनसे वसूल करते थे। उदयपुर रियासत में राज्य इन जागीरदारों से फसल का छठा भाग ही ग्रहण करता था। सदरलैंड का कहना था कि अजमेर की जनता एवं इस्तमरारदारों से बीस वर्षों तक मराठों ने फौज खर्च हमेशा जबरदस्ती वसूल किया था। इस सम्पूर्ण काल में इस अनुचित कर का निरंतर विरोध होता रहा था। इसकी वसूली भी बड़ी कठिनाई से हो पाती थी। इस कर ने समाज के सभी वर्गों को गरीबी और आर्थिक संकट में डाल दिया था। सरकार यदि अपनी मांग केवल 'मामला' तक सीमित करदे तथा ठिकानेदारों की सहमति से अतिरिक्त कर की व्यवस्था करे तो वे सरकार को हर कठिन समय में इस अतिरिक्त भुगतान द्वारा मदद करते रहेंगे। इससे अजमेर का सामंत वर्ग पनप भी

सकेगा। इस व्यवस्था से नियमित वसूली संभव हो सकेगी तथा समय-समय पर बकाया माफी या कर स्थगन का प्रश्न ही नहीं उठेगा।[८०]

सदरलैंड के मत से जेम्स थाम्पसन, सचिव भारत सरकार, सहमत नहीं थे। इन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि इस्तमरारदार सामान्य रूप से परेशानी एवं वित्तीय संकट में से गुजर रहे हैं।[८१] थाम्पसन की मान्यता थी कि फौज खर्च न तो अनुचित ही है और न इसके भार से ठिकानों की वित्तीय स्थिति पर कोई बुरा प्रभाव पड़ा है। उनके अनुसार इस्तमरारदारों के हक किसी अधिकृत दस्तावेज पर आधारित नहीं थे। उनके अधिकारों के समर्थन में वे कोई दस्तावेज पेश नहीं कर पाए और न कभी ऐसे अधिकार अस्तित्व में ही थे। उन पर सरकारी लगान की राशि सदा ही एक पक्षीय एवं परिवर्तनशील व तत्कालीन सरकार की शक्ति पर आधारित रही थी। मराठा सरकार की सामान्य नीति निश्चित कर-निर्धारण की कमी नहीं थी, वे मनचाही रकम स्थिति के अनुसार वसूल करते रहते थे। थाम्पसन के अनुसार अंग्रेजों ने मराठों से सत्ता प्राप्त करने के बाद जहां तक संभव हो सका इन सभी करों को एक निर्धारित व निश्चित रूप देने का प्रयास किया था। उनका कहना था कि यहां कोई ऐसी परम्परा नहीं मिलती जिसके आधार पर अंग्रेज सम्पूर्ण अतिरिक्त करों को माफ कर अपनी मांग 'जामा' तक सीमित करदें।[८२] उन्होंने यह बहुत स्पष्ट कहा कि मराठों द्वारा वसूल किए जाने वाले विभिन्न करों एवं चुंगी की राशि अंग्रेजों की कुल मांग से कहीं अधिक थी। थाम्पसन ने इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया कि अंग्रेजों ने फौज खर्च के अतिरिक्त मराठों द्वारा आरोपित सभी करों को समाप्त कर दिए थे। फौज खर्च की राशि भी निश्चित कर दी गई थी जिसमें पिछले तेईस वर्षों में किसी तरह की वृद्धि नहीं की गई व यह रकम मराठों द्वारा वसूल किए जाने वाली वार्षिक राशि के अनुपात में बहुत कम थी।[८३] इन आधारों पर लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने सरकार की १८३० में निर्धारित नीति में किसी तरह का संशोधन अस्वीकार कर दिया। थाम्पसन के अनुसार सरकार को अजमेर के तालुकेदारों से वृद्धिगत लगान को वसूल करने का अधिकार था और यह सन् १८३६ में गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकार कर लिए जाने के कारण वे इस पर पुर्नविचार की आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे।[८४]

सन् १६४१ में कई तालुकेदारों ने फौजखर्च के अत्यधिक भार के प्रति शिकायत की व अपने प्रार्थना-पत्र में उन्होंने लिखा कि वे इससे अत्यधिक पीड़ित हैं क्योंकि यह फौजखर्च 'मामला' राशि के अनुपात में भी कहीं ज्यादा है।[८५] इस पर लेफ्टिनेंट गवर्नर का यह मत था कि 'मामला' के अनुपात में फौजखर्च की राशि लागू नहीं थी व औसतन फौजखर्च 'मामला' राशि के पचास प्रतिशत से कुछ ही अधिक था। जैम्स थाम्पसन ठिकानेदारों की दुर्दशा का कारण फौजखर्च को नहीं मानते

थे। उनका कहना था कि अगर अधिक लगान ठिकानेदारों की परेशानी के कारण है तो फौजखर्च समाप्त कर देने से वह कैसे दूर हो सकेगी। ठिकानेदार चूँकि सरकारी लगान की राशि गत २३ वर्षों में नियमित रूप से देते रहे थे इसलिए वे इसे भी अधिक नहीं मानते थे।[६६] थाम्पसन ठिकानेदारों की गिरी हुई आर्थिक स्थिति का मूल कारण उनकी फिजूल खर्ची की आदत को मानते थे।[६७]

इस तरह अंग्रेजों की 'प्रशासनिक सेवा' के तीन प्रमुख अधिकारियों ने अंग्रेजों द्वारा फौजखर्च वसूल करने की नीति की कड़ी निंदा की थी। इन में से दो विल्डर और केवेंडिश का मत था कि राजस्व निश्चित नियमों के आधार पर ही वसूल किया जाना चाहिए।[६८]

सन् १८३४ के पश्चात् सरकार को इस प्रश्न पर जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई उसमें एक नया मोड़ आया। एडमंस्टन ने भी जनता के कष्टों का कारण फौजखर्च को ठहराया। उनके मतानुसार समूची प्रजा को लगान के भार से लाद दिया गया था और सभी फौजखर्च को उनके 'जामा' में समाहित कर देने से असंतुष्ट थे। मराठा-काल में फौज खर्च स्थाई-कर नहीं था। यह अतिरिक्त कर यदाकदा आवश्यकता पड़ने पर सरकार संकटकाल में लोगों पर लागू करती थी और उसका ठिकाने की हैसियत से कोई संबंध नहीं था। अंग्रेजों ने इसे 'जामा' में समाहित कर सदा के लिए स्थाई कर का स्वरूप दे दिया था। इसलिए ठिकानों की आर्थिक स्थिति के ह्रास का यह एक मूल कारण माना जाने लगा। अतएव इसकी समाप्ति पर जोर दिया जाने लगा। सुपरिंटेंडेंट लेफ्टिनेंट माकनांटन अपने दृष्टिकोण में पूर्ववर्ती अधिकारियों की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट थे। उन्होंने ठिकानेदारों की गिरी हुई हालत के लिए सरकार की फौजखर्च से संबंधित नीति को ठहराते हुए कहा कि ऐसा लगता है कि व्यवस्था में कहीं कोई गंभीर भूल रह गई थी। कर्नल आंल्विस ने भी सन् १८३५ से लेकर १८३९ तक अपने द्वारा लिखे गए सभी पत्रों में "फौजखर्च" को ही आर्थिक कठिनाईयों का कारण माना।[६९]

कर्नल आल्विस की यह स्पष्ट राय थी कि मराठों द्वारा थोपे गए ये अतिरिक्त कर अनुचित थे और अजमेर के लिए अभिशाप साबित हुए थे।[७०] उनके अनुसार अधिकांश अधिकारीगण इनको समाप्त करने के पक्ष में थे।[७१]

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की यह स्पष्ट राय थी कि अंग्रेज सरकार ने आरंभ से ही दुहरी एवं उलझन भरी कर-नीति अपनाई।[७२] विल्डर ने इस्तमरारदारियों की भूमि के पुनर्ग्रहण का सुझाव दिया था। यदि आरम्भ से ही इस नीति को अंगीकार कर लिया जाता तो इस स्थिति को आसानी से सुलझाया जा सकता था। एक तरफ तालुकेदारों को स्वतंत्र रूप में ठिकाने का स्वामी मानने और दूसरी तरफ उन पर करों के भार को लादने की नीति में विरोधाभास था। उनकी राय से सरकार का इस प्रश्न

पर सन् १८३० का आदेश असंगत था। इन आदेशों ने तालुकादारों को एक ओर तो मालगुजारों की सी स्थिति प्रदान की और दूसरी तरफ उनके ठिकानों में साधारण हस्तक्षेप भी स्वीकार नहीं किया था।[७३] लेफ्टिनेंट गवर्नर के अनुसार अंग्रेजों का अजमेर में उद्देश्य पड़ोसी रियासतों के सम्मुख एक आदर्श प्रशासन प्रस्तुत करना था परन्तु जो नीति अंग्रेजों ने अपनाई उसके कारण वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहे थे।[७४]

लेफ्टिनेंट गवर्नर को वाध्य होकर यह स्वीकार करना पड़ा कि कर्नल सदरलैंड का मत राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से उपयुक्त था। यद्यपि इस प्रस्तावित कदम से सरकार को राजस्व में कुछ नुकसान उठाना पड़ा। उन्होंने इस वात का भी विशेष उल्लेख किया कि नसीरावाद स्थित सैनिकों में प्रस्तावित कमी की जाने पर जो वचत होगी उससे राजस्व की उपरोक्त कमी की पूर्ति की जा सकेगी।[७५]

अंग्रेजों ने वे सव अतिरिक्त कर सन् १८४१ में समाप्त कर दिए जिन्हें अवतक वसूल करते रहे थे। अजमेर के जागीरदार इस प्रकार अंग्रेज सरकार द्वारा इस्तमरारदार के रूप में स्वीकार कर लिए गए। सरकारी राजस्व एक सदी पूर्व मराठों द्वारा निर्धारित लगान के वरावर निश्चित कर दिया गया।[७६]

इस्तमरारदारों पर अतिरिक्त कर समाप्त करने के आदेश १७ जून, सन् १८७३ को सरकार ने घोषित किए, जिसके अनुसार इस्तमरारदारों के वर्तमान लगान को स्थाई एवं वंशपरम्परागत कर दिया। इसके साथ ही प्रत्येक ठिकानेदार को एक सनद प्रदान की गई जिसमें उन सव शर्तों का उल्लेख था जिन पर ये ठिकाने उन्हें इस्तमरारदार के रूप में प्रदान किए गए थे।[७७]

सन् १८७७ के भूराजस्व विनिमय के अन्तर्गत ये शर्तें समाहित करली गई थीं। शर्तों में उल्लिखित नजराना न तो कभी लागू ही किया गया और न वसूल ही किया गया वल्कि सन् १९२३ में सरकार ने इसे भी समाप्त कर दिया।[७८]

इस्तमरारदारों की स्थिति

अजमेर के इस्तमरारदारों को जोधपुर नरेश ने निजीतौर पर दरवार में तीन श्रेणी की ताजी में प्रदान कर रखी थीं। जव कभी किसी ठिकाने की श्रेणी के वारे में कोई विवाद उठ खड़ा होता तो अजमेर सरकार तत्संवंधी ठिकानों की श्रेणी के निर्धारण का मामला जोधपुर दरवार को निर्णय के लिए भेजा करती थी, क्योंकि वहां अजमेर के सभी ठिकानेदारों के नाम व उनकी निर्धारित श्रेणी लेखवद्ध थी।[७९] अंग्रेजी शासनकाल में जव कभी इस्तमरारदार दरवार में भाग लेते तो चीफ कमिश्नर को अपने हाथों से इन ताजिमी सरदारों को पान और इत्र से सम्मानित करना होता था और अन्य ठाकुर और जागीरदार फर्स्ट असिस्टेन्ट के हाथों यह सम्मान

ग्रहण करते थे। द्वितीय श्रेणी वाले जागीरदारों को जूडीशियल असिस्टेंट पान इत्र प्रदान करते थे। अंग्रेज़ शासनकाल में पूर्वप्रथा के अनुसार इन जागीरों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था प्रथम श्रेणी में वे ताजिमी ठिकाने थे जिनके इस्तमरारदार और ठाकुर प्रथम श्रेणी के सरदार रहे थे। द्वितीय श्रेणी के ठिकाने सरकार से सनद प्राप्त गैर ताजिमी सरदारों के थे। दरबार में इनका स्थान प्रथम श्रेणी के ताजिमी सरदारों के ठीक पीछे था। जिन ठिकानों को सरकार से सनदें प्राप्त नहीं थीं वे तीसरी श्रेणी में माने जाते थे।[८०]

इस्तमरारदार यद्यपि राजाओं की श्रेणी में नहीं आते थे तथापि वे एक माने में विशेषाधिकार प्राप्त ठिकानेदार थे। सरकार के साथ उनके संबंध सनद में लिखी शर्तों से बंधे थे।[८१]

अजमेर के इस्तमरारदारों को निम्न विशेषाधिकार प्राप्त थे—

१—इनकी भूसंपत्ति का स्थाई लगान होता था तथा संपत्ति अदालती कार्यवाही जांच तथा बंदोबस्त संबंधी अन्य अनिवार्यताओं से मुक्त थी।

२—केवल कुछ विशेष दमनकारी परिस्थितियों को छोड़कर इनके जमींदारों एवं प्रजा के मामले में शासन किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करता था।

३—इनकी भूसंपत्ति वंशपरम्परागत अधिकार के रूप में सुरक्षित थी, साथ ही एक प्रतिबंध यह था कि वह अपने जीवनकाल से अधिक तक के लिए इन्हें अलग नहीं कर सकते थे।

४—इस्तमरारदार के विरुद्ध किसी भी तरह के फौजदारी कानून के अंतर्गत अदालती कार्यवाही, जिलान्यायाधीश या सेशन्स न्यायालय से निम्न न्यायालयों में नहीं की जा सकती थी। इसके लिए भी चीफ कमिश्नर की पूर्व स्वीकृति आवश्यक थी।

५—यद्यपि किसी इस्तमरारदार के विरुद्ध अदालती कार्यवाही के लिए चीफ कमिश्नर की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर भी उसके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह न्यायालय में उपस्थित हो। कुछ उदाहरण ऐसे भी थें जो जहाँ इस्तमरारदारों को कठोर दण्ड की अपेक्षा हल्का दंड ही दिया गया था और उन्हें जेल न भेजकर कारावास की सज़ा भोगने के लिए एक विशेष भवन में रखने की व्यवस्था चीफ कमिश्नर द्वारा की गई थी।[८२]

उत्तराधिकारी के रूप में इस्तमरारदारी प्राप्त करने के लिए सरकार को नजराना प्रदान करने के निम्नांकित नियम थे—

(क) सीधे वंशगत पिता से पुत्र, पौत्र के रूप में प्राप्त करने वालों से नजराना नहीं लिया जाता था और न यह समपार्श्व (Collateral)

उत्तराधिकारियों से जैसे भाई अथवा भाई के पुत्र उत्तराधिकार ग्रहण करने पर वसूल किया जाता था।

(ख) जब कभी चाचा या ताऊ उत्तराधिकार ग्रहण करते तो नज़राने में वार्षिक राजस्व की आधी राशि ली जाती थी।

(ग) इसके अतिरिक्त अन्य सभी मामलों में अपवाद स्वरूप जबतक दत्तक उत्तराधिकारी गोद लेने वाला व्यक्ति का भतीजा हो तब पूरे वार्षिक राजस्व की राशि नज़राने में सरकार को देनी होती थी।

(घ) नज़राना राशि का भुगतान उत्तराधिकारी ग्रहण करने के चार वर्षों के अंतर्गत किस्तों में किया जाता जिसका निर्धारण चीफ कमिश्नर या प्रमुख अधिकारी द्वारा होता था। नज़राना भुगतान की अवधि चार वर्षों से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती थी।

(च) उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त यदि उत्तराधिकार ग्रहण करने के एक वर्ष के अंतर्गत जबकि नज़राने की किश्त दे दी गई हो पुनः अन्य उत्तराधिकारी की नियुक्ति हो तो उससे नज़राने की नई राशि वसूल नहीं की जाती थी।

(छ) यदि उत्तराधिकार के कुछ वर्षों बाद जिस पर नज़राना ग्रहण किया जाने को है नवीन उत्तराधिकार ग्रहण किया जाता है तो नज़राना अजमेर के चीफ कमिश्नर या अन्य प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी के आदेशानुसार तीन चौथाई राशि से अधिक नहीं वसूल किया जाता था।[८३]

इस्तमरारदार के गोद लेने का अधिकार सन् १८४२ में स्वीकार कर लिया गया था।[८४]

प्रशासन में भागीदारी

सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह के बाद के दिनों में भारतीय सामंतों का विश्वास प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। सन् १८६० में अवध और पंजाब के कुछ गिने-चुने सामंतों को सरकार ने प्रशासन में भाग लेने के लिए चुना था। उन्हें औपचारिक रूप से कुछ विशेष न्यायिक एवं राजस्व-प्रशासन के कार्य सौंपे गए जिन्हें वे जिला अधिकारी के सीधे नियंत्रण एवं निगरानी में किया करते थे। इन दोनों में ही यह प्रशासनिक प्रक्रिया सफल रही थी।[८५] अवध व पंजाब में इससे सामंत वर्ग का विश्वास प्राप्त करने में जो सफलता मिली उसके कारण लेफ्टिनेन्ट गवर्नर इसे उत्तर-पश्चिमी सूबे में भी लागू करने के पक्ष में थे।[८६]

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर का मत था कि अब वह समय आ चुका है जबकि सरकार को

और भी उदार नीति ग्रहण करनी चाहिए और समाज के इन अगुवाओं के व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रभाव का सरकार के लिए उपयोग करना चाहिए। इससे इनमें अंग्रेजों के प्रति स्वामिभक्ति की भावना बढ़ेगी।[८७] लेफ्टिनेन्ट गवर्नर का यह मत था कि उसके कुछ काम इनको प्रदान करने से एक तरफ तहसीलदार के भार को कम किया जा सकेगा और दूसरी ओर इस वर्ग की अंग्रेज सरकार के प्रति वफादारी प्राप्त की जा सकेगी।[८८] इस नीति के अंतर्गत अजमेर के इस्तमरारदार सम्मानित पुलिस अधिकारी व न्यायाधीश नियुक्त किए गए।

पुलिस अधिकारी के रूप में उनका उत्तरदायित्व

अजमेर के इस्तमरारदार अपने ठिकानें की सीमा क्षेत्रों में तथा हल्कों में होने वाले अपराधों की जांच-पड़ताल एवं निरीक्षण करते थे। इनके हल्के चीफ कमिश्नर द्वारा समय-समय पर निर्धारित होते रहते थे। इनके सीमा-क्षेत्र के गाँवों या हल्कों के चौकीदार किसी भी दुर्घटना की सूचना थानेदार को न करके इस्तमरारदार को देते थे। केवल कुछ मामलों की रिपोर्ट निकटतम सरकारी पुलिस थानों में करने के साथ-साथ ही इस्तमरारदार के पास भी की जाती थी।[८९]

इस्तमरारदार अपने क्षेत्र या हल्के में घटित किसी अपराध की रिपोर्ट या शिकायत मिलने पर निकटतम थानेदार या अन्य सरकारी पुलिस अधिकारी को मामले की जाँच के लिए निर्देश देते थे और इस अधिकारी को वे आदेश मान्य होते थे। वह मामले को छान-बीन के बाद पूरी रिपोर्ट इस्तमरारदार को प्रस्तुत करता था जो इन पर जिला पुलिस अधीक्षक की भाँति ही कार्यवाही के लिए आदेश एवं निर्देशन प्रदान करता था।[९०]

पुलिस केस को तैयार कर पहले इस्तमरारदार को दंडनायक के रूप में भेजती थी और अगर केस उनके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता तो वह उस पर कार्यवाही करते थे। यदि केस उनके अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता तो इस्तमरारदार संक्षेप में अपराध की सुनवाई कर और उसकी रिपोर्ट पुलिस अधिकारी को भेज देते थे और यदि पुलिस को प्रतीत होता कि उक्त मामले में अभियुक्त अपराधी प्रतीत होता है तो वे दोषी व्यक्ति को मय सबूतों एवं गवाहों के जिला दंडनायक को अथवा निकटतम दंडनायक को, जिसे उस अपराध में कार्यवाही के अधिकार प्राप्त होते थे, भेज देते थे। जिस मामले में पर्याप्त साक्षियों अथवा अभियुक्त को जिला दंडनायक को हस्तांतरित करने के बारे में पर्याप्त आधार उपलब्ध न होते उसमें इस्तमरारदार अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर देते या अपनी जिम्मेदारी पर कि जब भी आवश्यक होगा वे अभियुक्त को अदालत में पेश कर देगें, उसे जमानत पर छोड़ देते थे। भयंकर अपराध अथवा हिंसक घटना की स्थिति में इस्तमरारदार स्वयं घटनास्थल पर पहुँच कर जाँच की कार्यवाही आरंभ कर सकते थे।[९१]

दण्डनायक के रूप में उत्तरदायित्व

फौजदारी मामलों में इस्तमरारदारों के अधिकार उनके क्षेत्र में घटने वाली घटनाओं तक ही सीमित थे। इस्तमरारदार उन मामलों की सुनवाई या जांच नहीं कर सकते थे जिसमें उनका संबंधी या सेवक अभियोगी होता था। इस तरह के मामलों में इस्तमरारदार शिकायतों को सीधे जिला दंडनायक अथवा अन्य दण्डनायक के पास जांच के लिए प्रेषित कर दिया करते थे। इस्तमरारदार को पृथक्-पृथक् श्रेणी के न्यायिक अधिकार प्राप्त थे और वे उन्हीं मामलों की सुनवाई व जांच में सक्षम थे जो इनके अधिकार-क्षेत्रों के अंतर्गत आते थे। आरम्भ में इन्हें अधिकांशतः वे मामले सौंपे गए जो निम्न श्रेणी के न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के थे, तत्पश्चात् जैसे-जैसे इस्तमरारदार का न्यायिक मामलों में अनुभव बढ़ता जाता था वैसे-वैसे उनके अधिकार-क्षेत्र में भी पदोन्नति होती रहती थी।[६२]

इन इस्तमरारदारों में जिन्हें प्रथम श्रेणी के दंडनायक के न्यायिक अधिकार प्राप्त थे वे जाब्ता फौजदारी के अनुच्छेद-सात के अंतर्गत उल्लिखित सभी अपराधों की सुनवाई में सक्षम होते थे। ये वे अपराध थे जिन्हें सेशन्स न्यायालय में निर्णित किए जाते हैं। इस्तमरारदार ऐसे मामले की सुनवाई के पश्चात् अभियोग निर्धारित कर अभियुक्त को सेशन्स कोर्ट के सुपुर्द कर देते थे।[६३] इसी प्रकार उन इस्तमरारदारों के भी जिन्हें द्वितीय व तृतीय श्रेणी के दंडनायक के अधिकार थे, उनके भी अधिकार-क्षेत्र स्पष्ट कर दिए गए थे।[६४]

प्रथम श्रेणी दंडनायक के अधिकार प्राप्त इस्तमरारदार

इस श्रेणी के इस्तमरारदार को भारतीय दंड-संहिता के अंतर्गत दो साल की कैद तथा काल कोठरी की सजा, कोड़ों एवं सामान्य कारावास (अथवा दोनों ही) तथा दो हज़ार की राशि तक आर्थिक दंड या अर्थ-दंड और कारावास दोनों ही प्रदान करने के अधिकार थे।[६५]

सिविल जज के रूप में दीवानी मुकदमों में अधिकार

इस श्रेणी के इस्तमरारदारों को यह अधिकार था कि वे अपने क्षेत्र अथवा हल्के के अंतर्गत उन सभी दीवानी मामलों की सुनवाई कर सकते थे जिनमें विवाद की राशि सौ रुपए से अधिक की नहीं होती थी। इन इस्तमरारदारों को चीफ कमिश्नर समय-समय पर वे विवाद भी निर्णय के लिए भेज सकते थे जिनकी राशि दस हज़ार रुपए से अधिक नहीं होती थीं अथवा ऐसी अल्प राशि वाले मामले जिन्हें चीफ कमिश्नर उचित समझते थे। परन्तु इस्तमरारदार उन मुकदमों में निर्णायक नहीं हो सकता था जिनमें वह स्वयं या उसका सेवक अथवा स्वयं उसमें परोक्ष रूप से भी संबंधित रहा हो। ऐसे सभी मामले निर्णय के लिए इस्तमरारदार को डिप्टी

कमिश्नर को प्रेषित करने होते थे। इस्तमरारदार के फैसले के विरुद्ध अपील कमिश्नर को की जाती थी। आवश्यकता महसूस होने पर इस्तमरारदार डिप्टी चीफ कमिश्नर से सम्पत्ति, राय और निर्देशन प्राप्त कर सकते थे।[९६]

द्वितीय श्रेणी दंडनायक के अधिकार प्राप्त इस्तमरारदार

इस श्रेणी के इस्तमरारदारों को छः माह तक कारावास, दो सौ रुपयों तक जुर्माना, कोड़ों की सजा, कारावास और जुर्माना दोनों ही, जो भारतीय दंड-संहिता के अंतर्गत एवं उनके न्यायिक अधिकार-क्षेत्र में हो, देने का अधिकार था।[९७]

तृतीय श्रेणी दंडनायक के अधिकार प्राप्त इस्तमरारदार

इस श्रेणी के इस्तमरारदारों को एक माह (सामान्य एवं कठोर) तक का कारावास अथवा पचास रुपयों तक जुर्माना या भारतीय दंड-संहिता के अंतर्गत दोनों ही सजा देने के अधिकार प्राप्त थे। परंतु उन्हें कालकोठरी और कोड़े की सजा देने के अधिकार नहीं थे।[९८]

इस्तमरारदारियों की आंतरिक व्यवस्था

केवेन्डिश ने ७० ठिकानों के २१८ असली (मूलग्राम) व ७८ देखली गाँवों की जाँच के आधार पर जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसके अनुसार १५८ गांवों में इस्तमरारदार ने स्वीकार किया कि सिंचित और विकसित भूमि जिसमें स्वयं किसान ने अपने श्रम या धन से सिंचाई के साधन का निर्माण किया है उसमें किसान को बेदखल नहीं किया जा सकता था। ऐसी भूमि के बारे में यह धारणा थी कि इस भूमि को बेचने या बंधक रखने का अधिकार किसान को नहीं था, परंतु इस्तमरारदारों ने किसानों को यह अधिकार प्रदान कर रखा था कि वे यदि उचित अवधि में अपने गाँव को पुनः लौट आते थे तो वापस वे इस भूमि पर अधिकार प्राप्त कर सकते थे। १६१ गाँवों में ऐसे किसान थे जो वंशपरम्परागत एक ही भूमि पर कृषि करते आए थे, इनके अधिकार भी उन किसानों जैसे थे जो कुँओं इत्यादि के मालिक थे। असिंचित एवं एक फसली भूमि के बारे में यह सामान्य सिद्धांत लागू था कि इनमें किसान इस्तमरारदार की इच्छा पर निर्भर रहता था।[९९]

रिपोर्ट के अनुसार १५ गाँव ऐसे थे जहाँ कुँओं के मालिक अपने कुँए और भूमि का विक्रय कर सकते थे और १३ गाँव ऐसे भी थे जहाँ पुश्तैनी रूप से अधिकारी किसान अपनी भूमि को बंधक रख सकते थे या विक्रय कर सकते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस जाँच के दौरान अधिकारों का प्रश्न किसानों द्वारा उठाया गया होगा और इस्तमरारदार ने उसे स्वीकार कर लिया होगा।[१००]

आवास भूमि के बारे में रिपोर्ट का कहना है कि ३१ गाँवों में गैर काश्तकारों को अपने घर व दुकानों के विक्रय का अधिकार था। तीन गाँवों में यह

अधिकार वंधक रखने तक ही सीमित था। जबकि २३७ गांवों में आवासी को वेदखल तो नहीं किया जा सकता था परंतु उन्हें अपनी सम्पत्ति को वेचने, वंधक रखने व हस्तांतरित करने के अधिकार नहीं थे। इस्तमरारदारों ने लोगों को अपने मकानों को वेचने के अधिकार प्रदान नहीं कर रखे थे। केवल वे ही जिनके परिवार उस ठिकाने में इस्तमरारदार के आगमन से पहले के बसे हुए थे, या जिन्होंने ज़मीन इस्तमरारदार से खरीदी थी, अपने मकान वेच सकते थे।[१०१] अंग्रेज़ सरकार की साधारणतया उनके मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति थी परंतु सार्वभौम सत्ता होने के नाते जहां नागरिक अधिकारों का प्रश्न सन्निविष्ट होता हो या ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर जिनका जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ता हो हस्तक्षेप करना अपना कर्त्तव्य समझती थी।[१०२]

सरकार किसानों के अधिकार की रक्षा करने के पक्ष में थी। उसकी यह मान्यता थी कि कृषि के विकास के लिए किसान की सुरक्षा एवं संरक्षण आवश्यक है। किसान को अपनी भूमि एवं आवासगृह पर स्थाई अधिकार होना चाहिए। किसान को अतिरिक्त करों से मुक्ति प्राप्त होनी चाहिए। परंतु यह नीति आने वाले वर्षों में पूर्णतः विस्मृत हो गई थी और सन् १८७३ तक ऐसी स्थिति हो गई थी कि स्वयं डिप्टी कमिश्नर को भी यह कहना पड़ा कि इस्तमरारी ठिकानों में भूमि पर ऐसे कोई अधिकार किसान के पास नहीं रहे हैं जिनके अंतर्गत किसान ठिकानेदार के अप्रसन्न होने पर उस ठिकाने में रह सके। जेम्स लाटम ने अपने एक पत्र में आलोचना करते हुए लिखा था कि विकृत अंग्रेज़ी भूधृति व्यवस्था किसानों पर थोप दी गई। इसी व्यवस्था को सन् १८७७ के भूमि एवं राजस्व विनिमय की धारा २१ के अंतर्गत कानूनी रूप प्रदान कर दिया गया था। जिसके अनुसार इस्तमरारी ठिकानों में किसान का इस्तमरारदार की भूमि पर किराएदार का स्थान दिया गया था।[१०३] इस प्रकार ठिकानेदार को किसान को वेदखल करने का कानूनी अधिकार प्रदान कर दिया गया था। इस कारण ठिकानेदार जिससे भी नाराज़ हो जाते उसको ठिकाने से वाहर निकल जाने के लिए वाध्य करने लगे थे। यहां तक कि करों की वसूली में गैर कानूनी प्रतिवंध लगाए जाने लगे। अपने इन विशेष अधिकारों के समर्थन में उनका कहना था कि निकटवर्ती राजघरानों के वंशज होने के नाते पड़ोसी रियासतों के जागीरदारों की तुलना में उनका स्थान ऊँचा है। जवकि उनके सवसे वड़े समर्थक कर्नल सदरलैण्ड का यह मत था कि अंग्रेज़ सरकार की दृष्टि में उनका वही स्थान था जो उदयपुर रियासत में वहां के जागीरदारों का था। छोटे से छोटा इस्तमरारदार जिसके पास कुल एक गांव था वह भी अपनी जागीर को 'राज' और अपने आपको 'दरवार' कहलवाता था। इन इस्तमरारदारों की सामान्य प्रवृत्ति अपने आपको एक छोटा-मोटा नरेश मानने की वन गई थी। इन ठिकानों के सामान्य लोग अपने ठाकुर के प्रति गहरे आदर की भावना रखते थे। परंतु यह आदर भय

पर आधारित था, प्रेम और सद्भाव पर नहीं।[104]

किसानों की सामान्य स्थिति

ठिकानों में किसानों की स्थिति अत्यधिक असुरक्षित थी। यदि किसान ठाकुर की किसी भी लगान संबंधी मांग की पूर्ति करने में असमर्थ रहता तो उसे अपनी आजीविका के साधन खो बैठने का भय बना रहता था।[105] स्थिति का सही चित्रण वैडेन पॉवले ने इन शब्दों में किया है "पुश्तैनी होने के कारण पुराने किसानों का अपने खेतों से एक रिश्ता-सा बन चला है; वह इनको छोड़ने के बजाय भारी से भारी लगान एवं लागें तक चुकाने में रातदिन एक कर देते हैं।[106] दुर्भाग्य से किसान एक वर्ग के रूप में सदा ही गुलामी में जकड़ा हुआ रहा, उसके लिए अपनी आवश्यकता की पूर्ति करना भी दूभर था। जब कभी कोई सरकारी अधिकारी इन गाँवों के दौरे पर जाता भी, तो किसान इस्तमरारदार के आतंक के कारण अपना मुँह नहीं खोल पाते थे क्योंकि उन्हें यह भय रहता था कि यदि ठाकुर को यह पता लग गया कि उन्होंने शिकायत की है तो वह उन्हें गोली से उड़ा देगा। लगभग सभी गाँवों में किसान की स्थिति दरिद्रतापूर्ण थी। उनके रहने के मकान घोंसले जैसे थे। लोगों में पोषण की कमी प्रतीत होती थी। किसान भारी ऋणग्रस्त थे। कड़े कर और ज़मीन की असुरक्षा दोनों के कारण अत्यंत दयनीय स्थिति पैदा हो गई थी। जिसके फलस्वरूप प्रति दस किसानों में से नौ किसान कर्जदार थे और यह कर्ज़ा भी उस सीमा तक था कि वे "दिवालिया" बनकर ही उससे मुक्ति पा सकते थे।[107]

अधिकांश गाँवों में लगान उसी भूमि पर वसूल किया जाता था जिसमें फसल ली गई हो। प्रत्येक कटाई के अवसर पर इसे ठिकानेदार अपने नाप के अनुसार नापा करते थे। उन खेतों को छोड़ दिया जाता था जिनका क्षेत्रफल निश्चित होता अथवा लगान फसल के रूप में वसूल किया जाता, अर्थात् जिसमें लटाई-प्रथा प्रचलित थी। सिंचित भूमि में सामान्य खरीफ की फसल पर प्रति बीघा नगद लगान लिया जाता था, जो 'बीघोड़ी' कहलाता था। इसकी दरें सामान्यतः दीर्घकाल से एक सी चली आ रही थीं और उन दिनों निर्धारित हुई थीं जबकि खाद्यान्न सस्ता था अतएव वे तुलनात्मक रूप से अधिक उदार थीं। परंतु खरीफ पर लगान-प्रथा प्रत्येक ठिकाने की पृथक् पृथक् थीं, यहाँ तक कि एक ही ठिकाने के गाँवों में अलग-अलग थीं। रबी की फसल पर सामान्यतः उपज के आधार पर लगान लिया जाता था, परंतु बागों की उपज पर बीघोड़ी की दरें नगदी में थीं और काफी ऊँची थीं। बारानी खेती आमतौर पर परिवर्तनशील थी। असिंचित बिना खाद डाले वर्षा ऋतु में पड़त पड़ी भूमि में हल चलाकर यह फसल ली जाती थी। किसान ठिकानेदार और गाँव वालों की इजाजत से साल भर में एक बार इन खेतों को जोता करता था। इनकी सीमा

निर्धारित नहीं होती थी तथा इसका लगान आपसी समझौते पर निर्भर करता था। यद्यपि सामान्यतः उसको यह अधिकार प्राप्त था कि वह लगातार दो वर्ष तक उस भूमि से फसल ग्रहण कर सकता था। तीसरे साल उसे अपने खेत पड़त छोड़ने पड़ते थे। बारानी ज़मीन की बीघोड़ी सबसे कम थी परंतु यदाकदा बाँटा या फसल का अंश लगान के रूप में लिया जाता था। यदि खेत में वर्षा की कमी के कारण फसलों से अनाज पैदा नहीं होता या केवल मवेशियों के लिए घास चारा पैदा होता तो लगान नगदी में वसूल किया जाता था। यह व्यवस्था ज्वार की फसल पर लागू होती थी जो वर्षा के अभाव में चारे के रूप में काम आती थी।[१०८] कुछ गाँवों में फसल होने पर भी नगदी में लगान लेने की व्यवस्था थी। कुछ क्षेत्रों में, विशेषकर केकड़ी सब डिवीज़न में, खेतों में असिंचित व खादहीन भूमि में रबी की फसल ली जाती थी, जिसे 'माल' कहा जाता था। इसका कराधान "बाँटा" के आधार पर होता था। खड़ी फसल को कूंत कर (कूंता) ठिकानेदार का अंश निर्धारित किया जाता था। कभी-कभी यह प्रक्रिया ठिकानेदार के प्रतिनिधियों के हाथों होती थी परंतु बहुधा पंचायत द्वारा निर्धारित होती था जिसमें पटेल, ग्रामप्रमुख व ठिकाने के प्रतिनिधि एवं किसान होते थे।[१०९] ये लोग प्रति बीघा लगान की दर से फसल का लगान निर्धारित करते थे। इस तरह जो भाग ठिकाने का होता, वह जिन्सों में लिया जाता था परन्तु बड़े ठिकानों में अधिकाँशतः इस अंश का नगदी में मूल्यांकन कर लिया जाता था। यह लगान दर 'निरख-प्रथा' के अनुसार तत्कालीन निकटवर्ती बाजार के भावों अथवा गाँव के बनियों द्वारा प्रस्तावित मूल्य के अनुरूप निर्धारित की जाती थी।[११०]

इस तरह निर्धारित लगान के साथ "लागें" और नेग अलग से जुड़े हुए थे। यह उपकर नगदी या फसल के रूप में वसूल किया जाता था। कई बार जहाँ लगान नगदी में लिया जाता था वहाँ प्रति रुपया कई आने इन उपकरों के रूप में जोड़े जाते थे। मूल लगान के साथ जुड़ी हुई माँगें प्रति चालीस सेर में दो से लेकर पन्द्रह सेर तक हो जाती थीं।[१११] इस तरह लगान में ही बहुत कुछ वृद्धि हो जाती थी और कम उपज वाले प्रदेश के ठिकानेदारों के संतुष्ट होने के लिए यह राशि पर्याप्त थी। नकद रूप में लिए जाने वाले उपकर अलग से वसूल किए जाते थे। नगदी उपकर कृषि लगान से कदाचित् ही पाँच प्रतिशत से अधिक पहुँच पाता था। इसके अन्तर्गत गृह कर 'नेवता' या विवाह-शादी के अवसर पर लगाए गए उपकर सम्मिलित नहीं थे। जिन्सों में वसूल किए जाने वाले उपकर या नेग का भार किसान पर औसतन कुल उपज का सात या आठ प्रतिशत होता था। कुछ क्षेत्रों में ये नेग दस प्रतिशत तक वसूल किए जाते थे। बहुधा आधा लाटा (फसल का आधा हिस्सा) जहाँ वसूल किया जाता था वहाँ इन उपकरों को छोड़ भी दिया जाता था परंतु एक दो जगह ऐसी भी थीं जहाँ आधा लाटा के साथ-साथ "नेग" भी वसूल किए जाते

थे और इन दोनों को मिलाकर किसान को अपनी उपज का साठ प्रतिशत ठिकानेदार को सौंपना पड़ता था।[112]

"चाही" अथवा कुँओं से सिंचित अच्छी भूमि पर प्रति बीघा लगान की दर सात रुपए से लेकर दस रुपए तक थी तथा इनके साथ कुछ ऊँची दरों के उपकर भी जुड़े हुए थे। इससे कुँओं से सिंचित मध्यम श्रेणी की भूमि पर लगान की दर कुछ कम थी। इस भूमि में सामान्यतः दो फसलें अथवा एक अच्छी फसल ली जा सकती थी। इसकी लगान दर औसतन प्रति बीघा साढ़े पांच रुपए से लेकर सात रुपए तक की थी। तीसरी श्रेणी की अथवा घटिया किस्म की भूमि जो कुओं से सिंचित होती थी उसकी लगान-दर तीन रुपये से लेकर पांच रुपए प्रति बीघा थी। खरवा ठिकानों में प्रति बीघा साढ़े सात रुपए की लगान-दर तथा अतिरिक्त उपकरों व अन्य शुल्कों को मिलाकर ९ रुपए प्रति बीघा अंकित होती थी। तालाबी भूमि में कृषि करने वाले को जल शुल्क के सहित भी काफी कम दर चुकानी होती थी। आबी ज़मीन का लगान बारानी कूंते के आधार पर फसल के अनुसार चुकाया जाता था। जहाँ बीघोड़ी निर्धारित थी वहाँ किसान को ६ आने से लेकर ढ़ाई रुपए प्रतिबीघा चुकाना होता था जबकि सामान्य दर एक रुपए के लगभग थी। बगीचों की रबी की फसल पर लगान औसतन पांच रुपए बीघा लगाया जाता था।[113] इससे यह स्पष्ट है कि खालसा-भूमि की अपेक्षा इस्तमरारदारी ठिकानों में बहुत ही भारी लगान था।

अजमेर जैसे क्षेत्र के लिए, जहाँ पांच फसलों में से तीन सूखे की चपेट में आती रहती थीं, यह आवश्यक हो गया था कि लगान फसलों के अंशदान के रूप में वसूल किया जाए। इसमें यह फायदा था कि फसल नष्ट होने की स्थिति में किसान कर भार से बच सकता था और उसे स्वाभाविक रूप से ही राहत प्राप्त हो जाती थी।

अधिकांश ठिकानों में पुश्तैनी किसानों को परेशान करने के मामले बहुत ही कम घटते थे। कई ठिकानों में बीघोड़ी में परिवर्तन कर लगान बढ़ा दिया गया था; उदाहरणार्थ, मूल रूप से जो लगान "चित्तोड़ी" रुपए में भुगतान किया जाता था, उसके स्थान पर "कल्दार" रुपए में वसूल किया जाने लगा, इससे किसान को २३ प्रतिशत का भार अधिक उठाना पड़ा। कहीं बीघोड़ी के स्थान पर बांटा लागू करके (उदाहरणतः कपास की फसल) लगान में वृद्धि कर दी गई थी।[114] इन ठिकानों में किसानों के अधिकारों के बारे में एकमात्र कानूनी प्रावधान अजमेर-भूमि एवं राजस्व-विनिमय की धारा २१ थी। जिसके अनुसार इस्तमरारदारियों में किसान की स्थिति भूमि पर इस्तमरारदार की इच्छा पर निर्भर एक किराएदार की थी।[115]

किसानों का उनके खेतों पर किसी तरह का कोई अधिकार नहीं था,

सामान्यतः एक लम्बे समय से चले आ रहे मौरूसी एवं वंशपरम्परागत किसान को भूमि से बेदखल करने की प्रथा ही उनकी सुरक्षा का आधार था। परंतु किसी भी किसान को जमींदार अपनी इच्छानुसार बेदखल कर सकता था और इसके लिए उसे कारण बताना आवश्यक नहीं था। यद्यपि अजमेर-भूमि एवं राजस्व-विनिमय में किसान को बेदखल करने के लिए कृषि-वर्ष के प्रारम्भ होने से पूर्व सूचना देना और किसान द्वारा निर्मित विकास कार्यों का उसे मुआवजा चुकाने की व्यवस्था थी।

सामान्यतः कानून के अंतर्गत एक निश्चित अवधि तक भूमि पर काश्त करने वाले किसान को उस भूमि पर कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हो जाते थे और वह कानून के अंतर्गत अपनी पूर्ण सुरक्षा का दावा कर सकता था। अवध में यह कानूनी मियाद १२ साल की होती थी। बंगाल-भूमि-कानून (सन् १८८५) के अंतर्गत जिस किसान ने लगातार बारह वर्षों तक अपने कब्जे की भूमि को जोता था उसे बेदखली से संरक्षण प्राप्त था। इस्तमरारदार ठिकानों के किसानों के लिए इस तरह की व्यवस्था अजमेर के भूमि एवं राजस्व-विनिमय में नहीं थी। अजमेर-मेरवाड़ा के इस्तमरारदारी ठिकानों में किसान को उनकी बेदखलियों के विरुद्ध कानूनी एवं औपचारिक किसी भी तरह के अधिकार प्राप्त नहीं थे।[११६]

इन ठिकानों में किसानों का सीधा वंशानुगत उत्तराधिकार सामान्यतः स्वीकार कर लिया जाता था। परंतु निकट रिश्तेदारों में गोद लेने पर इस्तमरारदार को नज़राना देना पड़ता था। उक्त नज़राने की राशि भेंट करने पर भी उत्तराधिकारी को सामान्य सहज नियम के तौर पर भी भूमि के हस्तांतरण के अधिकार प्राप्त नहीं होते थे। कुछ परिस्थितियों में किसानों को अपने खेतों को बंधक रखने के अधिकार प्राप्त हो गए थे और इस कारण महाजनों ने कुछ भूमि भी अपने अधिकार में कर ली थी। इन ठिकानों के ८५ प्रतिशत से ९० प्रतिशत तक किसान इन महाजनों या "बोहरों" से कर्ज लिया करता था। यह राशि बहुधा लगान के रूप में विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ लगान फसल उठाने से पूर्व अग्रिम (अगोतरी) वसूल की जाती थी। पारिवारिक अवसरों, त्योहारों, विवाह, मृत्यु-संस्कार आदि पर कभी-कभी फसल नष्ट होने पर आसामी को उसके खुद के व परिवार के भरण-पोषण के लिए आवश्यक खाद्यान्न इत्यादि की खरीद के लिए महाजन ऋण दिया करता था। ऋण पर भारी ब्याज लिया जाता था, कई बार तो वह कर्जा ली गई मूलराशि से भी अधिक बढ़ा-चढ़ा कर लिखी जाती थी। बहुधा महाजन ही आढ़तियों का काम भी करता था, जिसके माध्यम से किसान अपनी फसल बेचता था। फलस्वरूप महाजन कर्ज के पेटे फसल भर लेता, लगान चुका देता और किसान को इतना कम प्रदान करता था कि जिससे वह अपना गुजारा मात्र कर सके। यह निर्विवाद सत्य है कि मौसम की फसल भी ब्याज के चुकारे के नाम पर महाजन की बहियों में दर्ज

कर ली जाती थी और मूलधन वैसा का वैसा ही बना रहता था। किसान का नाम कदाचित् ही बनिए के वही खातों में से कट पाता और वह दिनों दिन अधिक कर्ज के भार से लदता चला जाता था।[११७]

अधिकांश ठिकानों में किसानों के फसल उठाने से पहले ही बकाया राशि लेने पर बल दिया जाता था। जबतक वह यह प्रदान नहीं करता उसे फसल नहीं उठाने दी जाती थी। यदि किसी में कोई पुरानी राशि बकाया नहीं होती तो उसे भावी भुगतान के लिए जमानत (साई) की व्यवस्था करने को मजबूर किया जाता था।[११८] इन दोनों रकमों की व्यवस्था किसानों के लिए महाजन या वोहरों द्वारा की जाती थी।यद्यपि पीसांगन में ठिकाने और महाजनों के बीच आपसी तनाव की स्थिति थी, अतएव वहाँ किसानों द्वारा आपस में इसकी व्यवस्था की जाती थी। महाजन जिस रोज जमानत या भुगतान की राशि देते उसी दिन से वही में दर्ज कर उस पर ब्याज चालू कर देते। बहुधा वे इस पर रुपए में एक आना 'कांटा' के नाम पर अतिरिक्त वसूल किया करते थे, परन्तु वोहरे यह राशि ठिकाने को तबतक भुगतान नहीं करते थे जबतक कि वे किसानों का जमा अनाज बेच नहीं लेते थे। इस पर भी किसान के नाम लगान की जो राशि जमा की जाती उसमें वे अपनी निश्चित आढ़त की रकम पहले काट लेते थे। यह व्यवस्था किसानों के लिए अभिशाप थी। यद्यपि अन्य प्रान्तों के कुछ ठिकानों में 'साई' या अग्रिम राशि लगान-निर्धारण के लिए फसल के कूंते के समय वसूल की जाती थी। जबतक इन दोनों राशियों में से एक राशि ठिकाना प्राप्त नहीं कर लेता, किसान का कूंता रोक दिया जाता अथवा उसे कटी फसल में से अन्न निकालने या फसल अन्यत्र ले जाने से रोक दिया जाता। उन ठिकानों को यदि अग्रिम-राशि या साई नहीं मिलती अथवा जहाँ इनकी प्राप्ति की संभावना क्षीण थी वहाँ यदि ठिकानेदार यह अनुभव करते कि अग्रिम-राशि या साई की राशि मिलने की संभावनाएं क्षीण हैं तो वे फसल को अपने कब्जे में लेकर उसे महाजन को सौंप देता और इससे किसान की बकाया राशि ले लेता था।[११९] यदि फसल खेत में से नहीं हटाई जाती तो एक 'सहसा' या चौकीदार फसल की निगरानी के लिए छोड़ दिया जाता था और कई बार किसान के घर पर भी ठिकाने का कोई भी व्यक्ति जिसे "तलबिया" कहा जाता था, बकाया राशि वसूल करने के लिए जाता था। किसान उसे अपने घर ठहराता और अच्छी तरह से खातिर करता, यदि उस समय उसके पास कुछ उपलब्ध होता तो उसकी भेंट-पूजा की व्यवस्था भी करता[१२०] यदि ये सभी प्रयास धन-प्राप्ति में किन्हीं कारणों से असफल सिद्ध होते तो किसान को अन्य तरीकों से तंग किया जाता था। उसे हल जोतने, भूमि में खाद डालने, सिंचाई करने, पशुओं को चराने, घास काटने से रोका जाता अथवा उसे ठाकुर के गढ़ या किले में बुलाकर वहाँ बंद कर दिया जाता या उससे लिखित में भुगतान का वचन लिया जाता था। इनके अतिरिक्त कुछ मामलों में उसके मवेशी

और बैल-गाड़ी तक जब्त कर लिए जाते थे। पड़ोसी रियासत मेवाड़ के मेरवाड़ा वाले जागीरी ठिकानों में "साई" के अभाव में फसलों की कुर्की महाजन के माध्यम से रकम की वसूली और फसल पर सहणों की नियुक्ति की प्रथा प्रचलित थी। प्रथम श्रेणी के ठिकानेदारों को अपनी बकाया वसूली के लिए राजस्व आदेश जारी करने के अधिकार प्राप्त थे, इन सभी प्रयासों के अतिरिक्त भी ठिकानेदार के पास अंतिम शस्त्र के रूप में बकाया वसूली के लिए किसान को वेदखल करने का अधिकार प्राप्त था।[१२१]

सभी इस्तमरारदारों का यह दावा था कि उनके ठिकानों के अन्तर्गत किसी भी गाँव में रहने वाले को अपना मकान या भूमि पर किसी तरह का कोई अधिकार नहीं है जब-तक कि ठिकानेदारों से वह इस आशय की विशेष स्वीकृति प्राप्त नहीं कर ले।[१२२] केवल भिनाय, मसूदा और टांटोटी को छोड़कर सभी ठिकानों में यह व्यवस्था थी कि किसी भी व्यक्ति को अपने भवन इत्यादि के विक्रय, बंधक या भेंटस्वरूप हस्तांतरण करने का अधिकार नहीं है। यदि उसे किन्हीं कारणों से गाँव त्यागना पड़ता तो, वह मकान वेच नहीं सकता था। भिनाय और चांपानेरी दो बड़े गाँवों में नज़राना लेकर हस्तांत-रण पर स्वीकृत कर दिया जाता था।[१२३] अपनी जाँच रिपोर्ट में केवेंडिश महोदय ने इस दिशा में यह अभिमत व्यक्त किया कि "इन ठिकानों में एक गाँव गैर काश्तकार अपने मकानों, कुँओं इत्यादि का विक्रय कर सकते थे, जबकि दूसरे गाँव में उन्हें केवल अपनी दुकानें और कुँओं के विक्रय करने का अधिकार था। टांटोटी में पक्के मकानों के मालिकों को, जो पट्टेदार कहलाते थे इनकी बिक्री एवं बंधक के अधिकार प्राप्त थे परन्तु ऐसी स्थिति में उन्हें विक्रय मूल्य का १५ प्रतिशत बंधक राशि का १० प्रतिशत ठिकाने के खजाने में बतौर नज़राना जमा कराना होता था।"[१२४]

केवेंडिश की रिपोर्ट से यह पता चलता है कि ठिकानों में गृहकर भी प्रचलित था। गृहकर मकान या भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर न होकर मालिक की हैसियत के आधार पर लिया जाता था। गृहकर की राशि न तो निर्धारित ही थी और न उसके बारे में किसी तरह के निश्चित नियम थे। सम्पूर्ण व्यवस्था बेढंगी सी थी फिर भी विना किसी अवरोध के यह व्यवस्था चल रही थी। मकानों में विस्तार करने पर भारी नज़राना थोपा जाता था और टूट-फूट ठीक कराने और मरम्मत पर नज़राना वसूली के लिए ठिकानों की कार्यवाही पर लोगों ने कड़ा विरोध एवं तीव्र असंतोष प्रकट किया था। पीसांगन में गैर काश्तकारों ने "गृहकर चुकाना स्थगित किया जा चुका है" यह कहकर चुकाने से इन्कार कर दिया था। इसके फलस्वरूप लोगों और ठिकाने के बीच तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। यद्यपि निर्णय ठिकानेदार के पक्ष में हुआ।[१२५]

सन् १८३० में भारत सरकार भी इस बात के पक्ष में थी कि किसानों का अपने

मकान पर स्थाई अधिकार होना चाहिए।[१२६] परन्तु उत्तरपश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेंट गवर्नर इस प्रश्न पर किसी तरह के हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थे। उल्टे कम्पनी के डाइरेक्टर्स ने भी इस प्रश्न पर लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के मत को "न्यायपूर्ण एवं उचित ठहराया। उनके अनुसार ठिकानों में लोगों को उनके मकान पर स्वामित्व के हक प्रदान करना न्यायसंगत नहीं होगा।" इस प्रश्न पर किसानों को अंग्रेज़ सरकार से कभी न्याय प्राप्त नहीं हो सका।[१२७]

अध्याय ५

१. जे० डी० लाटूश—गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा (सन् १८७४ के भू-बंदोबस्त पर आधारित) पृ० २३ (स)।

२. टॉड एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान पृ० ४१।

३. पी० सरन—स्टडीज़ इन मिडेविल इंडियन हिस्ट्री पृष्ठ १ से २२।

४. फ्यूडेटेरीज एण्ड जमींदार्स ऑफ इंडिया पृ० २३।

५. टॉड एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान खंड १, पृ० १६७ "सामंती नज़राने का दस्तूर सिद्धान्ततः पूर्व में भी पश्चिमी देशों जैसा ही था। मेवाड़ में नज़राने का दस्तूर दे देने पर राज्य ठिकाने के उत्तराधिकारी को स्वीकृति प्रदान करता था।" यह व्यवस्था एक तरह से राज्य द्वारा जागीर पुनर्ग्रहण करने के अधिकार को इंगित करती थी। टॉड ने भी स्वीकार किया है कि (खंड १-पृ० १८६), यह एक औपचारिक विशेषाधिकार था, जिसका कदाचित् ही उपयोग हो पाया था (खंड १, पृ० १९१)।

६. जे० डी० लाटूश—गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा पृ० २६ (अ)।

७. केवेंडिश का पत्र दिनाँक ११ जुलाई, १८२९ "यहाँ कुल ९ परगने हैं खरवा, मसूदा, पीसांगन, गोविन्दगढ़, सावर, भिनाय, केकड़ी, देवगढ़, शाहपुरा तथा १२ गाँव अजमेर परगने में हैं। २१८ असली और ७८ दखली गाँव कुल मिलाकर २९६ हैं। खरवा और मसूदा के चार तालुका हैं, पीसांगन, गोविन्दगढ़, भिनाय और सावर के ३० उप तालुकें हैं। केकड़ी उपनाम जूनीया के १४ उप तालुके हैं। देवगढ़ और बघेरा के ३ उप तालुके हैं और अजमेर परगने के ११ उप तालुकें हैं"।

८. विल्डर का पत्र दिनांक २७ सितम्बर, १८१८।

९. भिनाय के इस्तमरारदार राजा जोधा के वंशज थे । मारवाड़ के चंद्रसेन (१५६३) के पौत्र राणसेन को इस क्षेत्र में भील उपद्रवियों को समाप्त करने के इस सेवा उपलक्ष में सम्राट अकबर ने भिनाय और सात परगने जागीर में दिए थे । आरम्भ में इस जागीर में कुल ८४ गाँव थे जो बाद में चौथी पीढ़ी में उदयभान (४६ गाँव) तथा अखैराज (३८ गाँव) में बँट गए । उदयभान ने भिनाय तथा अखैराज ने देवलिया को मुख्य ठिकाना स्थापित किया । भिनाय ठिकाना सरकार को ७,७१७ रुपए की वार्षिक खिराज देता था और जोधपुर नरेश ने उन्हें राजा का खिताब उनकी सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में प्रदान कर रखा था । (रूलिंग प्रिन्सेज, चीफ्स एंड लीडिंग पर्सोनेजेस ऑफ राजपूताना खंड अजमेर (१९३८) सातवां संस्करण पृ० १८७ और १८८) ।

१०. सावर ठाकुर शिसोदिया वंशी सक्तावत राजपूत थे । इस ठिकाने में ३३ गाँव थे जिनकी वार्षिक आय साठ हज़ार थी । यह ठिकाना सरकार को ७,२१५ रुपए वार्षिक राजस्व प्रदान करता था । यह ठिकाना सम्राट जहांगीर द्वारा गोकुलदास को दी गई जागीर का अंग था । (रूलिंग प्रिन्सेज, चीफ्स एंड लीडिंग पर्सोनेजेस ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर पृ० १९३) ।

११. जूनिया के ठाकुर राठौर वंशी थे । इस ठिकाने में १६ गाँव थे तथा इसकी वार्षिक आय ५०,००० रुपए थी । सरकार को यह ठिकाना ५,७२३ रुपए सालाना राजस्व देता था । जूनिया के ठाकुर केकड़ी के परंपरागत भोमिया थे अतएव उन्हें आवश्यकता पड़ने पर सवार प्रदान करने पड़ते थे (रूलिंग प्रिन्सेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग पर्सोनेजेस ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर पृ० १९३) ।

१२. मसूदा के ठिकानेदार मेड़तियावंशी राठौड़ थे, उनके पास जिले में सबसे बड़ा और सबसे धनी ठिकाना था, जिसमें २६ गाँव थे तथा वार्षिक आय १ लाख रुपए के लगभग थी, सरकार को यह ठिकाना ८,५५५ का सालियाना चुकाता था ।

१३. पीसांगन के इस्तमरारदार जोधावत वंशी राठौड़ राजपूत थे, तथा इनके ठिकाने में ११ गाँव थे जिनकी वार्षिक आय २३००० रुपए थी और ये सरकार को ४,५६३ रुपए वार्षिक चुकाते थे ।

१४. केवेंडिश का पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२९ ।

१५. केवेंडिश का पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२९ ।

१६. जे० डी० लाटूश-गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा पृ० २६ ।

१७. भारत सरकार के कार्यवाहक सचिव जेम्स थांमसन को लेफ्टि० कर्नल सदरलैंड द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट, दिनांक ७-२-१८४१ ।

१८. जे० डी० लाटूश गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा पृष्ठ २० ।

१६. सुपरिंटेंडेंट व पोलिटिकल एजेन्ट अजमेर द्वारा रेजीडेंट राजपूताना व दिल्ली को पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२८ । फाइल क्रमांक १५, (अजमेर रेकॉर्ड रा० रा० पु० मं०) ।

२०. दी रूलिंग प्रिन्सेस चीफ्स एण्ड लीडिंग पर्सोनिजेस इन राजपूताना एण्ड अजमेर (१६३१) पृ० १–१० ।

२१. एफ० विल्डर सुपरिटेंडेंट अजमेर का मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टर-लोनी को पत्र, दिनांक २४ सितम्बर, १८१८ ।

२२. आर० केवेंडिश–सुपरिटेंडेंट व पोलिटिकल एजेन्ट अजमेर का रेजीडेंट राजपूताना व दिल्ली सर एडवर्ड कोलब्रुक वार्ट को पत्र, दिनांक ११ जुलाई, १६२६ ।

२३. भारत सरकार के सचिव जेम्स थांमसन (आगरा) का कर्नल जे० सदरलैण्ड कमिश्नर अजमेर को पत्र मई, १८४१ ।

२४. आर० केवेंडिश द्वारा रेजीडेन्ट राजपूताना दिल्ली, कोलब्रुक को पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२८ (अजमेर रेकॉर्ड, रा० रा० पु० मं०) ।

२५. उपरोक्त ।

२६. उपरोक्त ।

२७. आर० केवेंडिश का सदर एडवर्ड कोलब्रुक को पत्र, दिनांक ११ जुलाई, १८२६ ।

२८. एफ० विल्डर द्वारा सर डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक २७ सितम्बर, १८१८ ।

२६. भारत सरकार के विदेश एवं राजनीतिक विभाग का पत्र, दि० ५ मई, १६०० (फाइल क्रमांक ७२, रा० रा० पु० मं०) ।

३०. एफ० विल्डर द्वारा मेजर जनरल सर ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक २७ सितम्बर, १८१८ ।

३१. सर डेविड ऑक्टरलोनी द्वारा एफ० विल्डर को पत्र, दिनांक २३ अक्टूबर, १८१८ ।

३२. २७ सितम्बर, १८१८ के एफ० विल्डर के पत्र पर सरकार एवं कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर के निर्देश । (अजमेर रेकॉर्ड, रा० रा० पु० मं०) ।

३३. एफ० विल्डर द्वारा मेजर जनरल डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, दि० ७ अक्टूबर, १८१८।

३४. एफ० विल्डर द्वारा मेजर ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक १२ अक्टूबर, १८१८।

३५. एफ० विल्डर का मेजर ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक २० अक्टूबर, १८१८।

३६. एफ० विल्डर द्वारा मेजर ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक १७ जून, १८१९।

३७. मिडलटन सुपरिंटेंडेंट अजमेर द्वारा पत्र, दिनांक ९ अगस्त, १८२६ (रा० रा० पु० मं०)।

३८. केवेंडिश सुपरिंटेंडेंट अजमेर द्वारा पत्र, दिनांक ८ मई, १८२८ (रा० रा० पु० मं०)।

३९. केवेंडिश द्वारा पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२९ (रा० रा० पु० मं०)।

४०. केवेंडिश द्वारा पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२९ "मराठा शासन के अंतिम वर्ष विक्रम संवत् १८७४ के राजस्व को आधार मानकर जमींदार को प्राप्त राजस्व को आधा भाग लेना उचित है। इस प्रक्रिया के लिए अपने शासन के पाँच या दस वर्ष पूर्व की कुल आय तथा बाद के पाँच या दस वर्षों की आय को नियमानुसार प्रति दस वर्ष में आधा भाग ग्रहण किया जाकर इस तरह का निर्धारण किया जा सकता है।"

४१. केवेंडिश द्वारा पत्र, दि० १० जुलाई, १८२९।

४२. केवेंडिश द्वारा पत्र, दि० ११ जुलाई, १८२९।

४३. सचिव भारत सरकार द्वारा कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र, दि० ९ फरवरी १८३० पत्र संख्या ७, अनुच्छेद ३-४।

४४. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद ५।

४५. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद ६।

४६. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद १४ व १५।

४७. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद १७।

४८. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद १९।

४९. कर्नल ऑल्वीस, कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा पत्र, दिनांक ३० अप्रेल, १८३५ व जून, १८३७।

५०. कर्नल सदरलैंड ए० जी० जी० राजपूताना द्वारा सचिव भारत सरकार पत्र, दि० ७ फरवरी, १८४१ ।

५१. उपरोक्त ।

५२. उपरोक्त ।

५३. उपरोक्त ।

५४. उपरोक्त ।

५५. उपरोक्त ।

५६. उपरोक्त ।

५७. उपरोक्त अनुच्छेद १४ ।

५८. उपरोक्त अनुच्छेद १५ ।

५९. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद १० व ४० ।

६०. पत्र मई, १८४१ सचिव भारत सरकार द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र मई, १८४१ ।

६१. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद ३ और ४ ।

६२. उपरोक्त पत्र अनु० ६ ।

६३. उपरोक्त पत्र अनु० ७ व ८ ।

६४. उपरोक्त पत्र अनु० ६ ।

६५. उपरोक्त पत्र अनु० ९ व १० ।

६६. उपरोक्त पत्र, अनुच्छेद ११, १२, १३, १४ व १५ ।

६७. लेफ्टिनेन्ट गवर्नर आगरा द्वारा पत्र, सचिव भारत सरकार ।

६८. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद ।

६९. उपरोक्त पत्र ९–१०–११ अनुच्छेद ।

७०. उपरोक्त अनुच्छेद १३ व १४ ।

७१. उपरोक्त पत्र अनुच्छेद १५ ।

७२. उपरोक्त अनुच्छेद १६ ।

७३. उपरोक्त अनुच्छेद १७ ।

७४. उपरोक्त अनुच्छेद १८ ।

७५. उपरोक्त अनुच्छेद १९, २०, २१, २२ ।

७६. राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स खंड १–ए अजमेर-मेरवाड़ा (१९०४) पृ० ९० व जे० डी० लाट्स गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा (१८४५)।

७७. प्रथम डिप्टी सेक्रेट्री परराष्ट्र एवं राजनीति विभाग भारत सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, संख्या ११०७–१ ए. शिमला दि० २१ अप्रेल, १९२०।

७८. पत्र क्रमांक ९२९ जी०–सन् १८८५ अजमेर–दिनांक ३० सितम्बर १८८५ टी० सी० प्रोल्डन कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा प्रथम असिस्टेंट ए० जी० जी० राजपूताना, चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को।

७९. फाइल क्रमांक ९५ पृ० ३ (रा० रा० पु० मण्डल)।

८०. असिस्टेन्ट सेक्रेट्री परराष्ट्र विभाग द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र क्रमांक २५७–१–ए दिनांक फोर्ट विलियम १७ जनवरी, १९०१।

८१. कमिश्नर अजमेर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र, दि० १३ फरवरी, १९१९।

८२. क्रमांक ५७८, भारत सरकार कार्यवाही रिपोर्ट, परराष्ट्र विभाग दिनांक ५ जून, १८६८ (फाइल क्रमांक ७१)।

८३. डिप्टी कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १६ नवम्बर, १८६८।

८४. गश्ती पत्र क्रमांक १०६ ए दिनांक १९ जनवरी सन् १८६१, सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को प्रेषित।

८५. उपरोक्त।

८६. उपरोक्त।

८७. उपरोक्त।

८८. उपरोक्त अजमेर रूल्स एण्ड रेग्यूलेशन्स पृ० ११९०।

८९. उपरोक्त।

९०. उपरोक्त।

९१. कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक १२ जून, १८७४।

९२. उपरोक्त।

९३. उपरोक्त।

९४. उपरोक्त।

९५. उपरोक्त ।

९६. उपरोक्त ।

९७. उपरोक्त ।

९८. आर० केवेंडिश सुपरिटेंडेंट अजमेर द्वारा रेजीडेन्ट राजपूताना को पत्र दि० १० जुलाई, १८२९ ।

९९. उपरोक्त ।

१००. उपरोक्त ।

१०१. डिप्टी कमिश्नर अजमेर द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र दि० ८ जुलाई, १८६२, क्रमांक २०७ ।

१०२. जे० डी० लाटूश, सेटलमेन्ट रिपोर्ट, १८७४ अनु० १२९ ।

१०३. उपरोक्त ।

१०४. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, (१९३७) ।

१०५. वाडन पोवेल ए मेन्युअल ऑफ दी लैण्ड रेवेन्यू सिस्टम एण्ड लैण्ड टेन्योर्स (१८८०) ।

१०६. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट (१९३७) ।

१०७. उपरोक्त—पृष्ठ १२ अनु० १९ ।

१०८. इन ठिकानों के पटेलों की हैसियत व अधिकार महाराष्ट्र के पटेलों जितने नहीं थे । वह केवल प्रमुख ग्रामजन होता था । एक समय उसे विवाह आदि पर नेग या लागें प्राप्त हुआ करती थीं, किन्तु वाद में इनका प्रचलन वंद हो गया था ।

१०९. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, १९३७, पृ० १२ अनु० १९ ।

११०. उपरोक्त ।

१११. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, (१९३७) पृ० १३ ।

११२. उपरोक्त पृ० १३ अनु० २१ ।

११३. उपरोक्त पृ० १७ अनु० २४ ।

११४. अजमेर भू एवं राजस्व नियामक १८७७, धारा २१ ।

११५. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, (१९३७) पृ० ३९ ।

११६. उपरोक्त पृ० २१ अनु० ३० ।

११७. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, १९३७ पृ० २२ ।

११८. उपरोक्त ।

११९. उपरोक्त ।

१२०. उपरोक्त ।

१२१. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, (१९३७) पृ० ३३ ।

१२२. उपरोक्त ।

१२३. केवेंडिश रिपोर्ट, सन् १८२९ ।

१२४. उपरोक्त ।

१२५. एच. मैकॅजी का पत्र क्रमांक ७४, दिनांक ९ फरवरी, सन् १८३० (रा० रा० पु० मं०) ।

१२६. इस्तमरारी एरिया कमेटी रिपोर्ट, (१९३७) पृ० ३५ ।

६

भौम, जागीर व माफी

भौमियां

राजपूताना की भूमि-व्यवस्था में 'भौम भोग' एक अनोखी और विशिष्ट प्रथा थी। 'भौम' का अर्थ है भूमि और इसका स्वामित्व धारण करने वाले को 'भौमिया' कहा जाता था जो सामंती सरदार तथा खालसा भूमि के किसान से बिल्कुल भिन्न था।[1] भौमिया सामंती पुलिस-व्यवस्था और स्थानीय अनियमित सैनिकों के तौर पर कुछ सेवाएं प्रदान किया करते थे। वे गाँव की फसल और मवेशियों की लुटेरों से रक्षा करने के लिए कर्तव्यबद्ध थे।[2] उनके गाँव की सीमा के अन्तर्गत जान-माल की सुरक्षा की जिम्मेदारी उनकी होती थी। उनकी सेवाएं और जिम्मेदारियां केवल उनके अपने गाँव तक ही सीमित थीं।[3] इन्हें क्षेत्र में उत्पात दबाने के लिए सूबेदार की सहायता करनी पड़ती थी, परंतु उन्हें अपनी सीमा से बाहर जाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। ये लोग अपने-अपने गाँवों की सुरक्षा एवं शांति का भार वहन करते आए थे और यदि वे अपने क्षेत्र में से चोरी गए माल की बरामदगी में असफल रहते या अपराधियों को पकड़ नहीं पाते तो उन्हें चोरी की कीमत जमा करानी होती थी। यही प्रथा सोलहवीं सदी में शेरशाह ने भी अपनाई थी। उस समय के चौधरियों और मुकद्दमों को जो प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार प्राप्त थे उनके उपलक्ष में वे भी इसी तरह की सेवाएं प्रदान करते थे।

कर्नल टॉड के अनुसार भौमिया सशस्त्र किसान होते थे। ये एक तरह के अर्ध सैनिक सामंत थे जो राज्य को लगान के उपलक्ष में सीधी सेवाएं प्रदान करते थे। आक्रमण के समय राज्य उनकी सेवाएं प्राप्त कर सकता था। इस अवसर पर राजा को उनके भोजन आदि की व्यवस्था करनी होती थी। भौम का भूभाग इतना प्रतिष्ठित होता था कि बड़े से बड़ा ठाकुर भी अपने अधीनस्थ गाँवों में इसकी प्राप्ति के लिए उत्कंठित रहा करते थे। 'भौम' ही एकमात्र ऐसा भूभाग था राज जिसका पुनर्ग्रहण नहीं कर सकता था और यह भाग सही माने में पूर्णतः वंशपरम्परागत था। यद्यपि यह भूमि भी कई व्यक्तियों में बँटती चली जाती थी तथापि इसकी अनुमति राज्य से प्राप्त करनी पड़ती थी।[४]

विल्डर ने भौमियों को चौकीदार मात्र माना था।[५] परन्तु अजमेर-मेरवाड़ा के भौमियों की तुलना बंगाल प्रेसीडेन्सी के चौकीदारों से नहीं की जानी चाहिए। अजमेर के भौमिया बंगाल के चौकीदारों से सर्वथा भिन्न थे। भौमिया गाँव का बड़ा आदमी होता था और ग्रामीण समाज उन्हें भय और आदर की नज़र से देखता था।[६] सामान्यतः वह अपनी गढ़ी में रहा करता था और गाँव में उसके रहन-सहन का स्तर अच्छा हुआ करता था। राजपूत सैनिक होने के नाते वह तलवार धारण किए रहता था और आर्थिक हालत ठीक होने की स्थिति में एक दो घोड़े भी रखा करता था। वह हल के हाथ तभी लगाया करता था, जबकि परिवार का भरण-पोषण कठिन हो जाता था।[७] उनके विवाह सम्बन्ध मेवाड़, मारवाड़ व जयपुर के ठाकुर परिवारों के साथ समान स्तर पर हुआ करते थे। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने पर भी उसके वंश और रक्त की पवित्रता उज्वल मानी जाती थी। पड़ोसी रियासतों के ठाकुरों जैसी ही उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रभाव होता था।[८]

अंग्रेज़ों के शासनकाल में अजमेर-मेरवाड़ा के भौमियों के निम्नलिखित उत्तरदायित्व थे।[९]

प्रथम—ये लोग जिन गाँवों के भौमिया होते थे, उन गाँवों में यात्रियों की संपत्ति की चोरों और डाकुओं से रक्षा करना।

द्वितीय—उस जुर्म से हुई क्षति, जिसे रोकना इनका फर्ज था—उसकी पूर्ति करना।

अजमेर में प्रचालित भौम-व्यवस्था और उससे जुड़े हुए कर्तव्यों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है:—

प्रथम, भौम वंशपरम्परागत संपत्ति होती थी। इस भूमि पर राजस्व कर माफ होता था। स्वामित्व राज्य के द्वारा प्रदान किया जाता था। इस तरह यह "माफी"

और "जागीर" से भिन्न होता था क्योंकि माफी और जागीर में राज्य अपने राजस्व संबंधी अधिकार ही उन्हें प्रदान करता था।

द्वितीय—राज्य के विरुद्ध अपराध की स्थिति में अथवा उन अपराधों में जहाँ व्यक्तिगत संपत्ति जब्त करने का प्रावधान था "भौम" को राज्य पुनर्ग्रहण कर सकता था।

तृतीय—राज्य द्वारा "भौम" के पुनर्ग्रहण कर लेने पर उसमें निहित स्वामित्व के अधिकार के साथ-साथ राजस्व से मुक्ति के अधिकार भी समाप्त हो जाते थे क्योंकि ये दोनों कभी भी पृथक् नहीं माने गए थे।

चतुर्थ—अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना या त्रुटि होने पर भौमियों पर जुर्माना थोपा जा सकता था और उस अर्थदंड की पूर्ति न होने तक राज्य उसकी भौम को जब्त कर लेता था।

यदि कोई भौमिया बिना सरकार से पूछे अपनी ज़मीन हस्तांतरित कर देता तो राज्य उसकी ज़मीन को पुनर्ग्रहण कर सकता था। राज्य को इसे किसी और को प्रदान करने का अधिकार था।

राजपूताना की अन्य रियासतों में भी भौमियों को इसी तरह के निम्नलिखित उत्तरदायित्व वहन करने होते थे।[10]

१—अपने क्षेत्र में से गुज़रने वाले यात्रियों की सुरक्षा का भार इन पर होता था।

२—अपने क्षेत्र में होने वाली डकैती के लिए वे जिम्मेदार माने जाते थे।

३—वे लोग अपनी 'भौम-भूमि' का विक्रय नहीं कर सकते थे।

४—इनकी भूमि करों से मुक्त होती थी।

५—इनसे किसी तरह की पुलिस सेवा नहीं ली जाती थी।

६—उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप अवांछनीय था।

७—भौमिया अपने परिवार में विवाह, मरण अथवा अचानक ऐसा ही कोई अवसर उपस्थित होने पर इस अतिरिक्त व्यय के वहन-हेतु एक अलग उपकर लागू कर सकता था।

सन् १८२९ में, इस जिले की भौम संपत्तियों के बारे में विस्तृत जाँच की गई थी। उसके अनुसार भौमियों पर मेरों और डाकुओं से ग्राम क्षेत्र की रक्षा करने का उत्तरदायित्व होता था। वे ग्राम सीमा में चरने वाले मवेशियों की निगरानी रखते थे और सूबेदार द्वारा तलब किए जाने पर दस या पन्द्रह दिन के लिए उसकी सेवा

में जाते थे, परन्तु इन दिनों का भोजन आदि का व्यय सूबेदार को वहन करना होता था।[11] केवल राजपूत और पठान ही भौमिया हो सकते थे। इनकी भौम संपत्ति वंशपरम्परागत होती थी, सूबेदार को भौमियों की कर्त्तव्यपरायणता में शिथिलता आने अथवा उनके लापरवाही दिखाने पर जुर्माना करने का अधिकार था। यह कहा जाता है कि चोरी गए माल की क्षति-पूर्ति का प्रावधान आरम्भिक भौम-व्यवस्था के साथ जुड़ा हुआ नहीं था परंतु बाद में मराठा शासनकाल में लागू किया गया लगता है और कालांतर में यह व्यवस्था मजबूत होती गई और बाद में इन्हें क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाने लगा। राज्य ने इसकी जिम्मेदारी भौमियों पर हस्तांतरित कर दी।[12]

अजमेर-मेरवाड़ा जिले में भूमि पाँच तरह की थी--

१--"मुंडकटी" अर्थात् पूर्वजों के युद्ध में मर जाने के कारण राजा द्वारा प्रदत्त।

२—आन्तरिक शांति अथवा जनता के जान-माल की सुरक्षा के प्रयत्नों से प्रसन्न होकर प्रदान की गई।

३—राज्य द्वारा युद्ध में शौर्य दिखाने पर प्रदान की गई "भौम"।

४—राज्य द्वारा सीमा सुरक्षा-हेतु प्रदान की गई "भौम"।

५—गाँवों में गश्त और निगरानी के लिए ग्रामजनों द्वारा प्रदत्त "भौम"।[13]

अजमेर में लगभग सभी भौम संपत्ति उपरोक्त चौथी और पाँचवीं श्रेणी की थी। जो लगभग एक दूसरे के समान थीं। केवल दो भौम संपत्तियां तीसरी श्रेणी की थीं। यहाँ की सभी 'भौम' संपत्तियां चाहे उनके मूल उद्गम का स्वरूप कैसा भी क्यों न रहा हो चोरी व डकैती का पता नहीं लगा पाने पर क्षति-पूर्ति के लिए जिम्मेदार थी।[14]

पाँचवीं श्रेणी के भौमिया, जिन्हें गाँव के लोगों ने गश्त एवं निगरानी के लिए भौम प्रदान की थी, उसका उपभोग राज्य की स्वीकृति से करता था। क्योंकि 'भौम' पर राज्य का स्वामित्व होता था न कि गाँव का राज्य इसे उस व्यक्ति को ट्रस्ट के रूप में प्रदान करता था। इस "ट्रस्ट" के साथ अगर कोई शर्त जुड़ी होती थी तब उस शर्त के भंग होने पर राज्य उस भौम को पुनर्ग्रहित कर सकता था। राज्य द्वारा सीमा क्षेत्रों की रक्षा के लिए प्रदत्त 'भौम' भी सशर्त होती थी, परन्तु इस तरह का भूभाग केवल विश्वासपात्र और प्रतिष्ठित परिवार को ही प्रदान किया जाता था। इस तरह सशर्त भोग वाली भौम का उपभोग करने वाले को उसकी शर्त

में राज्य की बिना स्वीकृति के परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होता था। इनके विक्रय या बंधक के लिए राज्य की पूर्व स्वीकृति आवश्यक थी।[१५]

अजमेर-मेरवाड़ा की अधिकांश 'भौम' संपत्तियों के बारे में प्रचालित कथन यह है कि आलमगीर और उसके पुत्र शाहआलम के समय इन लोगों को प्रत्येक गाँव में गाँव वालों की मेरों और चीतों के आक्रमण से रक्षा करने के लिए भूमि प्रदान की गई थी। मुगल शासन द्वारा इनको सभी तरह के करों से मुक्त रखा गया था।[१६] इस जिले के हस्तांतरण के समय भौमियां "भौम" और 'मापा' नामक कर वसूल करते थे। भौम शुल्क उन सभी चीजों पर लगता था जो रास्ते में से गुजरते समय रात पड़ने पर उक्त गाँव में रहती थी। मापा शुल्क गाँव में बेची जाने वाली सभी चीजों पर कृषि सामग्री को छोड़कर वस्तु के मूल्य के कुछ प्रतिशत के आधार पर ली जाने वाली राशि होती थी। विल्डर के प्रतिनिधित्व पर ये शुल्क समाप्त कर दिए गए थे। इनकी समाप्ति से इस्तमरारदारों को हुई क्षति का उन्हें मुआवजा प्रदान किया गया परन्तु यह मुआवजा उसके वास्तविक हकदार भौमिया को प्राप्त नहीं हुआ था।[१७]

मराठों ने इस क्षेत्र पर अधिकार स्थापित करने पर भौमियों से "भौमबाब" व "भौम दस्तूर" वसूल करना आरम्भ किया था।[१८] प्रति दूसरे वर्ष इस्तमरारदारों के समान इनसे भी अनिश्चित राशि भौमिया की हैसियत और फसल के आधार पर वसूल करते थे।[१९]

केवेंडिश के समय में कानूनगों द्वारा संगृहीत रिपोर्ट के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १७५२ में जोधपुर नरेश तख्तसिंह ने "भौमबाब" वसूल की थी। उन्होंने यह कर केवल एक साल ही लिया। इस आशय का कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि उन्होंने "भौमबाब" के रूप में कितनी राशि कितने "भौमियों" से वसूल की थी। १७९२ में स्थानीय मराठा अधिकारी शिवाजी नाना के समय से "भौमबाब" नियमित रूप से वसूल होता रहा। यह कर उन्हीं प्रमुख भौमियों से वसूल किया जाता था जो हैसियतदार होते थे और इस कर की राशि उनकी हैसियत के अनुसार ही कम या अधिक हुआ करती थी। इसकी वसूली के पीछे कोई सिद्धांत या निश्चित प्रक्रिया नहीं थी। शिवाजी नाना ने अपने दस वर्षों के प्रशासनकाल में केवल एक बार ही यह कर संगृहीत किया था। तदुपरांत ९ वर्षों में यह कर प्रति तीसरे साल वसूल किया जाने लगा और तांतिया सिंधिया ने इसे प्रति दूसरे साल वसूल करने की प्रथा जारी की थी। आगामी ९ वर्षो में यह कर पाँच बार वसूल किया गया था। इस तरह अंग्रेज़ों के शासनकाल के पूर्ववर्ती वर्षो में यह केवल दस वर्षों के लिए ही संगृहीत हुआ था। इस कर को प्रति दूसरे वर्ष वसूल नहीं करने का कारण मराठों द्वारा भौमियों के प्रति अपनी उदारता बतलाया गया था।[२०]

सन् १८१८ में जब यह जिला अंग्रेजों को हस्तांतरित हुआ तब भौमिया प्रति दूसरे वर्ष "भौमबाब" चुका रहे थे। हस्तांतरण के ठीक पूर्व जो राशि इस कर की मद में प्राप्त हुई थी उसे आधार मानकर विल्डर ने ८,४०८ रुपए १२ आने ६ पाई इस कर से राज्य की आय निर्धारित कर दी थी। यह राशि प्रति दूसरे वर्ष सन् १८४२ तक वसूल होती रही। सन् १८४२ में 'पटेलबाब' और 'फौजखर्च' के साथ इसे भी समाप्त कर दिया गया था।[२१] अजमेर के कमिश्नर सदरलैंड ने गवर्नर जनरल को अपनी रिपोर्ट में इसकी आलोचना करते हुए लिखा था कि फौजखर्च और पटेलबाब सहित ये मराठा उपकर इस्तमरारदारों पर भारी बोझ है और जिस प्रजा से ये वसूल किए जाते हैं उसका इस्तमरारदार व किसान की स्थिति पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है।[२२] लगभग तीन वर्षों तक सदरलैंड द्वारा उत्तरपश्चिमी सूबे और सर्वोच्च भारत सरकार के बीच एक लम्बे पत्र-व्यवहार के पश्चात् गवर्नर जनरल ने "भौमबाब" और भौम दस्तूर को पूर्णतः बिना किसी शर्त के समाप्त किया था।[२३] इस कर को समाप्त करते समय गवर्नर जनरल ने भौमियों को यह हिदायत दी थी कि सरकार ने जिस तरह इन करों को समाप्त कर उन्हें लाभान्वित किया है, उसी तरह वे भी गाँव से उक्त कर की वसूली समाप्त कर ग्रामीणों को लाभ पहुँचाए।

सन् १८५६ तक भौमिया गाँव वालों से कई तरह के उपकर वसूल करते थे। ये उपकर जिन्हें 'लाग' कहा जाता था सामाजिक जीवन के हर पहलू और प्रक्रिया पर लगते थे। भौमियां होली और दशहरे पर भेंट वसूल करते थे, अपनी गढ़ी की मरम्मत के लिए गाँव के लोगों से बेगार लेते थे तथा प्रतिवर्ष गाँव से उन्हें एक बकरा भेंट होता था और कुछ गाँवों में इसके बजाय 'भैंसा' लेने की व्यवस्था थी। गांव के बलाई को प्रतिवर्ष भौमियां के कुँए के लिए एक चरस और जूतों की जोड़ी देनी होती थी। प्रत्येक खेत से वे अन्न के ७० पूले लेते थे तथा कुछ गाँवों से केवल प्रति खेत मुट्ठी भर अन्न ही वसूल किया जाता था। भौमिया के जेष्ठपुत्र के विवाह पर ग्रामीणों को उसे भेंट देनी होती थी। प्रत्येक गाँव वाले को अपने घर में भी शादी के अवसर पर भौमिया के यहाँ चँवरी और 'कांसा' भेजना पड़ता था। कर्नल डिक्सन ने यह सुझाव दिया था कि 'भौमबाब' के समाप्त हो जाने के कारण इससे संबंधित सभी 'लागें' भौमियों द्वारा ग्रामवासियों से वसूल करना भी समाप्त हो जानी चाहिए तथा विवाह के अवसर पर काँसा भेजना गाँववालों की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए। सरकार ने कर्नल डिक्सन से पूर्ण सहमति प्रकट करते हुए सन् १८५४ में उन्हें अपने प्रस्तावों को व्यावहारिक रूप देने का आदेश दिया था।[२४]

सन् १८३० में सरकार ने भौम ज़मीन का समय-समय पर बंदोबस्त का अधिकार रखा था।[२५] परंतु अजमेर के चीफ कमिश्नर सदरलैंड का यह मत था कि जिस तरह इस्तमरारदारों पर सरकार ने बंदोवस्त के अधिकार का परित्याग किया

था उसी आधार पर सरकार को 'भौम' पर भी इस अधिकार को भी त्याग देना चाहिए। वह इस मत के थे कि दोनों भूभाग यद्यपि पृथक् हैं, तथापि उनका आधार एक ही है व अंतर केवल इतना ही है कि तालुकेदार सेवा के उपलक्ष में शुल्क प्रदान करते रहे हैं, जबकि भौमियों को यह 'माफ़' किया जाता रहा है।[२६] सदरलैंड की सिफारिश पर सरकार ने भौम पर पुनः कराधान का अधिकार सन् १८७४ में त्याग दिया था।[२७]

उस समय जिले में कुल १११ भौम थे[२८] और वे निम्नांकित प्रकार से विभाजित थे:—

भौम-भूसंपत्तियों की संख्या		गाँवों की संख्या
राठौड़	८२	७८
गौड़	६	८
कछवाहा	६	५
सिसोदिया	१	१
पठान	६	६
सय्यद	१	१
मेर	१	१ कोथाज
चीता	१	१ सोमुलपुर
मुगल	१	० बीर
	१११	१०४

इनमें से अंतिम तीन 'भौम' नहीं मानी गई थीं। वास्तविक भौम भूसंपत्तियां १०८ थीं। भौम संपत्तियों के उद्‌गम का पता लगाना कठिन है। यद्यपि इनमें से आधी दिल्ली के सम्राटों के द्वारा प्रदान की गई थी तथा आधे से अधिक भौम राठौड़ों के पास थी जो अपने आपको पड़ोसी रियासतों के राजा-महाराजाओं के रिश्तेदार मानते थे। केवेंडिश के समय में, केवल ६ गाँवों के भौमियां ही सनदें प्रस्तुत कर पाए थे, शेप का कहना था कि मराठों के कुशासन और अराजकता के काल में उनकी सनदें या तो नष्ट हो गईं थीं अथवा खो गई थीं। ख्वाजापुर की सनद जफरखां को सन् १७४० में गोविन्दराव ने प्रदान की थी जिसके अनुसार जफरखां पर अजमेर से राजोरिया तक की सड़क की सुरक्षा का भार था। इसी प्रकार दौलतराव व सिंधिया द्वारा अर्जुनपुरा के भौम की सनद ठाकुर धनसिंह को प्रदान की गई थी।[२६]

वड़गांव के लिए महाराजा सिंधिया की सनद थी, जिसमें यह घोषित किया गया था कि यहां की जमींदारी पुराने ज़माने से ही जफरखां के यहां चली आ रही है और अमलों को निर्देश दिए गए थे कि उसके वंशवरों को परम्परागत भौम के सभी हकों और हकूकों का उपभोग करने दिया जाए।[30]

केकड़ी के भौमिया को दिल्ली के मुगल सम्राट् फर्रुखसय्यद ने अपने शासन के चौथे वर्ष में सनद प्रदान की थी जिसमें परगना केकड़ी के सभी कानूनगों और चौधरियों को आगाह किया गया था कि १००० बीघा ज़मीन, एक बाग और एक रहने का मकान राजसिंह राठौड़ को प्रदान किए गए थे।[31]

नांद भौम के लिए महाराजा अभयसिंह द्वारा, हिन्दूसिंह, हिम्मतसिंह एवं बख्तसिंह के नाम सनद थी जिसमें लिखा था कि उक्त व्यक्तियों ने गुजरात में सर-बुलंदखां के साथ लड़ाई में बहादुरी दिखाई और कुँवर दुल्लेसिंह उस युद्ध में मारा गया था अतएव १३३१ बीघा ज़मीन प्रदान की जाती है।[32] केवल उपर्युक्त दस्तावेज ही भौमियां अपने प्रमाण में प्रस्तुत कर सके थे। इनमें भी अर्जुनपुरा, ख्वाजापुरा और बड़गांव की सनदों से यह कहीं भी स्पष्ट नहीं होता है कि इनकी मूल शर्तें क्या थीं। नांद के भौमियों द्वारा प्रस्तुत सनद वास्तविक थी, परन्तु इसमें भी यह नहीं लिखा था कि यह भेंट सशर्त है और यह उल्लेख भी नहीं था कि यह भौम सेवा के उपलक्ष में है। केकड़ी की सनद भी एक सामान्य राजस्व मुक्त जागीर के सामान्य पट्टा जैसी ही थी। यदि "भौम" अन्य राजस्व मुक्त जागीरों की अपेक्षा स्थाई स्वामित्व एवं प्रतिष्ठा सूचक नहीं होती तो जूनिया जैसे ठिकाने का शक्तिशाली ठाकुर अपने आपको केकड़ी का भौमिया कहलाने में कभी गौरव अनुभव नहीं करता। जूनिया के ठाकुर ने केवेंडिश के समक्ष यह कहा था कि सम्पूर्ण केकड़ी का कस्बा मुगल सम्राट औरंगजेब ने किशनसिंह की शानदार सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें जागीर में प्रदान किया था। उसके ठिकाने में चौकीदारों की व्यवस्था थी और वह किसी भी तरह की आर्थिक क्षति के लिए अपने को जिम्मेदार नहीं मानते थे।[33]

इन १०८ भौम में प्रत्येक भौम के अन्तर्गत औसत भूमि ४६४ बीघा थी, परन्तु इन भौम में २१०२ हिस्से थे, इस तरह प्रत्येक भौम में औसतन बीस भागीदार थे जिनमें प्रत्येक के हिस्से में औसतन २६ बीघा १४ बिस्वा भूमि आती थी। पुराने बंदोबस्त की शर्तों के अन्तर्गत इनका कराधान किया जा चुका था और इनमें से प्रत्येक को १७ रुपए ८ आने राजा को देना पड़ता था।[34]

सन् १८४३ के पूर्व प्रायः सभी भौमियां अपनी भौम को वंश-परम्परागत मानकर बंधक भी रख देते थे जबकि उन्हें यह अधिकार प्राप्त नहीं था। वे लापरवाह और आलसी हो गए थे तथा अपने गांवों की रक्षा करने योग्य भी नहीं रह गए थे। ये लोग न तो घोड़े रखने का खर्च ही वहन करने की स्थिति में थे और न चौकीदार

ही रख सकते थे। जब कभी इनके क्षेत्र में चोरी या डकैती पड़ने पर इन लोगों की क्षतिपूर्ति के लिए कहा जाता तो ये अपनी भौम के बंधक होने का बहाना कर उसे टाल जाते थे। इन भौमियों के पास सवारी के साधन और शस्त्र नहीं होने के कारण ये लोग अपने क्षेत्र की चौकसी व निगरानी करने में असमर्थ थे।[३५] जब एक बार भूमि को बंधक रख दिया जाता तो महाजन अपने कर्ज की डोरी को इतना कस देता था कि वह भूमि कभी छूट कर इन्हें वापिस प्राप्त नहीं हो पाती थी।

इसलिए सन् १८४३ में सरकार ने यह आदेश जारी किए कि कोई भी भौमियां अपनी भूसंपत्ति को न तो विक्रय ही कर सकता था और न उसे बंधक ही रख सकता था। इस आदेश का पालन नहीं करने वालों के लिए दंड का प्रावधान रखा गया था। महाजनों को यह आदेश दिया गया था कि वे भौम संपत्ति को बंधक नहीं रख सकते हैं। उन्हें यह निर्देश दिए गए थे कि वे अपने ऋण की वसूली अन्य साधनों द्वारा अथवा भौमिया की दूसरी संपत्ति से करें। सरकार ने यह भी घोषणा कर दी थी कि यदि किसी ने भौम संपत्ति को बंधक रखा, अथवा किसी ने उस संपत्ति को बंधक के रूप में स्वीकार किया है तो बंधक भौम संपत्ति का दावा कोई भी न्यायालय स्वीकार नहीं करेगा तथा बंधक स्वीकार करने वाला इस भौम के उपयोग से वंचित रहेगा। सरकार ने यह नियम बना दिया था कि यदि किसी गाँव की सीमा में कोई अपराध घटित होगा तो उसकी क्षतिपूर्ति भौम से होगी और इस बारे में किसी भी तरह का बहाना स्वीकार नहीं किया जाएगा। सभी भौमियों को व भौम संपत्ति को बंधक के रूप में स्वीकार करने वालों को उक्त आदेश से अवगत करा दिया गया था।[३६] इस आदेश के बावजूद भी भौमियां अपनी ज़मीनें बंधक रखते रहे, फलस्वरूप सन् १८४९ में कर्नल डिक्सन को इस प्रक्रिया के विरुद्ध कड़ी आज्ञा जारी करनी पड़ी। सरकार ने इनको दिए गए शर्तनामें में यह लिख दिया था कि वे अपनी भौम का विक्रय नहीं करेंगे और न उसे बंधक ही रख सकेंगे।[३७]

सरकार को विक्रय और बंधक पर प्रतिबंध इसलिए लागू करना पड़ा क्योंकि, यदि सरकार भौमियों के अपनी भौम को अन्य पक्ष के हाथों विक्रय और बंधक के अधिकार स्वीकार कर लेती तो अन्य पक्ष को प्रदेश के सामान्य नियमों के अन्तर्गत इन भौमों से जुड़े अधिकार तथा उत्तरदायित्व भी वहन करने पड़ते जो कि मूल स्वामी को प्राप्त थे। सरकार की यह धारणा थी कि मालदार सूदखोर महाजन भौमियों की तरह कुशल और चुस्त चौकीदारी एवं निगरानी की व्यवस्था नहीं कर सकते थे।

राजपूताने की कुछ रियासतों में भौमियों को अपनी भौम-संपत्ति केवल दो अवसरों पर ही बंधक रखने की अनुमति थी। वे पिता के अन्तिम संस्कार के व्यय को वहन करने के लिए तथा अपनी अथवा अपने पुत्र की शादी व्यय के लिए बंधक रख

सकते थे। परन्तु उसके लिए बंधक रखते समय अपने निर्वाह योग्य तथा निगरानी एवं चौकसी के कार्य में बाधा न पड़े, इस लिए उचित भूमि अपने पास रखना अनिवार्य था। अजमेर-मेरवाड़ा के कार्यवाहक कमिश्नर कर्नल ब्रुक्स ने सभी रियासतों के वकीलों के साथ पूरे दरबार में इस प्रश्न की चर्चा की थी जिसमें उन्होंने यह राय प्रकट की थी कि भौम राज्य की स्वीकृति से ही बंधक रखी जा सकती थी, क्योंकि जिन कार्यों के लिए भौम दी गई थी उनके पालन करवाने का उत्तरदायित्व राज्य पर था।[३८] कर्नल डिक्सन ने इस भूसंपत्ति की व्याख्या करते हुए कहा था कि भौम "चौकसी एवं निगरानी के लिए सरकार द्वारा प्रदत्त भूमि है जिस पर भौमियों को स्वामित्व का अधिकार नहीं है।"[३९] कर्नल डिक्सन द्वारा बंधक के विरुद्ध आज्ञा जारी होने के बाद भी भौम के विक्रय एवं बंधक के उदाहरण सरकार के समक्ष आते रहे। प्रशासन को इन भौमियों के विरुद्ध कानूनी कदम उठाने में कठिनाई अनुभव होती थी क्योंकि सरकार को पहले यह निर्धारित करना था कि भौमिया अपनी भौम-संपत्ति में स्वामित्व का अधिकार रखते हैं या नहीं और क्या भौम जिस सेवा के उपलक्ष में इन्हें प्रदान की गई थी उसकी पूर्ति के अभाव में अन्य भौम की तरह उस पर सरकार राजस्व एवं कराधान लगा सकती थी या नहीं?[४०] अजमेर के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर के अनुसार भौम "पूर्ण स्वामित्व के अधिकारों सहित राजस्व एवं कर रहित भूमि थी।"[४१] अतएव उन्होंने इस प्रश्न को स्पष्टीकरण के लिए भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया था। भौम पर भौमियों के मालिकाना हक के बारे में कर्नल डिक्सन के बाद के काल में भी भ्रम बना हुआ था।

ब्रुक्स के अनुसार विभिन्न तरह के 'भौम' प्रचलित थे अतएव उनके साथ व्यवहार में भी भिन्नता आवश्यक थी। उन्होंने इस प्रश्न को केवल राजस्व की समस्या न मान कर सामान्य नीति का प्रश्न माना था। उन्होंने सरकार को यह सुझाव दिया था कि प्रथम चार श्रेणी के भौमियों के साथ व्यवहार करते समय पांचवीं श्रेणी के भौमिया को पृथक् रखना जरूरी है। उनकी मान्यता के अनुसार प्रथम चार श्रेणी वाले भौमियों में से कतिपय ऊँचे घरानों के थे और उनके परिवार का जयपुर और मेवाड़ के ठाकुर परिवारों के साथ विवाह संबंध एवं बराबरी का रिश्ता कायम था। अतएव उन्हें अपनी भूमि से वंचित करना उचित नहीं होगा, उन्हें अपनी भौम के विक्रय एवं बंधक के अधिकार दिए जाने चाहिएं। जहाँ तक पांचवीं श्रेणी के भौमियों का प्रश्न था जिन्हें भौम चौकसी एवं निगरानी सेवा के लिए दी गई थी, उनका मत था कि इस भौम को सशर्त मानी जाए और इस तरह की भौम यदि बेची या बंधक रखी जाती है तो नए बंदोबस्त के अन्तर्गत उन पर कराधान लागू किया जाना चाहिए।[४२]

जे. सी. ब्रुक्स के अनुसार चौकसी एवं निगरानी की सेवा के निमित्त स्वीकृत

सभी "भौम" से कर वसूल किया जाना चाहिए क्योंकि पहले भी इनसे कर लेना औचित्यपूर्ण माना गया था। उन्होंने इन 'भौम' पर 'भौमबाब' और 'भौम दस्तूर' फिर से लागू करने का सुझाव दिया था क्योंकि, राजपूताने की अन्य रियासतों में यह 'भौम' कभी भी सर्वथा कर मुक्त नहीं रही थी और भौमियां पहले सदा 'भौमबाब' और 'भौम दस्तूर' चुकाते रहे थे। अंग्रेजों के शासनकाल में ही सन् १८४२ तक इनसे 'भौमबाब' और 'भौम दस्तूर' वसूल किया जाता था। सन् १८४२ में सरकार ने फौजी खर्च के साथ-साथ इसे भी समाप्त कर दिया था। ब्रुक्स के अनुसार फौजखर्च नियमित राजस्व वसूली के अतिरिक्त मराठों द्वारा थोपी गई 'लाग' थी जबकि 'भौमबाब' इस तरह की कोई अनियमित प्रथा नहीं थी।[४३]

इन सभी बाधाओं और भ्रम की स्थिति को समाप्त करने के लिए गवर्नर जनरल की कौंसिल ने भौम संपत्तियों के बारे में सन् १८७१ में निम्न सिद्धांत स्वीकार किए:—

१. किसी भी तरह की भौम जो प्राप्तकर्त्ता या उसके परिवार के अधिकार में हो उस पर कराधान नहीं किया जाए।

२. सभी भौम-संपत्ति जो स्थाई रूप से हस्तांतरित की जा चुकी है अथवा भविष्य में हस्तांतरित हो उस पर कराधान लागू किया जाए।

३. सभी सशर्त भौम जो चौथी और पाँचवी श्रेणी के अन्तर्गत आती हो यदि अस्थायी रूप से हस्तांतरित की जा चुकी है अथवा भविष्य में की जाए तथा उससे सम्बद्ध शर्तों की पूर्ति होने की संभावनाएं नहीं हों तो इन पर कराधान लागू किया जाए।

४. सशर्त भौम, स्वामी के जीवन पर्यन्त के लिए ही बंधक रखी जा सकती है। गवर्नर जनरल 'भौमबाब' को पुनः लागू करने के पक्ष में तो नहीं थे, परंतु वे यह अवश्य चाहते थे कि इन 'भौम' के साथ सेवा संबंधी जो शर्त जुड़ी हुई है वह इनसे भौम संपत्तियों के अनुपात में ली जाय। गवर्नर जनरल की यह राय थी कि यदि इनका उपयोग चोरियों की रोकथाम में नहीं किया जा सके तो कम से कम उन्हें क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी बनाया जाए। बंधक और विक्रय प्रतिबंधित हो और इनके उल्लंघन पर 'दण्डस्वरूप' 'भौम' पर कराधान लागू किया जाना चाहिए तथा अबतक की हस्तांतरित सभी 'भौम' पर पूरा कराधान लागू होना चाहिए।[४४]

सन् १८६९ के एक्ट को इस जिले में लागू कर देने पर डिप्टी कमिश्नर ने सभी भौमियों को अपना नाम चौकीदारों की सूची में दर्ज करवाने के आदेश प्रदान किए थे। जिन्होंने व्यक्तिगत चौकीदारी करने में असमर्थता प्रकट की थी उन्हें अपने

क्षेत्र में प्रति २० बीघा सिंचित भूमि पर एक चौकीदार के अनुपात में चौकीदार रखने व ६० रु० प्रति चौकीदार प्रतिवर्ष उनकी तनखा चुकाने के लिए बाध्य किया गया। सभी भौमियों ने इस आधार पर कि इस तरह की व्यवस्था भौम पट्टेदारी में नहीं है, इस आदेश के विरुद्ध प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किए। यद्यपि इन भौमियों के निवेदन पर कोई निर्णय नहीं हुआ तथापि डिप्टी कमिश्नर का आदेश भी क्रियान्वित नहीं किया गया।[४५]

भौमियों में उत्तराधिकार की प्रथा स्पष्ट थी और व्यवस्थित रूप से चली आ रही थी। १६ भौम संपत्तियों में ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार माना जाता था, १० भौम में बड़े लड़के को अपने छोटों के हिस्सों से कुछ बड़ा भाग मिला करता था। शेष भौम सामान्य उत्तराधिकार नियमों के अनुसार बँटा करती थी।[४६]

व्यवस्थित चौकीदार-प्रथा स्थापित होने से पूर्व भौमियां चौकसी एवं निगरानी का कार्य किया करते थे। उनके हलके में चोरी और डकैती की घटनाओं पर उनका यह फर्ज होता था कि वे अधिकारियों को सूचना प्रदान करें। परन्तु वे ऐसा कभी नहीं करते थे क्योंकि उन्हें क्षतिपूर्ति का डर रहता था। इतना ही नहीं जब पुलिस अधिकारी घटना की जांच पड़ताल के लिए गांव में पहुँचते तो भौमियां उनकी कोई मदद नहीं करते थे।[४७] पुलिस जब कभी घटना की जाँच के लिए गाँव में पहुँचते तो भौमियां आपस में ही इस बात को लेकर विवाद प्रारम्भ कर देते थे कि उस दिन किसकी चौकीदारी थी।[४८]

भौमियों की नियुक्ति उस काल में हुई थी जब सरकार की अपनी व्यवस्थित पुलिस नहीं थी, अतएव उस समय कदाचित् यही व्यवस्था उत्तम रही होगी कि कुछ लोगों को भूमि प्रदान करके उसके बदले में यात्रियों और ग्रामीणों की जान माल की सुरक्षा व्यवस्था इनके हाथों सौंप दी जाए। परन्तु जब सरकार ने अपनी नियमित पुलिस व्यवस्था गठित कर ली तब भौमियों का उपयोग समाप्त हो गया था और भौम व्यवस्था की आवश्यकता और उपयोगिता उस अराजकता के युग के समाप्त होने के साथ ही नष्ट हो गई थी। भौम में हिस्सा पाने वाले की औसत आय १७ रुपए के लगभग थी, अतएव उसकी संपत्ति से क्षतिपूर्ति की आशा निरर्थक थी।[४९] उनकी सेवाओं का समुचित उपयोग कर पाना और इनसे पहले जैसी सेवाएं प्राप्त करना भी असंभव था। समय इतनी तेजी से बदल गया था और पुलिस के कर्तव्यों को इतना सुस्पष्ट एवं नियमित कर दिया गया था कि सरकार द्वारा इसका "पुलिस-व्यवस्था" के लिए उपयोग करना संभव नहीं रहा था।

अब सरकार के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हो गई थी कि भौमियों का कैसे उपयोग किया जाए। इस समस्या पर विचार करने के लिए सरकार ने अजमेर के डिप्टी कमिश्नर मेजर रिपटन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी।[५०] यह

समिति इस निर्णय पर पहुँची कि भौमियां जिस प्रकार की सेवाएं पहले प्रदान किया करते थे, अब उनकी आवश्यकता नहीं रह गई है अतएव इस दिशा में उन्होंने निम्न सुझाव प्रस्तुत किए:—

१. भौमियों द्वारा गाँवों की सुरक्षा का कार्य तथा उनके द्वारा चोरी और डकैती की क्षतिपूर्ति की जिम्मेदारी समाप्त कर दी जाए।

२. गाँवों में दंगों की स्थिति शांत करने तथा चोरों और डाकुओं का पीछा करने में उनका उपयोग किया जाना चाहिए।

३. प्रत्येक भौमिये को सम्राट के जन्म दिवस पर डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में उपस्थित होकर नज़राना भेंट करना होगा।

४. नज़राना की राशि पुराने 'भौमबाब' कर की राशि ४,२०० रुपए वार्षिक के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए और यह भोग की सभी जोतों में उचित रूप से मौजूदा पैमाइश के आधार पर विभाजित की जानी चाहिए।

५. भौम की ज़मीन को ऋण की अदायगी स्वरूप कुर्क नहीं किया जाए और न इस भूमि को किसी को बेचा या बंधक रखा जाए। यदि इस आदेश का उल्लंघन करे तब इस तरह की बंधक या बेची गई भूमि पर पूरी दरों से राजस्व वसूल किया जाए। परंतु यह नियम भौमियों के आपसी हस्तांतरण पर लागू नहीं था।

६. उपर्युक्त शर्तों का उल्लेख करते हुए प्रत्येक भौमिये को सनदें प्रदान की जाएं।[५१]

भौम समिति ने 'भौम' के पुनर्ग्रहण का सुझाव इसलिए स्वीकार नहीं किया क्योंकि ऐसा कदम राजपूताने में कहीं भी प्रचलित नहीं था और इससे व्यापक असंतोष भड़कने की भी आशंका थी। बेदखल हुआ भौमिया लूटपाट और डकैती का मार्ग ग्रहण कर सकता था और वह लोगों की सहानुभूति और सहयोग भी प्राप्त करने में समर्थ हो सकता था। अतीत में किसी भी भौमिये को अपने कर्तव्य की अवहेलना करने के अपराध में कभी भी बेदखल नहीं किया गया था। इस संदर्भ में दंड केवल जुर्माने अथवा चोरी गई सम्पत्ति की क्षतिपूर्ति तक ही सीमित रहता था।[५२]

सरकार की नीति पुरानी भूभाग-व्यवस्था और प्रथाओं के साथ समयानुकूल परिस्थितियों के अंतर्गत सांमजस्य स्थापित करने की थी। अंग्रेज़ सरकार यह नहीं चाहती थी कि पुरानी प्रथा को समाप्त कर उसके स्थान पर नई व्यवस्था जो पुरानी व्यवस्था के मुकाबले भले ही अच्छी हो, स्थापित की जाए क्योंकि नई व्यवस्था

को एकाएक ग्रहण कर लेना भी संभव नहीं था ।[४३]

सरकार ने सन् १८७४ में भोम समिति की रिपोर्ट में सुझाए गए प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया था ।[४४] इसी वर्ष भोमियों को चौकीदारी और निगरानी की सेवाओं से तथा हर्जाने के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति वाले प्रावधान से पूर्णतः मुक्त कर दिया गया था ।[४५] इन लोगों को वंशानुगत जागीरदार और माफीदारों की श्रेणी में घोषित किया गया और उनकी जोतों को लगान मुक्त रखा गया ।[४६] सन् १८७५ में सरकार ने भोमियों को सनदें प्रदान कीं जिनमें उनके भावी भू-भाग की शर्तें निहित थीं । उसके बाद उनमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया गया । अंग्रेज सरकार ने भोमियों को उनकी अधिकांशतः पुरानी जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया था परन्तु उनके विशेषाधिकार कायम रहने दिए थे ।

जागीर:—

जागीर भूसंपत्तियां अजमेर जिले में एक दूसरी ही तरह की कर रहित जोतें थीं । इनको राजपूताने की रियासतों में प्रचलित जागीरदारी व्यवस्था के अनुरूप नहीं समझना चाहिए । वे अधिकांशतः अंग्रेजों से शासित प्रदेशों के धार्मिक एवं पुण्यार्थ के कामों के लिए दान अथवा भेंट के तौर पर प्रदत्त भूमि थी । जागीर में प्राप्त सम्पूर्ण गांव या गांव के कुछ भाग थे । प्रारम्भ में जागीरदार केवल भूराजस्व का अधिकारी होता था, परन्तु कालांतर में उसके हितों में व्यापक विस्तार हो गया था ।[४७]

सन् १८१८ में जिले के हस्तांतरण के समय ऐसे ६४ गांव थे । इनमें से पांच गांव—गुरजकुंड, पाल नांदला, भूड़ी, नागपुरा और लालपुरा विल्डर के कार्यकाल में सरकार के आदेश से पुनर्ग्रहित कर लिए गए थे ।[४८] केवेंडिश के कार्यकाल में ऐसे ५९ जागीर गांव थे । सन् १८३० में नवाब हाकिमखान के निधन पर इनायती गांव तथा सन् १८३६ में दीवान मेंहदी अली गोरी के निधन पर अदारसा सरकार ने अपने अधिकार में कर लिए थे । गोलाना गांव पुष्कर स्थित ब्रह्माजी के मन्दिर की जागीर थी और नंदरामपुरा तथा हरमाड़ा आपाजी सिंधिया के समाधि-स्थल की जागीरें थीं । १२ दिसम्बर, १८६० में अंग्रेज सरकार और सिंधिया के मध्य हुई संधि के अनुसार सिंधिया ने अपनी अजमेर स्थित जागीरें भी अंग्रेजों को हस्तांतरित कर दी थीं । ये पांचों गांव स्थाई रूप से अजमेर के खालसा भूमि में सम्मिलित कर लिए गए थे तथा मंदिर व छतरी के लिए इन गांवों से राजस्व बंद हो गया था । इस प्रकार कुल ५२ जागीरें शेष रहीं, जिनमें ४९ पूरे जागीर गांव और तीन में कुछ भाग जागीरों का था व कुछ खालसा का था । बाद में राजगढ़ व नीमखेड़ी के गांव भी जागीरों में स्वीकार कर लिए जाने पर जागीरों की कुल संख्या ५४ हो गई थीं । इन जागीरों में दो गांव सेवू और अकरी में आधी शामिल

आमदनी इन गाँवों के दोनों जागीरदारों को दी जाती थी और आधी सरकार को प्राप्त होती थी।[५९] नांदला गाँव भी स्पष्टतः दो भागों में विभाजित था। इस तरह जागीर गाँवों की वास्तविक संख्या साढ़े इक्यावन अथवा बावन (५२) थी।[६०]

जागीर गाँव निम्न तीन श्रेणी में विभक्त थेः—

१. संस्थानों की भेंट गाँव अथवा संस्थान के संबंध कार्यवाहकों की भेंट।

२. व्यक्तिगत प्रदत्त ग्राम।

३. निगमों को प्रदत्त गाँव। इनमें किसी के नाम नहीं दिए गए थे। इसके राजस्व का वे सभी लोग उपभोग करते थे जो उसकी सीमाओं में आते थे।[६१]

प्रथम श्रेणी के अंतर्गत निम्न संस्थान, उनके नाम के समक्ष उल्लिखित जागीरों का उपभोग करते थेः—

१. दरगाह ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्तीः—

१७ गाँव परवतपुरा, चाँदसेन, ख्वाजापुरा, केर आंवा मेसाना, ख्वाजपुरा, भैरवार, कुर्डी, पीचोलियां, तिलोरा, कणिया, बुधवारा, कदमपुरा, किशनपुरा, केकरान, दांतरा।

२. दरगाह मीराँ साहिबः—

३ गाँव-डोरिया, सोमलपुरा, करिया।

३. चिल्लापीर दस्तगीरः—

१ गाँव माखपुरा।

४. नाथद्वारा मंदिरः—

१ गाँव-भवानीखेड़ा।

५. छतरी श्रीजीरावः—

२ गाँव-लाली खेड़ा और भगनपुरा।

६. दुधारी पुण्यार्थ ट्रस्टः—

१ गाँव-नालाशिवरी।

जागीर कमिश्नर ने द्वितीय श्रेणी की जागीरों में दो तरह के जागीरदारों को मान्यता प्रदान की थी। एक तो व्यक्तिगत जागीरें जिनमें ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी के रूप में जागीर का स्वामित्व ग्रहण हुआ करता था और इनके अधिकारों में आधे गाँव से कम भूसंपत्ति नहीं रहती थी। दूसरी वे जागीरें जो कि आधे गाँव से भी कम थी।[६२]

इन जागीरदारों में भूमि सभी उत्तराधिकारियों में विभाजित हुआ करती थी। वे आपस में इनको विक्रय व बंधक से हस्तांतरित कर सकते थे। परन्तु बाहर के व्यक्तियों को हस्तांतरण पर प्रतिबंध था। इस श्रेणी के अन्तर्गत घानेरी, आणेरा, मोराजां (आवा), नांदला, हाथी खेड़ा (आवा) एवं दीयारा के गाँव आते थे।

तृतीय श्रेणी की जागीरें व्यक्तिगत न होकर समुदायगत थीं। इस श्रेणी में पाँच गाँव आते थे। दरगाह ख्वाजा साहब के खादिम के अधिकार में वीर, घेगर एवं वनुजी के गाँव थे। पुष्कर की बड़ी बस्ती के ब्राह्मण पुष्कर के जागीरदार थे। पुष्कर की छोटी बस्ती के ब्राह्मणों को नांदलिया की जागीर प्राप्त थी।

सन् १८७३ में जागीरदारों और किसानों के आपसी सम्बन्ध भी न्यायालय द्वारा स्पष्ट कर दिए गए थे।[६३] वे सभी किसान जिनके कब्जे में तालाब, जलाशयों और कुँओं से सिंचित भूमि थी जिसके सिंचाई-स्रोत जागीरदारों द्वारा प्रदत्त सिद्ध नहीं हुए थे उक्त जोतों के स्वामी या बिस्वेदार स्वीकार कर लिए गए थे। जागीरदार उस सिंचित भूमि के स्वामी माने गए जिनके सिंचाई के स्रोतों का निर्माण उनके द्वारा किया गया हो।

इस्तमरारदार की तरह जागीरदार को अपनी भूसंपत्ति के हस्तांतरण का पूर्ण अधिकार नहीं था। वह संपूर्ण संपत्ति अथवा उसका अंश किसी भी बाहरी व्यक्ति को न तो बेच ही सकता था और न भेंटस्वरूप प्रदान कर सकता था। परन्तु जागीरदार अपने जीवन पर्यन्त के लिए अपनी जमीन को पट्टे पर उठा सकता था व बंधक के रूप में रख सकता था। वह उन किसानों को मालिकाना या बिस्वेदारी का हक प्रदान कर सकता था जो असिंचित और बरानी भूमि को कुँए आदि खोदकर कृषि के लिए विकसित करते थे। जागीर भूमि के बिस्वेदार को अपनी जोतों को जागीरदार की पूर्व स्वीकृति के बिना हस्तांतरण या विक्रय करने का अधिकार था। अतएव भूमि विकास ऋण कानून के अन्तर्गत उन्हें भी जागीरदारों की तरह अग्रिम राशि समुचित जमानत प्रस्तुत करने पर प्रदान की जा सकती थी।[६४]

जागीरों के संबंध में यह नियम था कि इन जागीरों में कोई भी भागीदार अपना अंश भेंट अथवा बंधक के रूप में किसी भी बाहरी व्यक्ति को अपने जीवनकाल से अधिक समय के लिए हस्तांतरण कर सकता था। किसी बाहर के व्यक्ति को जागीर हस्तांतरित करने वाले स्वामी की मृत्यु के पश्चात् वह सरकार द्वारा पुनर्ग्रहीत की जा सकती थी और उस पर राजस्व कराधान लागू किया जा सकता था।[६५]

जागीर गाँवों में जागीरदार अपना राजस्व फसल के रूप में वसूल करता था, केवल कपास और मक्का की फसलें ऐसी थीं, जिन पर भुगतान नगदी में लिया जाता

था। यह राशि 'बीघोड़ी' या 'मपती' कहलाती थी। बीघोड़ी और मपती वाले क्षेत्र को छोड़कर जागीर भूमि में कूंता की प्रथा थी और जागीरदार का हिस्सा भूमि की किस्मों अथवा आपसी समझौते से निर्धारित हुआ करता था। यह कराधान दो तरह का होता था जिसे स्थानीय बोली में कूंता और लाटा कहा जाता था। कूंता का अर्थ फसल की कटाई के समय निर्धारित कराधान होता था। फसल में से भूसा व अन्न को पृथक् करके उसे तोल कर अंश निर्धारण की क्रिया को 'लाटा' कहा जाता था। लाटा द्वारा जागीरदार का हिस्सा पृथक् निकाल कर उसे दे दिया जाता था।[६६]

कुँओं और नालियों के निर्माण के लिए विशेष एवं निश्चित सिद्धांत नहीं थे। जब कोई किसान कुँआ अथवा नाली का निर्माण करना चाहता तो उसे जागीरदार आपसी समझौते द्वारा निर्धारित नज़राना राशि लेकर पट्टा प्रदान किया करता था। जब कोई किसान कुँआ या नाड़ी खुदवाता था तब उसकी भूमि पर राजस्व की दरें कुछ समय के लिए घटा दी जाती थीं और जब नाड़ी या कुँआ तैयार हो जाता तब किसान अपनी जोत का स्वामी मान लिया जाता था। इन जागीर-गाँवों में फसल पूर्णतः वर्षा पर निर्भर थी।

माफीदार

'माफी' की भूमि प्राप्त व्यक्ति केवल राजस्व प्राप्ति के हकदार होते थे। सरकार उन्हें तकावी उसी स्थिति में देती थी जबकि वे विस्वेदार होते थे। माफीदार को भूमि-हस्तांतरण के अधिकार प्राप्त नहीं थे। माफी के हकों को हस्तांतरित करने पर उसकी जोत पुनर्ग्रहीत की जा सकती थी।[६७]

'भौम' और 'जागीर' को अंग्रेज़ों ने सामान्यतः उन्हें पुरानी प्रथा के अनुकूल ही बनाए रखा। वह इनमें किसी भी तरह के परिवर्तन के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इससे इन लोगों में संदेह या असंतोष पैदा हो सकता था। अजमेर जिले की 'जागीर' व 'माफी' में केवल इतना ही अन्तर था कि जागीर का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण गाँव या गाँव के अंश से लिया जाता था और माफी जोतों का अर्थ निश्चित ज़मीन के टुकड़े से था। इन जागीरदारों के भूभाग पर किसी तरह की सैनिक सेवा या अन्य सेवा का प्रतिबन्ध नहीं था।[६८]

अध्याय ६

१. एल० एस० सांडर्स, कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर

अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दि० १२ सितम्बर, १८७३, संख्या ३१६५ राजपूताना गजेटीयर्स भाग ३ पृ० ३७ ।

२. आर० केवेंडिश सुपरिन्टेन्डेन्ट एवं पोलिटिकल एजेन्ट, अजमेर द्वारा कार्यवाहक रेजीडेन्ट दिल्ली को पत्र दि० ८ जुलाई, १८३० ।

३. कर्नल डिक्सन,कमिश्नर अजमेर द्वारा सेक्रेट्री उत्तरी-पश्चिमी सूवा सरकार को पत्र दि० १४ अप्रेल, १८५६, संख्या १४३ ।

४. टॉड—एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, खण्ड १, पृ० १६८ ।

५. भौम कमेटी रिपोर्ट सन् १८७३ ।

६. कर्नल जे० सी० ब्रुक्स कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार को पत्र, आबू दि० १७ अगस्त, १८७१ व कर्नल जे० सी० ब्रुक्स द्वारा सी० यू० एचिसन सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार को पत्र दि. २१ फरवरी, १८७१ संख्या १०४ ।

७. उपरोक्त ।

८. भौम कमेटी की रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

६. उपरोक्त ।

१०. चीफ कमिश्नर अजमेर द्वारा सेक्रेट्री भारत सरकार को पत्र, दि० १० जनवरी, १८७४ संख्या ३० ।

११. आर. केवेंडिश, सुपरिटेंडेंट एवं पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा कार्यवाहक रेजीडेंट दिल्ली को पत्र, दिनांक ८ जुलाई, १८३० ।

१२. कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को सुपरिटेंडेंट की कार्यवाही (मई १८४३) सहित पत्र, दिनांक १२ सितम्बर, १८७३ (रा. रा. पु. मं.) ।

१३. कर्नल जे. सी. ब्रुक्स, कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सी. यू. ऐचीसन् सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार को पत्र, आबू दिनांक १७ अगस्त, १८७१ संख्या २०५ ।

१४. भौम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

१५. कर्नल जे. सी. ब्रुक्स, कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सी. यू. ऐचीसन् सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार को पत्र, आबू दिनांक १७ अगस्त, १८७१ संख्या २०५ ।

१६. एफ. विल्डर पोलिटिकल एजेन्ट एवं सुपरिटेंडेंट अजमेर द्वारा डी०

ऑक्टरलोनी रेजीडेंट मालवा एवं राजपूताना को पत्र, अजमेर दिनांक ५ सितम्बर, १८२२ ।

१७. आर. केवेंडिश सुपरिंटेंडेंट एवं पोलिटिकल एजेन्ट अजमेर द्वारा कार्यवाहक रेजीडेंट, देहली को पत्र अजमेर दिनांक ८ जुलाई, १८३० ।

१८. कर्नल डिक्सन, कमिश्नर अजमेर द्वारा सेक्रेट्री उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र, दिनांक ३० अक्टूबर, १८५४ सं. ४२० ।

१९. आर. केवेंडिश सुपरिंटेंडेंट एवं पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा कार्यवाहक रेजीडेन्ट देहली को पत्र, अजमेर, दिनांक ८ जुलाई, १८३० ।

२०. भीम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

२१. आर. केवेंडिश, सुपरिंटेंडेंट अजमेर द्वारा कार्यवाहक रेजीडेंट देहली को पत्र, दिनांक ८ जुलाई, १८३० ।

२२. कर्नल सदरलैंड ए. जी. जी. राजस्थान द्वारा आर. एम. हेमिल्टन, सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र, दिनांक ८ जनवरी, १८४२ ।

२३. सचिव, भारत सरकार द्वारा आर. एम. सी. हेमिल्टन सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र, दिनांक १४ नवम्बर, १८३२ संख्या ६६ ।

२४. भीम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

२५. जे. थाम्पसन, कार्यवाहक उप सचिव भारत सरकार द्वारा कार्यवाहक रेजीडेन्ट एवं चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक फोर्ट विलियम, ७ दिसम्बर, १८३० ।

२६. एल. एस. सान्डर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र अजमेर दिनांक १२ सितम्बर, १८७३ संख्या ३१६५ ।

२७. सचिव भारत सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक २९ सितम्बर, १८७९ संख्या २३० ।

२८. भीम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

२९. कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र अजमेर दिनांक १२ सितम्बर, १८७३ संख्या ३१६५ ।

३०. भीम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

३१. उपरोक्त ।

३२. उपरोक्त ।

३३. भीम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३ ।

३४. एल. एस. सांडर्स कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर को प्रेषित पत्र अजमेर दिनांक १२ सितम्बर, १८७३ संख्या ३१६५।

३५. "भौमियों को सनद अदायगी" फाइल, सुपरिंटेंडेंट अजमेर कार्यालय की हिन्दी कार्यवाही का अनुवाद, दिनांक ४ मई, १८४३।

३६. उपरोक्त फाइल, कर्नल डिक्सन का आदेश ४ मई, १८४३।

३७. उपरोक्त दिनांक २५ जुलाई, १८४६।

३८. कर्नल जे. सी. ब्रुक्स कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सी. यू. एचिसन सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार को पत्र आबू, दिनांक १६ अगस्त, १८७१ संख्या २०५।

३९. रप्टन डिप्टी कमिश्नर अजमेर द्वारा एल. एस. सांडर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक २७ जुलाई, १८७१ संख्या २१६४।

४०. उपरोक्त।

४१. डिप्टी कमिश्नर अजमेर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक २० जनवरी, १८७३ संख्या ७६।

४२. कर्नल जे. सी. ब्रुक्स कार्यवाहक चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सी. यू. एचिसन, सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार को पत्र आबू दिनांक १६ अगस्त, १८७१ संख्या २०५।

४३. उपरोक्त।

४४. सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक २८ अक्टूबर, १८७१ व फाइल "भौमियों को सनद अदायगी।"

४५. चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सचिव परराष्ट्र विभाग भारत सरकार आबू, दिनांक १६ अगस्त, १८७१ संख्या २०५ व फाइल "भौमियों को सनद अदायगी"।

४६. भौम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३।

४७. डिप्टी कमिश्नर अजमेर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक २० जनवरी, १८७३ संख्या ७६।

४८. जिला सुपरिंटेंडेंट पुलिस द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक ४ जनवरी १८७३ संख्या ८।

४९. कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १२ दिसम्बर, १८७३ संख्या ४२१४।

५०. एल. एस. सांडर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफकमिश्नर को कमेटी नियुक्त करने के बारे में पत्र दिनांक २७ जनवरी, १८७३ संख्या ३०९।

५१. भौम कमेटी रिपोर्ट, सन् १८७३।

५२. उपरोक्त।

५३. फाइल 'आदेश भौम संपत्तियों एवं ग्राम पुलिस' संख्या २३० आर. चीफ कमिश्नर अजमेर द्वारा सचिव भारत सरकार को पत्र दिनांक १० जनवरी, १८७९ संख्या २३० व फाइल "भौम संपत्तियों एवं ग्राम पुलिस पर आदेश"।

५४. सचिव भारत सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक २४ सितम्बर, १८७४।

५५. फाइल "भौम सम्पत्तियाँ एवं ग्राम पुलिस पर आदेश"।

५६. एल० एस० सांडर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक १२ सितम्बर, १८७३ संख्या ३१६५।

५७. असिस्टेंट कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र अजमेर दिनांक ६ अगस्त, १९०६ क्रमांक २९८१।

५८. जागीर कमेटी रिपोर्ट दिनांक १६ मई, १८७४।

५९. असिस्टेन्ट कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक ८ मई, १८८९ क्रमांक ५००।

६०. कमिश्नर अजमेर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक ३ अगस्त, १८८९ क्रमांक १८९२।

६१. जागीर कमेटी रिपोर्ट दिनांक १६ मई, १८७४।

निम्नांकित तालिका प्रत्येक वर्ग की जागीरों के अन्तर्गत गाँवों तथा इन जागीरों के उद्गम को प्रकट करती है—

जागीर देने वाले का नाम	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	कुल
अकबर	१६	....	....	१६
जहांगीर	१	½	४	५½
शाहजहां	....	३	....	३
आलमगीर	....	½	....	½

जागीर देने वाले का नाम	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	कुल
फर्रुखशियर	२	६½	....	८½
मुहम्मद शाह	....	४	....	४
मराठा	५	६	१	१२
महाराजा अजीतसिंह	....	१	...	१
अंग्रेज़ सरकार	१	१	....	२
कुल संख्या	२५	२२½	५	५२½

आधा डेरूथ प्रथम श्रेणी और आधा आखेरी तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत आते थे।

उपरोक्त गाँवों में से १० गाँवों में ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी माना जाता था तथा ८ गाँवों में जागीर पैतृक सम्पत्ति के रूप में बंटा करती थी।

६२— —प्रथम श्रेणी—

१. राजा देवीसिंह	कोठाज एवं राजगढ़।
२. दीवान गियासुद्दीन अलीखां	देलवाड़ा।
३. नवाब शमशुद्दीन अलीखां	सीदारिया, आधा डेरूथ, बोराज, काजीपुरा, सोलंवर।
४. राजा बलवंतसिंह	मंगवाना, उंतरा एवं मगरा।
५. मीर इनायत-उल्लाह शाह	कुड़ियाना, आधा देलवाड़ा।
६. मीर निजाम अली	जावासा, भटियाना।
७. गुलाबसिंह	अर्जुनपुरा।
८. सालिगराम ज्योतिषी	मंगलियावास।
९. गोकुलपुरी गोसाई	चोवंडिया।

६३—असिस्टेन्ट कमिश्नर द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक ६ अगस्त, क्रमांक-२९८१।

६४—उपरोक्त।

६५—उपरोक्त।

६६—उपरोक्त।

६७—लाटूश अजमेर-मेरवाड़ा की बंदोबस्त रिपोर्ट सन् १८७४।

६८—असिस्टेन्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक ९ अगस्त, १९०६ क्रमांक २९८१।

७

पुलिस एवं न्याय-व्यवस्था

सन् १८६२ से पूर्व अजमेर-मेरवाड़ा में नियमित पुलिस जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। पुलिस सेवाओं के लिए विभिन्न प्रथा एवं प्रक्रियाएं प्रचलित थीं।[1] अंग्रेजों द्वारा मेरवाड़ा को अधीनस्थ करने के वाद, इस क्षेत्र में व्यवस्था एवं नागरिक प्रशासन के दृष्टिकोण से तीन प्रमुख भारतीय अधिकारियों की नियुक्तियां की गई थीं। प्रारम्भ में एक ही अधिकारी को राजस्व व्यवस्था एवं नागरिक प्रशासन सम्बन्धी कार्यभार वहन करना होता था।[2] टाडगढ़ के तहसीलदार को जिसके क्षेत्र में ८१ गांव और १३ ढाणियाँ थीं, दक्षिणी परगने के दवेर, टाडगढ़, भायला और कोटकिराना के राजस्व सम्बन्धी कार्यों के प्रशासन के अतिरिक्त जिले के इस भूभाग में नागरिक प्रशासन की भी व्यवस्था करनी होती थी। टाडगढ़ तहसीलदार के क्षेत्र में पांच प्रमुख पुलिस थाने थे। प्रत्येक थाने में एक पेशकार तथा तीन चपरासी नियुक्त थे। सुचारू व्यवस्था की दृष्टि से इस क्षेत्र को और भी कई भागों में विभाजित किया गया था प्रत्येक। चपरासी पृथक् रूप से प्रत्येक तीन या चार-चार गाँवों की देखरेख के लिए नियुक्त कर दिया गया था। ये लोग अपने क्षेत्र के अपराध की स्थिति के बारे में प्रतिदिन संबंधित थानों के पेशकार को सूचना देते रहते थे। इस तरह की प्रशासनिक व्यवस्था के द्वारा तहसीलदार अपने क्षेत्र के अन्तर्गत घटी घटनाओं से सम्पर्क बनाए रखता था। चोरियों और डकैती की घटनाओं की सूचना संबंधित थानों या तहसीलदार को अविलम्ब की जाती थी। सारोठ तहसीलदार के क्षेत्र के अन्तर्गत जिले के केन्द्र में स्थित

सारोठ और कोटड़ा परगने थे जिनमें ५३ गाँव और १५ ढाणियाँ थीं। उत्तरी क्षेत्र के तहसीलदार के अन्तर्गत ब्यावर, झाक, श्यामगढ़ और चांग के परगने थे जिनमें १०६ गाँव और ५२ ढाणियाँ थीं। इसी तरह का प्रशासनिक उप विभाजन ब्यावर क्षेत्र का भी था, जिसके अधीन कई थानों और चपरासियों की व्यवस्था की हुई थी। टाडगढ़, देवर और सारोठ के किलों में मेर बटालियन की सैनिक टुकड़ियां नियुक्त की गई थीं। मेरवाड़ा के पहाड़ी भाग में व्यापारिक काफिलों और यात्रियों की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था थी। जब कभी कोई डकैती की घटना घटती तो क्षतिग्रस्त पक्ष की क्षतिपूर्ति का भार उन ग्रामों को वहन करना होता था, जहाँ ये दुर्घटनाएं घटित होती थीं।[3]

इस्तमरारदारों को उनके अपने क्षेत्रों की सम्पूर्ण पुलिस व्यवस्था इसी आधार पर सौंपी हुई थी कि यदि कोई दुर्घटना इन क्षेत्रों के अन्तर्गत घटती तो उन्हें इसका उत्तरदायित्व वहन करना होता था। उन दिनों इसी तरह की व्यवस्था प्रचलित थी। भौमियों को उनकी भूसंपत्ति के पूर्ण अधिकार इसी आधार पर प्राप्त थे कि वे अपने क्षेत्र की व्यवस्थित चौकसी एवं निगरानी रखेगें। खालसा भूमि में भौमियों की प्रथा नहीं थी। वहाँ सरकार को निगरानी एवं चौकसी के लिए चौकीदार नियुक्त करने पड़े थे। चौकीदार बहुधा चीता एवं मेर जातियों के लोगों में से नियुक्त किए जाते थे। इन पर यह जिम्मेदारी थी कि अगर उनकी लापरवाही के फलस्वरूप किसी तरह की दुर्घटना घटती तो उन्हें क्षतिपूर्ति करनी होती थी। ये लोग जरायम पेशा कोमों में से थे। इनकी नियुक्ति के पीछे यही आशय था कि जबतक वे नियुक्त होगें तब इनके जाति भाई इन क्षेत्रों में चोरी करने का दुस्साहस नहीं करेंगे।[4]

उन दिनों अजमेर-मेरवाड़ा में जब किसी व्यक्ति का सामान इस्तमरारदारी या भौम गाँव में चोरी हो जाती तो वे फौजदारी अदालतों में इस आशय का प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर इस्तमरारदार या भौमियें से क्षतिपूर्ति की रकम अदालत के जरिये वसूल कर सकते थे।[5] अजमेर-मेरवाड़ा के इस्तमरारदारों को अपने क्षेत्र की समूची पुलिस-व्यवस्था का भार वहन करना होता था। केवल कुछ ही प्रमुख कस्बों में सरकारी पुलिस चौकियों की व्यवस्था थी जो कि नोटिस, सम्मन या वारंट तलबी का काम करती थी। अजमेर जिले के एक तिहाई क्षेत्र में इस्तमरारदारी व्यवस्था थी। इस क्षेत्र की समूची पुलिस-सेवा उनके अधीनस्थ ही थी।

इस्तमरारदार को उसके कर्तव्य के प्रति सचेत रखने के लिए जिला अधिकारी को क्षतिपूर्ति लागू करने का अधिकार उपलब्ध था। इस आशय के सभी मामले दीवानी अदालतों के बजाय फौजदारी अदालतों से तय होते थे। यदि ये मामले दीवानी अदालतों के सुपुर्द कर दिये गये होते तो जिला अधिकारी का इस्तमरारदारों पर नियंत्रण डगमगा जाता तथा जिला अधिकारी का इस्तमरारदारों और भौमियां से चौकसी और निगरानी

की सेवाएं लेना कठिन हो जाता। क्षति ग्रस्त व्यक्ति दीवानी दावों की लम्बी प्रक्रिया से परेशान होकर शीघ्र ही इस्तमरारदारों और भोमियों से समझौता कर लेना कहीं अधिक उचित समझता। यही एक ऐसी प्रक्रिया थी जो इस्तमरारदारों को अपने कर्तव्यों के प्रति चौकन्ना रखे हुई थी।[६] सन् १८७४ में इस्तमरारदारों का क्षतिपूर्ति का दायित्व समाप्त कर दिया था।[७]

सन् १८५८ में कर्नल डिक्सन ने १८ गांवों में तीन रुपये मासिक वेतन पर चौकीदारों की नियुक्तियां की थीं। इनके वेतन का एक भाग यात्रियों से कर के रूप में तथा शेष गांव के खर्च की राशि में से वसूल किया जाता था। कर्नल डिक्सन की यह मान्यता थी कि मेर स्वयं अपनी व्यवस्था करने में सक्षम हैं। इसलिये उस क्षेत्र में केवल एक या दो बड़े कस्बों में, जहाँ व्यापारी वर्ग अधिक था, सरकारी चौकीदारों की नियुक्तियां की गई थीं। कस्बे के प्रत्येक निवासी को इन चौकीदारों के वेतनस्वरूप निश्चित मात्रा में अनाज देना होता था।[८] सन् १८६१ तक इस जिले की सामान्य व्यवस्था का भार मेरवाड़ा बटालियन के हाथ में था। इस बटालियन का केन्द्रीय कार्यालय भी उन दिनों ब्यावर में स्थित था।[९]

मेरवाड़ा-क्षेत्र की पहाड़ियों में कुछ ही सड़कें थीं जहाँ से आवागमन संभव था। अंग्रेजों के अधिपत्य के पूर्व यह भाग व्यापारिक काफिलों को लूटने के लिए लुटेरों का विशेष स्थान बन गया था। नयानगर, जवाजा, जस्सा खेड़ा, टाडगढ़ और दवेर के मशहूर डकैत इस क्षेत्र में लूटपाट कर लूट का माल सीमा पार के क्षेत्रों में बेच आते थे। लूट व चोरी के माल में अधिकतर मवेशी हुआ करते थे। कभी-कभी डाकुओं के दल डाका डालने की नियत से अंग्रेजों के क्षेत्रों में बारातियों का वेश धारण करके गुजरते थे। सीमा स्थित कई ठाकुर भी इन लुटेरों को शरण एवं सुरक्षा प्रदान किया करते थे।[१०]

इस क्षेत्र पर अंग्रजों के आधिपत्य के पश्चात् प्रमुख रास्ते निकटवर्ती ग्रामों को निगरानी में सौंप दिये गये थे। इस तरह के लूटपाट के अपराधों की बहुत कुछ रोकथाम की जा सकी थी। कर्नल डिक्सन ने लूटपाट की जिम्मेदारी रास्तों से सटे हुए ग्रामों पर थोप दी थी। मेरवाड़ा में इन रास्तों से यात्रा करने वालों से नाममात्र का शुल्क उनकी सुरक्षा-हेतु वसूल किया जाता था। इस तरह के क्षेत्र में यह शुल्क अत्यंत लाभकर सिद्ध हुआ तथा यात्रियों को यह कर कभी भार के रूप में प्रतीत नहीं हुआ। इससे गाँव के लोग यात्रियों को सुरक्षित पहुँचाने के लिए एक तरह से अनुबंधित हो गये थे। सड़कों को डकैतों और लुटेरों की कार्यवाही से मुक्त एवं सुरक्षित रखने में यह राशि उपयोगी सिद्ध हुई थी। सन् १८६७ तक इस क्षेत्र में कस्टम व चुंगी कर लगते थे जिसके कारण कई चुंगी-अधिकारी इस क्षेत्र में नियुक्त थे, जिनकी उपस्थिति मात्र ही इस क्षेत्र में चोरी-छिपे घुसपैठ करने वालों पर अंकुश थी। डाकुओं और लुटेरों का पीछा करने

के लिए कालातंर में झांसी रिजर्व से बुलाई गई घुड़सवारों की टुकड़ी इस क्षेत्र में तैनात कर दी गई थी। बाद में इस तरह की घुड़सवार टुकड़ी का गठन अजमेर में भी कर लिया गया था।[११]

ठगी और डकैती का उन्मूलन :-

राजपूताना में ठगी और डकैती का दमन करने के लिए अपर, लोअर व ईस्टर्न राजपूताना नाम की तीन एजेन्सियां सन् १८८९ में स्थापित की गई थीं। अपर राजपूताना एजेन्सी का सदर मुकाम अजमेर में था। इसका कार्यभार "असिस्टेन्ट जनरल सुपरिटेंडेंट ठगी एवं डकैती उन्मूलन" को सौंपा गया था।[१२] उक्त अधिकारी को तृतीय श्रेणी के दंडनायक के अधिकार प्राप्त थे।[१३] सन् १८८६ में अपर, लोअर और ईस्टर्न राजपूताना एजेंसियों को समाहित करके राजपूताना के लिए एक नई एजेंसी का गठन किया गया जिसका कार्यभार जनरल सुपरिटेंडेंट राजपूताना के असिस्टेन्ट को सौंपा गया। अलवर, जयपुर और आबू में भी निरीक्षण चौकियां कायम की गईं व असिस्टेंन्ट का सदर मुकाम अजमेर में रखा गया।[१४]

डकैतियों के दमन के लिए अजमेर-मेरवाड़ा और सीमावर्ती पड़ोसी रियासतों के बीच आपसी सहयोग की आवश्यकता अनुभव होने लगी। मारवाड़ ही एक अकेली ऐसी रियासत थी जिसके वकीलों को अभियुक्तों को पकड़ने में अजमेर पुलिस की सहायता करने के अधिकार प्राप्त थे। इस रियासत का एक वकील अजमेर में और दूसरा ब्यावर में नियुक्त था। जयपुर की ओर से एक वकील देवली में भी था। मेवाड़ का भी अपना वकील था, परन्तु बाद में हटा लिया गया था।[१५]

वकील अजमेर पुलिस को परवाना देते थे जिससे वह उनकी रियासत में प्रवेश कर अभियुक्त और चोरी का माल बरामद कर सकें[१६]। इस पुलिस दस्ते की सहायता के लिए भी एक चपरासी उनके साथ भेजा जाता था। जब कभी अभियुक्त और चोरी का माल अन्य सीमाओं में बरामद होता तो उसे निकटवर्ती स्थानीय अधिकारियों की निगरानी में सौंप दिया जाता था। तत्पश्चात् अभियुक्त की मय माल के गिरफ्तारी का वारंट जारी किया जाता था। परंतु सामान्य मामलों में वकील के पद और उसमें निहित विश्वास के आधार पर कि वह अभियुक्त बरामद माल को अजमेर-मेरवाड़ा में समय पर प्रस्तुत कर सकेगा, बिना वारंट के ही पुलिस दस्ते के साथ भेज दिया जाता था। यह व्यवस्था अंग्रेज शासित देश और रियासतों के बीच सहयोग पर आधारित थी। यह सहयोग सभी निकटवर्ती रियासतों को अजमेर के संबंध में उपलब्ध था। इन रियासतों के पुलिस अधिकारियों को इस कार्य के लिए अजमेर-मेरवाड़ा में प्रवेश करने की अनुमति थी। इसके लिए उनके पास परवाना होना अनावश्यक था। इसके लिए इतना ही पर्याप्त था कि वे अपने आगमन की सूचना कर दें और अभियुक्त की गिरफ्तारी व माल बरामदगी में अजमेर पुलिस की मदद लें। अभि-

मुक्त और बरामदशुदा माल अजमेर पुलिस की सुरक्षा में तबतक रखा जाता था जबतक कि तत्सम्बन्धी नियमित कार्यवाही सम्पन्न नहीं हो जाती थी। असाधारण मामलों में जब भी यह अनुभव होता कि विलम्ब के कारण अभियुक्त फरार हो सकता है अथवा न्याय में देर हो सकती है तो उपर्युक्त रियासत पुलिस अधिकारी बिना विशेष औपचारिकता पूरी किए ही कार्यवाही सम्पन्न कर लेते थे। आवश्यकता पड़ने पर अगर अजमेर पुलिस की सहायता के बिना ही यदि अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया जाता तब भी बहुधा इसे नियम का उल्लंघन नहीं माना जाता था और औपचारिकता की पूर्ति बाद में कर ली जाती थी।[१७] इस संबंध में पड़ोसी रियासतों की मदद मिलती रही।[१८] सभी बड़ी रियासतों के अधिकृत वकील पहले अजमेर में रहा करते थे और जब वे आबू जाते तो अपने स्थान पर अन्य मातहतों को छोड़ जाते थे। ऐसी स्थिति में कभी-कभी दुविधा व परेशानी पैदा हो जाया करती थी।[१९] रियासतों के इन वकीलों के पद पर और कार्यों के बारे में कोई लिखित कानून नहीं था। समय-समय पर दिए गए निर्णय और सरकारी आदेश ही उसका आधार थे। इस बात का सदा ध्यान रखा जाता था कि अजमेर-पुलिस और रियासतों के बीच इस संबंध में सहयोग और सद्भावना बनी रहे।[२०]

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजपूताना में अराजकता की स्थिति व्याप्त थी। इसको समाप्त करने में अंग्रेजों का काफी महत्वपूर्ण योग रहा था। इस स्थिति के उत्पन्न होने के कई कारण थे। असंतुष्ट ठाकुरों द्वारा बहुधा डकैती का मार्ग अपना लेना, डाकुओं के गिरोहों को एक राज्य से दूसरे में प्रवेश कर जाने पर वहाँ कानून व दंड से मुक्ति मिल जाना, कुछ भागों में भील और मीणों का आवास होना, जिन पर रियासतों का नियंत्रण नाममात्र का था, परन्तु इस स्थिति के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण अधिकांश रियासतों में अच्छे शासन और संगठित पुलिस सेवा का अभाव था।

अगर ऐसी परिस्थितियां एक रियासत तक सीमित रहतीं तब तो उन्मूलन शनैः शनैः प्रशासन में सुधार एवं सरकारी नियंत्रण को कड़ा करके किया जा सकता था, परन्तु यह समस्या एक राज्य तक ही सीमित नहीं थी इसने अन्तर्राज्यीय रूप ले लिया था जिसे उन दिनों अन्तर्राष्ट्रीय कहा जाता था।

इस तरह के अपराधों को रोकने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य उत्तरदायित्व निर्धारित करना था। इस संबंध में सन् १८३१ में यह निश्चय किया गया कि जहाँ घटना घटे उस क्षेत्र के अधिकारी को ही इसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। उत्तरदायित्व संबंधी इस सिद्धांत को ज्यादा व्यापक बनाने के लिए सन् १८३८ में यह निर्णय लिया गया कि "यदि किसी रियासत में शरण प्राप्त लुटेरे कोई लूटपाट उस क्षेत्र में करते हैं तो इसका उत्तरदायित्व उस राज्य को वहन करना होगा।"[२१]

इन मामलों में किसी भी तरह का उत्तरदायित्व निर्धारित करने के पूर्व क्षतिपूर्ति के दावेदार को यह सिद्ध करना होता था कि उसने अपनी जानमाल की हिफाजत की सामान्य व्यवस्था कर रखी थी। यात्रियों से यह अपेक्षित था कि गाँव में पहुँचने पर वे सराय में रुकेंगे ताकि गाँव का चौकीदार उनकी चौकसी रख सके। उन्हें अपनी सम्पत्ति को गाँव के अधिकारियों की सुरक्षा में सौंप देना अवश्यक था जो कि उसकी अमानत के तौर पर निगरानी रखते थे। मार्ग में यात्रा करते समय अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अतिरिक्त व्यवस्था रखना भी यात्रियों के लिए आवश्यक था। सन् १८५४ में घटित एक ऐसी घटना प्रकाश में आई जिसमें मंदसौर से चित्तौड़ को भेजी जा रही एक लाख रुपयों के मूल्य की काली मिर्च जिसकी रक्षा के लिए चार सशस्त्र व्यक्ति साथ में थे—लुट गई और उसकी क्षतिपूर्ति का दावा प्रस्तावित किया गया। क्षतिपूर्ति के समय यह निर्देश अंकित किया गया कि इतनी मूल्यवान सामग्री की रक्षा के लिए तैनात केवल चार सशस्त्र व्यक्ति पर्याप्त नहीं कहे जा सकते, फलस्वरूप इस लूट का उत्तरदायित्व सम्बन्धित रियासत पर नहीं है।[२२]

उन दिनों व्यापारिक सामग्री और मूल्यवान वस्तुएं बहुधा बीमा कम्पनियों के माध्यम से भेजी जाती थीं। ये एजेंसियां "मार्ग की स्थिति" के अनुसार ही अपना सुरक्षा-शुल्क निर्धारित किया करती थीं। इह तरह की एक अन्य मनोरंजक घटना का उल्लेख भी पत्रों में मिलता है। एक व्यापारी ने ३५०० रुपये का सोना और जवाहरात उदयपुर से मंदसौर भेजने के लिए उपर्युक्त माध्यम अथवा अन्य उचित सुरक्षा का मार्ग अपनाकर अपने दो घरेलू नौकरों के हाथों भिजवाई। ये नौकर साधुओं के वेष में वह सोना घर ले जा रहे थे। रास्ते में इन्हें भीलों ने घायल कर सामान लूट लिया था। क्षतिपूर्ति के लिए प्रस्तुत इस मामले पर टिप्पणी करते हुए उदयपुर में स्थित पोलिटिकल ऐजेन्ट ने लिखा "इस मामले में देसी रियासत को उत्तरदायी मानना मुझे न्याय की दृष्टि से अत्यन्त संदेहास्पद लगता है क्योंकि लूटी हुई सम्पत्ति के स्वामी ने उचित सुरक्षा का तरीका अपनाने की अपेक्षा भाग्य अथवा देव पर भरोसा करना अधिक उचित समझा, और लोभ के लिए दो निरपराध व्यक्तियों को घायल होने के संकट में धकेल दिया।"[२३]

वकील अदालत

सुरक्षा एवं व्यवस्था के दृष्टिकोण से केवल उत्तरदायित्व निर्धारित करने का सिद्धांत निश्चित करना ही पर्याप्त नहीं था। इसके कारण दीर्घकालीन पत्र-व्यवहार के अलावा और कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। अतएव इस दिशा में सुधार लाने के लिए दो आवश्यक प्रशासनिक कदम और उठाए गए। पहला अराजकता के दमन के लिए अधिक सक्रिय और कड़ी कार्यवाही तथा दूसरा, क्षतिपूर्ति के निर्धारण और

उत्तरदायित्व स्थिर करने के लिए एक नियमित आयोग की स्थापना ।[२४] पहले कदम के अन्तर्गत मालवा और मेवाड़ में भील सैनिक सेवा का जन्म हुआ और दूसरा प्रशासनिक कदम वकील अदालत की स्थापना था ।[२५] प्रारम्भ में इस तरह की तीन अदालतें अजमेर, नीमच और कोटा में थीं, वाद में जोधपुर और जयपुर में भी एक-एक वकील अदालतों की स्थापना की गई ।[२६]

अजमेर में अठारह रियासतों के अधिकृत वकीलों में से पाँच प्रतिनिधियों की एक वकील-अदालत स्थापित की गई थी । यह अदालत उन सभी फौजदारी मामलों को निपटाती थी जो एक रियासत के निवासी, व्यापारी या यात्री, दूसरी रियासतों के वारे में शिकायत के तौर पर प्रस्तुत करते थे । अजमेर से सम्बन्ध रखने वाले वाद इस पंचायत में प्रस्तुत होते थे । अदालत प्रतिवादी रियासत के वकीलों और साक्षियों को जिला हाकिमों के माध्यम से सम्मन भेजकर बुलवाती और मुकदमों की सुनवाई करती थीं । सम्पूर्ण वाद की जांच के पश्चात् अदालत अपनी कार्यवाही और डिग्री ए० जी० जी० को भेज देती थी । जिस रियासत के विरुद्ध डिग्री पारित होती थी, उसके वकील द्वारावादी को क्षतिपूर्ति की राशि देनी पड़ती थी और वादी पक्ष इसकी लिखित रसीद रियासत को दिया करता था ।[२७] आरम्भ में ये वकील-अदालतें फौजदारी मामलों के साथ-साथ कुछ खास किस्म के दीवानी मामले, जैसे समझौता-भंग, विवाह-विच्छेद इत्यादि अन्तर्राज्यीय मामले भी सुनती थी । परन्तु वाद में दीवानी मामलों की सुनवाई को प्रोत्साहन नहीं दिया जाने लगा और यह अदालत पूर्णतः फौजदारी मुकदमें की ही सुनवाई करने लगी ।[२८]

केवल महत्वपूर्ण एवं गंभीर मुकदमों में ही ए० जी० जी० उपस्थित रहते थे अन्यथा मामलों की कार्यवाही और निर्णय उन्हें प्रेपित कर दिए जाते थे और वे अपने निरीक्षण के पश्चात् अदालत का फैसला सम्बन्धित रियासत को भेजकर उससे डिग्री की बकाया राशि चुकाने की व्यवस्था करते थे ।[२९] वादी एवं प्रतिवादी रियासतों के वकील इस अदालत के सदस्य होते थे परन्तु वे अपने मतों का उपयोग कभी-कभी ही किया करते थे । इन अदालतों को एक तरफा डिग्री मंजूर करने का अधिकार भी था ।[३०]

इन अदालतों का मुख्य उद्देश्य उन यात्रियों तथा लोगों को न्याय प्रदान करना होता था जो अपनी रियासत के वाहर के लोगों के हाथों जान-माल की क्षति उठाते थे । यह ऐसे सभी मामलों को सुनती और निर्णय देती थी जिनमें व्यक्ति और संपत्ति सम्बन्धी भारतीय-दंड-संहिता लागू होती थी तथा वे सभी मामले जो भारत सरकार और राजपूताना की रियासतों के वीच प्रत्यर्पण (extradition) संधि की शर्तों के अन्तर्गत आते थे । सन् १८६२ के नियमों के अन्तर्गत इन अपराधों को "अन्तर्राष्ट्रीय" कहा गया था परन्तु सन् १८७० में इनको "अन्तर्क्षेत्रीय अपराध" का नाम दिया

गया था। इनका अधिकार-क्षेत्र केवल रियासतों तक ही सीमित नहीं था वरन् अजमेर-मेरवाड़ा का क्षेत्र भी इनके अधिकार के क्षेत्र में था। इस तरह की संयुक्त अदालत के गठन के पूर्व निकटवर्ती रियासतों से इन मामलों पर एक लम्बे समय तक निरर्थक पत्र-व्यवहार विभिन्न पोलिटिकल ऐजेंटों के बीच चलता रहता था। उसका प्रतिफल विलम्ब और न्याय की असफलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस संयुक्त न्यायालय के गठन के पश्चात् यह परेशानी समाप्त हो गई थी। अजमेर-मेरवाड़ के असिस्टेंट कमिश्नर या डिप्टी कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा से सम्बन्धित मामले उठने पर इस न्यायालय में बैठ सकते थे परन्तु उनकी उपस्थिति न्यायालय के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकती थी। अन्य रियासतें अपने वकीलों के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त करती थीं और उनके वकीलों को मुकदमें में कहने सुनने का अधिकार था। अजमेर-मेरवाड़ा को इस तरह का प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था। यह न्यायालय भारतीय-दंड-संहिता के अन्तर्गत उल्लिखित जान-माल संबंधी अपराधों तथा प्रत्यर्पण-संधियों के अन्तर्गत आने वाले मामलों की सुनवाई एवं जांच करके निर्णय करने में सक्षम थी।[31]

इन न्यायालयों को जुर्माना, कारावास, मुआवजा का दंड देने और उन मामलों में जहां न्यायालय को यह संदेह होता है कि इसमें स्थानीय पुलिस अथवा गाँवों का हाथ है, वहां पुलिस अथवा गाँव को दंड देने का अधिकार भी प्राप्त था। यद्यपि दंड संबंधी नियम लिखित नहीं थे तथापि यह न्यायालय सामान्यतः भारतीय दंडसंहिता व स्थानीय प्रथाओं से मार्ग-दर्शन प्राप्त करता था।[32]

इस न्यायालय में उत्तरदायित्व निश्चित करने के निम्न आधार थेः—

१—वह रियासत जहां अपराध गठित हुआ हो।

२—वह रियासत जिसमें अपराधी का तत्काल पीछा किया गया हो।

३—वह रियासत जहां अपराधी रहता हो।

४—वह रियासत जहां चोरी एवं लूट का माल अथवा उसका कुछ अंश बरामद हुआ हो।[33]

उत्तरदायित्व निश्चित करने में न्यायालय इस बात का ध्यान रखता था कि अपराध के घटित होने और अपराधी के भाग छूटने में रियासत की ओर से कितनी अवहेलना हुई है। यात्रियों से भी यह अपेक्षा की जाती थी कि वे जान और माल की सुरक्षा के लिए कुछ विशेष हिदायतों का पालन करेंगे। रियासतों पर क्षति-पूर्ति की रकम निश्चित करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि यात्री ने उन हिदायतों का कहां तक पालन किया है।[34]

मूल्यवान वस्तुओं सहित यात्रा करने वालों को सामान्य नियमों के अन्तर्गत पहरे के साथ यात्रा करनी होती थी। नियमानुसार प्रति हजार रुपए के मूल्य की

सामग्री पर दो सशस्त्र पहरेदार उसके आगे आठ हजार तक की राशि वाली वस्तुओं के लिए प्रति हजार पर एक अतिरिक्त सिपाही तथा आठ हजार से अधिक की राशि पर प्रति दो हजार पर एक अन्य अतिरिक्त सिपाही रखना आवश्यक था। इन काफिलों को रात्रि के समय गांव में रुकना आवश्यक था, जहां ग्राम-अधिकारियों को अपने आगमन से सूचित कर और उनसे चौकीदार की सेवाएं प्राप्त करनी होती थीं। इन चौकीदारों के अतिरिक्त उन्हें अपनी संपत्ति की सुरक्षा-हेतु सशस्त्र पहरे का प्रबंध करना होता था। इन चौकीदारों और सिपाहियों को अपनी संख्या के अनुपात में किसी तरह की क्षति एवं नुकसान की स्थिति में पहरे पर तैनात व्यक्ति की क्षतिपूर्ति का भार वहन करना होता था।[३५]

यात्रियों के लिए मार्गदर्शक रखना भी जरूरी होता था। मार्गदर्शक प्रति पांच यात्रियों पर एक, दस पर दो तथा बीस यात्रियों पर तीन की संख्या के अनुपात में होते थे। बारात आदि के लिए सशस्त्र पहरेदारों की आवश्यकता रहती थी और सोना-चांदी, जवाहरात तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं को किसी भी स्थिति में केवल दो या तीन वाहकों को नहीं सौंपी जा सकती थी।[३६]

भोमिया

सन् १८६७ तक गांवों में भोमियों के पास पहरे व चौकी की व्यवस्था थी। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामों में पहरे एवं चौकी जैसी व्यवस्था ही प्रायः समाप्त हो गई थी। जब कभी पुलिस घटनाग्रस्त ग्राम में पहुंचती और चौकीदार की तलाश करती तो भोमियों में इस बात को लेकर आपसी कलह आरम्भ हो जाया करता था कि अपराध वाले दिन चौकीदारी की व्यवस्था किसके जिम्मे थी। बहुधा घटना घटित होने की सूचना पुलिस तक पहुंचाई ही नहीं जाती थी। पुलिस-अधिकारी के घटनास्थल पर पहुंचते ही भोमियां इस तरह का ढोंग रचते मानों वे सम्पूर्ण घटना से बेखबर हों। इस तरह की बिगड़ी हुई परिस्थितियों के फलस्वरूप ही सरकार को वेतन भोगी नियमित चौकीदारी-व्यवस्था करनी पड़ी थी। सन् १८७० से लेकर सन् १८८० तक चौकीदारी-व्यवस्था शनैः शनैः सम्पूर्ण क्षेत्र में लागू की जा चुकी थी।[३७]

चौकीदार

सन् १८७० में सरकार ने अजमेर-मेरवाड़ा में (जिसमें नसीराबाद, पुष्कर शहर और केकड़ी भी सम्मिलित थे) ६३० चौकीदार नियुक्त किए थे। इस व्यवस्था पर प्रति चौकीदार चार रुपए मासिक वेतन के हिसाब से प्रति माह २५०० रुपए व्यय किए जाते थे। डिप्टी कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा ने १ जनवरी, १८७१ को चौकीदारों की संख्या ६३० से घटाकर ४९८ निम्न तालिकानुसार कर दी थी :—[३८]

अजमेर ४४७ चौकीदार।

ब्यावर	१३ चौकीदार।
टाडगढ़	३८ चौकीदार।

जनवरी, १८७३ में पुष्कर और केकड़ी के कस्बों को छोड़कर शेष जिले में चौकीदारों को राज्य की नौकरी से अलग कर पुनः पहरे व चौकी की व्यवस्था भौमियों को सौंप दी गई थी।[३९]

सन् १८७४ में भौमियों की क्षतिपूर्ति की जिम्मेदारी समाप्त कर दिए जाने पर[४०] सरकार ने अजमेर में ३३ चौकीदार, ब्यावर में २ तथा टाडगढ़ में १३ चौकीदार नियुक्त किए थे। यह व्यवस्था सन् १८७६ तक बनी रही। नगरपालिका द्वारा नियुक्त चौकीदार इनके अतिरिक्त थे। सन् १८७० से १८७६ तक क्षेत्र में चौकीदारों की संख्या का विभाजन क्षेत्र के अनुपात में इस प्रकार का था—[४१]

कुल गांवों की संख्या	गांवों की संख्या जहां चौकीदार नियुक्त किए गए।	चौकीदारों की संख्या
अजमेर तहसील १८४	२२	३३
ब्यावर तहसील २२८	२	२
टाडगढ़ तहसील १००	१०	१४

उपरोक्त तालिका में अजमेर और ब्यावर खास, नसीराबाद छावनी, पुष्कर शहर और केकड़ी सम्मिलित नहीं हैं। अजमेर और ब्यावर की नगरपालिका सीमाओं में नगरपालिका द्वारा पुलिस की व्यवस्था थी। सन् १८५६ के कानून २० के अन्तर्गत नसीराबाद, पुष्कर और केकड़ी में भी चौकीदारों की व्यवस्था की गई थी जो निम्नांकित तालिका के अनुसार थी—[४२]

स्थान	जमादारों की संख्या	चौकीदारों की संख्या
नसीराबाद	३	४०
केकड़ी	१	१२
पुष्कर	१	१६

उन सभी खालसा या जागीर गांवों में जहाँ घरों की संख्या दो सौ से कम होती थी, चौकीदार नियुक्त नहीं किए जाते थे। ऐसे ४७९ गांव थे जो चौकीदारी की व्यवस्था से वंचित थे।[४३]

केवल दो सौ घरों से कम आबादी वाले गांवों को ही चौकीदारी-व्यवस्था से वंचित नहीं रखा गया था, बल्कि कई बड़े-बड़े कस्बे भी चौकीदारी-व्यवस्था से वंचित रह गए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त व्यवस्था नियमित रूप से लागू नहीं हो

पाई थी। निम्न तालिका[४४] उन कस्बों की है जो जनसंख्या में चौकीदारी-व्यवस्था के अन्तर्गत आते थे, परन्तु इस लाभ से वंचित रखे गए थे :—

१.	जैठाना	६०० घरों से अधिक की आबादी
२.	तबीजी	५०० घरों से अधिक की आबादी
३.	सराधना	५०० घरों से अधिक की आबादी
४.	श्री नगर	८०० घरों से अधिक की आबादी
५.	वीर	६०० घरों से अधिक की आबादी
६.	राजगढ़	५५० घरों से अधिक की आबादी

चौकीदार को पुलिस के साधारण सिपाही के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। वह केवल मात्र ग्राम का वेतन भोगी नौकर होता था। जिन ग्रामों में चौकीदार नियुक्त नहीं किए गए थे, वहाँ गाँव वाले मिलकर स्वयं चौकी पहरे की व्यवस्था करते थे। खालसा और जागीर ग्रामों में सभी महाजनों और गैर-काश्तकारों के घरों से प्रति घर एक रुपया वार्षिक शुल्क वसूल किया जाता था, जो कि हैड लम्बरदार का वेतन स्वरूप होता था अथवा ग्राम के खर्चे की मद में जमा कराया जाता था। चौकीदारों को चार रुपए मासिक तक वेतन मिला करता था। चौकीदार हैड लम्बरदार के अधीन होते थे जो स्वयं सरकार के प्रति जिम्मेदार होता था।[४५]

जागीर पुलिस

जागीर के ग्रामों में जागीरदार हैड लम्बरदार के रूप में उत्तरदायित्व वहन करता था। सभी जागीर और खालसा ग्रामों के माफीदारों से शुल्क वसूल किया जाता था जिसे गाँव के खर्चे के मद में जमा कराया जाता था या हैड लम्बरदार को चुकाया जाता था। यह शुल्क जोत के राजस्व रहित होने पर उसके कराधान का १.१४ प्रतिशत होता था तथा इसके साथ ३.२ प्रतिशत राशि माफीदारों और जागीरदारों से सड़कों, पाठशालाओं और डाक शुल्क के रूप में ली जाती थी। माफीदारों पर यह शुल्क कराधान की राशि का पाँच प्रतिशत हुआ करती थी।[४६] इस्तमरारदारियों की पुलिस-व्यवस्था आरम्भ से ही इस्तमरारदारों के अधीन थी। परन्तु सन् १८७३ में सरकार ने इस्तमरारदारियों की सम्पूर्ण पुलिस-व्यवस्था का उत्तरदायित्व उनके हाथों सौंप दिया था और सरकारी पुलिस का वहाँ कोई काम नहीं रह गया था। इस्तमरारदारी व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम बलाई को चौकीदारी एवं निगरानी का उत्तरदायित्व सौंपा गया तथा जब कभी उसके क्षेत्र में किसी तरह के अपराध की घटना घटती तो उसे निकटवर्ती पुलिस थाने को इसकी सूचना देनी होती थी।

चौकीदारी व्यवस्था में परिवर्तन

सन् १८८८ में चौकीदारी-व्यवस्था में नये नियमों के अन्तर्गत कतिपय परिवर्तन लागू किए गए।[४७] जिला दण्डनायक अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक गाँव

में चौकीदारों की आवश्यक संख्या निर्धारित करता था परन्तु सामान्यतः निम्न स्तर अपनाया जाता था :—

(क) सौ से लेकर डेढ़ सौ घरों तक एक चौकीदार ।

(ख) जहां १५० घरों से अधिक की वस्ती होती वहां प्रति डेढ़ सौ घरों पर एक चौकीदार ।

(ग) साधारण रूप से सौ से कम घरों वाले गांव के लिए चौकीदार की व्यवस्था नहीं की जाती थी, परन्तु जिला-दण्डनायक उक्त गांव की स्थिति और स्वरूप को ध्यान में रखते हुए एक चौकीदार नियुक्त कर सकता था ।[४८]

नये नियमों के अन्तर्गत गांवों के समूहीकरण की व्यवस्था लागू की गई थी । जहां कहीं भी गांवों में चौकीदार की नियुक्ति के लिए आवश्यक घरों की कमी होती तो ऐसे गांवों को मिलाकर हल्का स्थापित कर दिया जाता था । यह हल्का एक चौकीदार के जिम्मे रहता था । एक चौकीदार के जिम्मे दो या तीन या इससे भी अधिक गांव निगरानी के लिए रहते थे । अधिकतर ये गांव एक दूसरे से सटे हुए होते थे ।[४९] जिस किसी ग्राम में चौकीदारों की संख्या पांच या पांच से अधिक होती थी वहां उनमें से एक चौकीदार को मुखिया बनाया जाता था, वह जमादार कहलाता था । जमादार को छोड़कर प्रत्येक चौकीदार को लाल नीली पगड़ी, एक पट्टा और खाकी रंग का कोट पहनना होता था और उसे भाला रखना पड़ता था । जमादार की वर्दी नीली पगड़ी और खाकी कोट होता था जिसकी बांई आस्तीन पर लाल पट्टी लगी रहती थी ।[५०]

प्रत्येक गांव के चौकीदार के लिए उसके गांव के लिए नियुक्त पुलिस थाने के अधिकारी को अपराध घटने पर अविलम्ब सूचना देना अनिवार्य था । यह नियम था कि ग्राम-चौकीदार का वेतन चार रुपए मासिक से कम व जमादार का मासिक वेतन सात रुपए से कम नहीं होना चाहिए । वेतन का निर्धारण जिला दंड-नायकों द्वारा किया जाता था और उसका भुगतान नगदी में होता था । ग्राम-चौकीदारों का वेतन और उनकी वर्दी इत्यादि का व्यय चौकीदार शुल्क में से चुकाया जाता था तथा यह शुल्क उक्त ग्राम या ग्रामों से वार्षिक कर के रूप में वसूल किया जाता था । प्रत्येक ग्रामों से कितना वार्षिक शुल्क निर्धारित किया जाएगा इसका निर्धारण जिला दंडनायक पर निर्भर रहता था ।[५१]

इस्तमरारदारों के पुलिस-अधिकार

सन् १८२९ में इस्तमरारदारों को न्यायिक और पुलिस-अधिकार प्रदान किए गए थे । इस्तमरारदार अपने ठिकाने या हल्के के अन्तर्गत अपराधों की जांच करते

तथा इनके हल्कों के सीमाक्षेत्र का निर्धारण समय-समय पर चीफ कमिश्नर किया करता था। इस क्षेत्र के ग्राम चौकीदार अपने यहाँ घटित अपराधों की सूचना पुलिस अधिकारी को न भेजकर इन हल्कों व ठिकानों के इस्तमरारदारों को देते थे और इस्तमरारदार थानेदार या अन्य निकट के थाने के सरकारी पुलिस अधिकारी को मामला जाँच के लिए सौंप देता था। उक्त अधिकारी इस आदेश की पालना करने के लिए बाध्य होता था तथा इस्तमरारदार को अपनी जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करता था जिस पर वह उसी तरह के निर्देश व आदेश पारित किया करता था जो आदेश या निर्देश ऐसे मामलों में पुलिस अधीक्षक पारित करने में सक्षम होता था।

पुलिस द्वारा अभियोग तैयार कर लेने पर कार्यवाही की स्थिति में उसे इस्तमरारदार के पास भेजा जाता था। यदि उक्त मामला उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर का होता तो अभियोग और पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट की सुनवाई करके अपराध के दंडनीय प्रतीत होने पर वह अभियुक्त को अभियोग की कार्यवाही और साक्षियों सहित जिला-दंडनायक अथवा निकटवर्ती सक्षम दंडनायक को सौंप देता था। यदि इस्तमरारदार को यह प्रतीत होता कि मामले में साक्ष्य पर्याप्त नहीं होने से संदेह की गुंजाइश है तथा दंडनायक को मामला प्रेषित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हैं तो वह अभियुक्त को जमानत पर या व्यक्तिगत मुचलके के आधार पर, अभियुक्त यथासमय आवश्यकता होने पर न्यायालय में उपस्थित हो जायेगा, रिहा कर देता था। किसी गंभीर अपराध के घटित होने पर, हत्या अथवा हिंसक दंगों की स्थिति में इस्तमरारदार को स्वयं घटनास्थल पर पहुँचकर जांच करनी होती थी।

सन् १८८८ में नई चौकीदारी व्यवस्था लागू की गई थी। इसके अनुसार सम्पूर्ण अजमेर-मेरवाड़ा में वेतन भोगी चौकीदारों की संख्या निम्न प्रकार थी।[५२]

		जमादार	चौकीदार
अजमेर	खालसा, जागीर व इस्तमरारदारी	१	१५०
मेरवाड़ा	खालसा	१०	२९

मेरवाड़ा-बटालियन की पुलिस-सेवाएं

सन् १८६१ तक, जिले की सामान्य शांति-व्यवस्था स्थानीय सेना के हाथों में थी। यह सेना मेरवाड़ा-बटालियन कहलाती थी और इसका मुख्य कार्यालय ब्यावर में था।

मेरवाड़ा-बटालियन द्वारा सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह में अंग्रेजों के प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने के कारण अंग्रेजों ने उसी वर्ष एक और मेर रेजीमेन्ट की स्थापना की थी जिसका मुख्य कार्यालय अजमेर में था। आर्थिक कटौती के कारण

सन् १८६१ में इसमें छँटनी कर इसे पुरानी मेर-वटालियन में विलय कर दिया गया था। मेरवाड़ा सैनिक वटालियन की वजाय अब इसका नाम मेरवाड़ा पुलिस वटालियन रखा गया था। इसे उत्तर-पश्चिमी सूवा सरकार के इन्सपेक्टर जनरल के अधीन रखवा दिया गया।[५३]

नागरिक सेवाओं का गठन

मेर रेजीमेन्ट और मेरवाड़ा-वटालियन के विलीनीकरण से सेवामुक्त हुए ५४८ व्यक्तियों से एक असैनिक पुलिस संगठन का गठन कर उसे १ जनवरी, १८६२ से पुलिस अधीक्षक के अधीन रख दिया गया था। १ जनवरी, १८६२ से उत्तर-पश्चिमी सूबों में लागू पुलिस एक्ट अजमेर-मेरवाड़ा में भी लागू कर दिया गया था।[५४] सन् १८५३ से लेकर सन् १८७० तक नागरिक पुलिस की अपराधों की जाँच-पड़ताल, रोकथाम और अभियोग चलाने की जिम्मेदारी थी। सेना का कार्य सरकारी कोषागारों, तहसील और जेल की सुरक्षा था।

मेरवाड़ा-वटालियन, कमांडर, सहायक कमांडर और ऐजुटेंट (सहायक) नामक तीन सैनिक अधिकारियों के अधीन थी। सन् १८६२ से लेकर सन् १८६६ तक कमांडर का नागरिक पुलिस सम्वन्धी कोई उत्तरदायित्व नहीं था। उप कमांडर (कमांडर इन सैकेंड) पदेन पुलिस अधीक्षक होता था और ऐजुटेंट उपअधीक्षक पुलिस के पद पर काम करता था। यह व्यवस्था उलझन भरी सिद्ध हुई क्योंकि दो छोटी श्रेणी के अधिकारियों को दो पृथक् अफसरों के अधीन काम करना पड़ता था। सन् १८६६ में नैनीताल पुलिस आयोग के सुझावों पर वटालियन का कमांडर पद और जिला पुलिस अधीक्षक का पद समाहित करके एक ही अधिकारी के अन्तर्गत रख दिया गया था और उसकी सहायता के लिए दो सहायक नियुक्त किए गए थे इन में से एक के अधीन मेरवाड़ा तथा दूसरे के अधीन अजमेर-क्षेत्र था।[५५]

सन् १८६६ में स्वीकृत कुल सैनिक पुलिस संख्या निम्नलिखित थी—[५६]

थानेदार (सव इंस्पेक्टर)	हैड कांस्टेवल	घुड़सवार	सिपाही
१५	७६	३६	३८८

उपर्युक्त नवीन व्यवस्था भी अत्यन्त असुविधाजनक सिद्ध हुई थी। कमांडर अपनी रेजीमेन्ट के साथ व्यावर में रहता था। डिप्टी कमिश्नर, जिसके साथ कमांडर को नागरिक प्रशासन सम्बन्धी मामलों के कारणों से नित्य सम्पर्क में रहना होता था, वह चालीस मील दूर अजमेर में रहता था और इस तरह वह मुख्य पुलिस अधिकारी के साथ सीधे सम्पर्क से वंचित रह जाता था। प्रथम पुलिस सहायक अजमेर में डिप्टी कमिश्नर के साथ रहते थे और कमांडर की अनुपस्थिति में जिले का पुलिस प्रशासन सम्भालते थे। यद्यपि मूलतः यह उत्तरदायित्व कमांडर का होता था। उक्त अधिकारी को प्रायः वे सभी सामान्य मामले जो चीफ कमिश्नर से विचार-विमर्श के लिए

निर्धारित होते थे, अनुमति के लिए ब्यावर भेजने पड़ते थे। इससे बहुधा विलम्ब हो जाया करता था। इसके अतिरिक्त मेरवाड़ा क्षेत्र के लिए एक पृथक् पुलिस अधिकारी नियुक्त था और उस क्षेत्र के लिए डिप्टी कमिश्नर से विचार-विमर्श के लिए कोई अधिकारी अजमेर में नियुक्त नहीं था। अतएव जिला पुलिस अधीक्षक पुलिस विभाग को कुशलता से नियंत्रित नहीं कर पाते थे। इस व्यवस्था में सबसे बड़ी बाधा यह थी कि कमांडर का ध्यान सैनिक एवं असैनिक उत्तरदायित्व में बँटा रहता था और उसे बहुधा अपनी नागरिक सेवाओं के संदर्भ में ब्यावर से बाहर रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति में सेना केवल एक ही अंग्रेज़ अधिकारी के उत्तरदायित्व में रह जाती थी। मेर कोर की विशिष्ट संरचना और मेरों के स्वभाव को देखते हुए यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक था कि मेर कोर की कार्य-कुशलता एवं अनुशासन तथा सद्भावना के हित में कमांडर का अपनी कोर (corps) से अलग रहना कहाँ तक उचित है? मेर कोर (corps) के कमांडर की सैनिक सेवाओं और असैनिक सेवाओं में भारी विरोधाभास भी था तथा इन दोनों विभागों को एक ही पद के अन्तर्गत रखने का निर्णय उचित प्रतीत नहीं होता था। मेर कोर के गार्ड सभी नागरिक सेवा का उत्तरदायित्व वहन करते थे परन्तु नागरिक पुलिस किसी भी रूप में मेर कोर (corpS) के कार्यों से सम्बन्धित नहीं थी।[५७]

अतएव इन तीन अधिकारियों में से दो अधिकारी कमांडर और ऐजुटेंट को स्थाई-रूप से मेर कोर (corps) से ही सम्बन्धित रखा गया और तृतीय अधिकारी को अजमेर और ब्यावर के जिला पुलिस अधीक्षक के पद पर ६०० रुपए मासिक वेतन पर सन् १८७० में नियुक्त किया गया था। इस व्यवस्था के फलस्वरूप व्यवस्था संबंधी बाधाएं समाप्त हो गईं थीं। इसके परिणामस्वरूप नागरिक पुलिस डिप्टी कमिश्नर एवं जिला पुलिस अधीक्षक के सीधे नियंत्रण में आ गई जिससे सम्बन्धित मामलों में यथासमय व्यक्तिगत विचार-विमर्श द्वारा निर्णय लेने की सुविधा संभव हो गई थी।[५८]

सन् १८७० में मेरवाड़ा-बटालियन को पुनः पूर्व सैनिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया था। सन् १६७१ में अजमेर पुलिस विभाग को भी उत्तर-पश्चिमी सूबा के इन्सपेक्टर जनरल पुलिस के नियंत्रण से हटाकर अजमेर-मेरवाड़ा कमिश्नर के हाथों में सौंप दिया गया था।[५६] एक पुलिस इंसपेक्टर मेरवाड़ा में नियुक्त किया गया और उसके तत्वावधान में पाँच थाने ब्यावर, जवाजा, जस्साखेड़ा, टाडगढ़ और देवर में स्थापित किए गए। इन थानों के अधीन अन्य कई चौकियां कायम की गईं थीं। प्रत्येक गाँव में नियुक्त चौकीदार को वेतन भी सीधा पुलिस विभाग से चुकाया जाता था।

सन् १८७७ में जिला पुलिस सेवा की निम्नांकित स्थिति थी—[१०]

यूरोपीय अधिकारी एस० ओ० और इन्सपेक्टर।	भारतीय इन्सपेक्टर थानेदार, हैडकांस्टेबल	घुड़सवार	सिपाही	
३	९३	४०	४४६	कुल ५८२

इसी वर्ष पुलिस थानों को भी तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था। प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी और पुलिस चौकियां। अजमेर में ६ प्रथम श्रेणी के थाने और ६ द्वितीय श्रेणी के तथा ९ पुलिस चौकियां थीं। मेरवाड़ा में ३ प्रथम श्रेणी के, २ द्वितीय श्रेणी और १६ पुलिस चौकियां निम्न तरह से स्थापित की गईं—[११]

जिला	पुलिस थाने का नाम	पुलिस चौकी का नाम	विशेष
		प्रथम श्रेणी	
अजमेर	अजमेर	सराधना	
	सिटी एक्सटेन्शन		
	रेल्वे वर्कशॉप		
	नसीराबाद	दिल्ली दरवाजा,	शहर खास
	मांगलियावास	आगरा दरवाजा,	
	भिनाय	त्रिपोलिया दरवाजा	
	गोयला	ओस्री दरवाजा	
	केकड़ी	सराय	
		लोहागल	उपनगर अजमेर
		मदार पहाड़ियां	
		दांता	
		खरवा	
		चांदनवाड़ा	
		शोखला	
		द्वितीय श्रेणी	
अजमेर	पीसांगन	नागोला	
	गेगल	हरमाड़ा	
	श्री नगर	देवली	
	सावर	सथाना	
	मसूदा	नांद	
	पुष्कर	—	

प्रथम श्रेणी

मेरवाड़ा	टाडगढ़	बराखान	
	जस्साखेड़ा		
	ब्यावर	रूपनगढ़, सेंदड़ा अजमेरी दरवाजा सूरजपोल, मेवाड़ी दरवाजा, चांग दरवाजा	ब्यावर शहर

द्वितीय श्रेणी

खेर	बाघाना
जवाजा	बर

अजमेर-मेरवाड़ा के दंडनायक के अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी क्षेत्रीय व्यवस्था लागू होने के फलस्वरूप पुलिस चौकियों में भी परिवर्तन आवश्यक हो गया था।[६२] इसलिए सन् १६०३ में निम्न पुलिस थानों और पुलिस चौकियों की स्थापना की गई—[६३]

जिला	पुलिस थाने का नाम	पुलिस चौकी का नाम	विशेष
		प्रथम श्रेणी	
अजमेर	अजमेर नगरपालिका	मदार दरवाजा, औस्नी दरवाजा, त्रिपोलिया दरवाजा, आगरा दरवाजा, केसरगंज, सराय।	अजमेर शहर
		मदारनाका, रेल्वे वर्कशॉप केसर बाग, आनासागर, बांडी नदी।	देहात
	अजमेर इम्पीरियल	सराधना,	
	नसीराबाद	रेस कोर्स, रेल्वे स्टेशन लोहारवाड़ा दांता	नसीराबाद देहाती क्षेत्र
	गोयला	सिराना	
	केकड़ी	बोगरा	
	भिनाय	बांदनवाड़ा	
	मंगलियावास	देवली	

द्वितीय श्रेणी

	पुष्कर	नांद
	पीसागन	नांगलाव
	गेगल	हरमाड़ा
	श्री नगर	सिघाना
	मसूदा	
	सरवाड़	देवली

प्रथम श्रेणी

मेरवाड़ा	ब्यावर	अजमेरी दरवाजा,
		सूरजपोल, मेमुनीदरवाजा ब्यावर शहर
		चांगगेट
		सेनेवा चौकी
		रूपनगर
	जस्सा खेड़ा	छावनी
	टाडगढ़	बराखान
	जवाजा	भीम
	देवर	बाघाना

जस्साखेड़ा पुलिस थाने के अन्तर्गत मई १९०३ में करियादेह की एक नई पुलिस चौकी स्थापित की गई थी।[६४] करियादेह और सराधना की पुलिस चौकियाँ सन् १९०९ में समाप्त कर दी गई थीं। इन मामूली परिवर्तनों के अतिरिक्त इस काल में अन्य कोई विशेष परिवर्तन पुलिस थानों और चौकियों में नहीं किया गया।[६५]

सन् १८७७ में अजमेर जिला पुलिस की संख्या निम्न थी:—[६६]

यूरोपीय अधिकारी पुलिस अधीक्षक एवं इन्सपेक्टर।	भारतीय इन्सपेक्टर, थानेदार और हैड कांस्टेबल	घुड़सवार	सिपाही	कुल
३	९३	४०	४४६	५८२

सन् १८८३ के उत्तरार्द्ध में नगरपालिका पुलिस और छावनी पुलिस का प्रादुर्भाव हुआ। सन् १८३३ के बाद शहरी क्षेत्रों में प्रत्येक नगरपालिका अपनी सीमाओं में चौकसी एवं गश्त तथा सामान्य अपराधों की रोकथाम के लिए अपना अलग पुलिस बंदोबस्त करने लगी। अजमेर नगरपालिका की स्थापना सन् १८३३ में हुई थी। इसके पूर्व जब भारी वर्षा के कारण शहर पनाह की दिवारें कई जगहों पर गिरने लगीं और मरम्मत अनिवार्य हो गई तो एक स्वायत्त कोष की स्थापना की

गई थी। यह राशि शहर चौकसी एवं गश्त कार्यों पर भी खर्च की जाने लगी। सन् १८६७ में उक्त स्वायत्त कोष नगरपालिका कोष में परिवर्तित कर दिया गया।[६७] नगरपालिका में उन दिनों केवल पुलिस व्यवस्था के लिए स्वायत्त कोष से धन प्रदान करने के अतिरिक्त इस संबंध में और कोई जिम्मेदारी वहन नही करती थी। इसलिए सामान्य पुलिस विभाग पर इस प्रशासनिक कदम से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सन् १८८३ के पश्चात् नगर पालिका को इस आर्थिक भार से भी अपनी आय को अन्य कार्यों पर व्यय करने-हेतु मुक्त कर दिया गया था। अजमेर नगरपालिका नियम सन् १८६६ के अन्तर्गत नगरपालिका द्वारा जो पुलिस बंदोबस्त स्थापित किया गया था उसमें या तो चौकीदार नियुक्त किए गए थे अथवा सरकार के पुलिस कर्मचारियों की सेवा इस कार्य के लिए प्राप्त करनी थी।[६८]

सन् १८८८ में पहली बार पुलिस सेवा परीक्षा आरम्भ की गई।[६९] परीक्षा समिति में निम्न पदाधिकारी सदस्य थे—

१—जिला पुलिस अधीक्षक	अध्यक्ष
२—एक दंड नायक	सदस्य
३—परीक्षा पारित इन्सपेक्टर	सदस्य

परीक्षार्थी को निम्नांकित तीन विषयों में परीक्षा देनी पड़ती थी:-[७०]

१—स्थानीय भाषा

२—विभागीय जांच एवं

३—कवायद।

परीक्षार्थी से यह अपेक्षा की जाती थी कि उसे भारतीय दंड-संहिता, जाब्ता फौजदारी कानून, अपरिवर्तित पुलिस सेवा-नियमों व आदेशों का ज्ञान विविध कानूनों, विदेशी-कानून, प्रत्यर्पण-कानून, चौकीदार-कानून, साक्षी-कानून, सन् १८८८ का छावनी-कानून, मवेशी-अपहरण या अवैध प्रवेश-कानून, जीवों पर क्रूरता नियमन-कानून, जंगलात-कानून, जुआ, निरोधक-कानून, अफीम-कानून, डाकघर-कानून और नमक चूंगी कानून की सामान्य जानकारी होनी चाहिए।[७१]

यदि नियुक्ति के बाद दो वर्षों में कोई इन्सपेक्टर उक्त परीक्षा पारित करने में असफल रहता तो उसके पद में अवनति या उसे सेवा से अलग किया जा सकता था। थानेदारों, हैड कान्सटेबलों, मुन्शी और कांस्टेबलों के लिए पृथक् परीक्षाएं निर्धारित की गई थीं। प्रत्येक जुलाई माह में इन परीक्षाओं का आयोजन किया जाता था। सभी थानेदारों, मुन्शी व हैड कांस्टेबलों को उक्त परीक्षाएं उत्तीर्ण करना अनिवार्य था। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना उच्च पद पर नियुक्त या पदोन्नति नहीं की जाती थी।[७२]

सन् १९०३ में, जिला पुलिस-अधीक्षक के नियंत्रण में नियमित सभी श्रेणी के पुलिस कर्मचारियों की संख्या ९०४ थी। इसके अनुसार ३.८ वर्गमील क्षेत्र पर १ पुलिस कर्मचारी तथा प्रति ६७७ लोगों पर १ पुलिस कर्मचारी नियुक्त था। इस विभाग पर कुल व्यय-राशि ९,१५,८२० रुपए थी जो प्रति व्यक्ति पौने चार आने पड़ती थी। सरकारी कोष से इस राशि में ८८,६६२ रुपए प्राप्त होते थे। शेष राशि तीनों नगरपालिकाओं, नसीराबाद छावनी तथा कुछ शराब के ठेकेदारों से प्राप्त होती थी।[७३]

१ अप्रेल, १९११ से अजमेर और ब्यावर नगरपालिकाओं तथा कुछ समय बाद केकड़ी नगरपालिका को भी पुलिस-सेवाओं के कार्य से मुक्त कर दिया गया था।[७४] सन् १९१० से स्थानीय पुलिस अधिकारियों को पुलिस सेवा-प्रशिक्षण के लिए मुरादाबाद भेजा जाने लगा।[७५]

उपरोक्त काल में पुलिस-प्रशासन को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। पुलिस सेवा में भरती में पूरी सावधानी नहीं बरती जा सकती थी क्योंकि स्थानीय कवायद का मैदान छोटा था तथा साथ ही एक बार किसी को भर्ती कर लेने पर उसे निकालना कठिन होता था। यद्यपि अन्य प्रदेशों में असामाजिक एवं अपराधी तत्वों को जिले से निष्कासित करने एवं उनके गिरोह को भंग करने की व्यवस्था थी तथापि रियासतों से जुड़े हुए अजमेर में यह कदम अव्यावहारिक था। फलस्वरूप चयन में अत्यन्त सावधानी बरतना अत्यन्त आवश्यक था। भरती किए गए व्यक्तियों में सामान्य ज्ञान का स्तर निम्न पाया जाता था।[७६] कभी-कभी तो सजा पाए व्यक्ति अथवा चालीस साल की उम्र से भी अधिक आयु के लोग भरती कर लिए जाते थे।[७७]

अजमेर पुलिस सेवा में दूसरे प्रदेशों के लोगों की संख्या अधिक थी। अधिकांश कर्मचारी उत्तर-पश्चिमी सूबा और अवध से थे। स्थानीय लोगों को समुचित अवसर प्रदान करने की दृष्टि से मीणों को भरती के लिए प्रोत्साहित किया गया था क्योंकि ये लोग क्षेत्र की स्थिति से परिचित होने के कारण अच्छे सिपाही सिद्ध हुए थे। उन दिनों कर्मचारियों में व्याप्त अनुशासन एवं व्यवहार को भी अच्छा नहीं कहा जा सकता था। अनुशासनहीनता एवं कर्त्तव्यों की अवहेलना के लिए दोषी कर्मचारियों का प्रतिशत पच्चीस के लगभग बना रहता था।[७८]

पुलिस सेवा की इस असन्तोषजनक स्थिति का मूल कारण स्थानीय लोगों में से उचित व्यक्तियों को स्थान न मिलना था। इस कमी की पूर्ति दूसरे प्रदेशों की पुलिस सेवा कर्मचारियों से तथा मुख्यतः उत्तरी-पश्चिमी सूबा पुलिस विभाग से की जाती थी। इन कर्मचारियों पर स्थानीय जिला पुलिस अधीक्षक का प्रभाव नगण्य सा था।

उन दिनों पुलिस विभाग द्वारा गंभीर अपराधों की सफल जांच-पड़ताल तथा अपराधियों को दंड का प्रतिशत अत्यन्त निम्न था। इस असफलता का प्रमुख कारण जिले की विशेष भौगोलिक स्थिति थी। अजमेर चारों ओर से रियासतों से घिरा हुआ था, जहां बहुधा अपराधी भागकर शरण ले लेते थे। अजमेर के एक महत्वपूर्ण रेल केन्द्र बन जाने तथा देश के बड़े-बड़े शहरों से जुड़ जाने के कारण भी यहां बाहरी विशेषकर मुरादाबाद, अलीगढ़ और आगरा के कुख्यात अपराधी असामाजिक तत्व अधिक संख्या में आकर्षित होने लगे थे। स्थानीय अपराध जांच विभाग के अधिकांश अधिकारी अनुभवहीन एवं जांच-पड़ताल की वैज्ञानिक एवं सुचारू पद्धति से अनभिज्ञ थे। अधिकांश मुकदमों में गंभीर अपराधों के अभियुक्त भी फौजदारी अदालत में जांच के दौरान पर्याप्त प्रमाणों के अभाव तथा अन्य प्रक्रिया सम्बन्धी त्रुटियों के कारण सजा पाने से बच जाते थे क्योंकि कतिपय पुलिस अधिकारियों को कानूनी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था। अधिकांश मुकदमों में थानेदार अदालती कार्यवाही के दौरान पर्याप्त गवाहियां प्रस्तुत करने में असफल रहते थे। अपराधों की जांच-पड़ताल का कार्य अनुभवहीन व अप्रशिक्षित थानेदारों के हाथों में था।[७९]

उन दिनों अजमेर-मेरवाड़ा में पुलिस सेवा लोकप्रिय नहीं थी। इसमें छुट्टी के कठिन नियम व कम वेतन होने के कारण लोगों को भरती होने में हिचकिचाहट रहती थी। पुलिस विभाग में सेवामुक्त होने में एक तरह से होड़ लगी रहती थी, कभी-कभी तो इन त्यागपत्रों की संख्या एक साल में सौ तक पहुंच जाती थी।[८०] इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि अधिकांश रंगरूट अकाल एवं सूखे की स्थिति टालने के लिए पुलिस में भरती हो जाते थे और ज्योंही वह स्थिति टल जाती, वर्षा होते ही अविलम्ब त्यागपत्र देकर भाग छूटते थे। गर्मी अथवा अकाल के दिनों में लोगों का पुलिस सेवा के प्रति अस्थाई आकर्षण हो जाता था और वे परिस्थितियोंवश ही यह सेवा अंगीकार करते थे। इसके प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि नहीं थी। अजमेर जिले के स्थानीय लोगों में से दो भारतीय रेजीमेन्टों में भी भरती हुआ करती थी। इन रेजीमेन्टों के वेतनमान पुलिस सेवा की अपेक्षा अधिक आकर्षक थे। एक नये रंगरूट को फौज में भरती होने पर एक सामान्य कांस्टेबल के वेतन से अस्सी प्रतिशत अधिक प्राप्त हुआ करता था। जबकि पुलिस के कर्मचारियों को अपने वेतन में से ही वर्दी तथा अन्य साज-सामान की कीमत भी चुकानी पड़ती थी। इस तरह शेष बची राशि में एक विवाहित दंपति का जीवनयापन तो अत्यन्त कठिन अवश्य कहा जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि पुलिस सेवा के सभी कर्मचारियों में ऋण संक्रामक रूप से व्याप्त था।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व न्याय-व्यवस्था

अजमेर-मेरवाड़ा में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व नियमित व्यवस्था नहीं थी। विवादों के फैसले बहुधा तलवारों से ही हुआ करते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी या अपने

सगे-सम्बन्धियों की शक्ति पर आश्रित रहता था। अधिकतर अपराध एक जाति के लोगों द्वारा दूसरी जाति की महिलाओं का अपहरण अथवा विवाह-विच्छेद के होते थे। [८१] बहुधा इन झगड़ों का निर्णय अंधविश्वास भरी प्रक्रियाओं के द्वारा किया जाता था। एक प्रचलित तरीका तो यह था कि मन्दिर या पवित्र स्थान पर विवादास्पद संपत्ति को रखकर उसे उठाने के लिए चुनौती दी जाती थी और यह माना जाता था कि इस तरह अनाधिकृत व्यक्ति की एक धार्मिक स्थान से उस वस्तु को उठाने की हिम्मत नहीं होगी या उस पर परमात्मा का कोप होगा। कई बार विवाद का हल सौगन्ध उठाकर करवाया जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि यदि निश्चित अवधि में सौगंधकर्ता की स्वयं की अथवा उसके परिवार में से किसी की मृत्यु होगी अथवा उसके मवेशी या सम्पत्ति नष्ट हो जाएगी, तो यह माना जाएगा कि उसके द्वारा उठाई गई सौगन्ध असत्य थी और वह व्यक्ति अपराधी मान लिया जाता था। उन दिनों इसी तरह की अंधविश्वास भरी प्रथाएं न्याय के नाम पर प्रचलित थीं।

महिलाओं के अपहरण, विवाह-समझौते के भंग करने, ज़मीन के मुकदमें, ऋणों के मुकदमें तथा सीमा-विवाद सम्बन्धी मामलों में या उन सभी मामलों में जिसमें किसी पक्ष को क्षति अथवा चोट पहुँचाई गई हो, आदि मामलों में पंचायतों का भी उपयोग किया जाता था। असामान्य बड़े अपराधों के अतिरिक्त पंचायत ही लोगों में न्याय-प्रशासन का एकमात्र साधन थी।

आरम्भ में मेरवाड़ा के सुपरिंटेंडेंट केवल राजस्व सम्बन्धी मामलों में हस्तक्षेप करते थे। दीवानी और फौजदारी मामलों में पंचायतें ही निर्णायक थीं। [८२] उन दिनों अजमेर स्थित सुपरिंटेंडेंट जोधपुर, जैसलमेर और किशनगढ़ रियासतों के लिए पोलिटिकल एजेन्ट भी थे। इसलिए स्थानीय फौजदारी मामले उनके एक सहायक के अधीन थे एवं दीवानी मामलों को सदर अमीन तथा असाधारण गंभीर मामले सुपरिंटेडेंट स्वयं सुनते थे।

सन् १८४२ में डिक्सन को अजमेर और मेरवाड़ा का सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किया गया था। सन् १८५०-५१ में कर्नल डिक्सन को दीवानी और फौजदारी अधिकार प्रदान किए गए थे और उनकी सहायता के लिए दो सहायक (एक अजमेर में तथा दूसरा मेरवाड़ा में) नियुक्त किए गए थे। इन दो अधिकारियों के अतिरिक्त अजमेर में दो सदर अमीन भी नियुक्त थे जो दीवानी और फौजदारी काम देखा करते थे। [८३]

सन् १८४६-४७ से दीवानी मुकदमों की सुनवाई के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया लागू की गई थी [८४]

क्रम	न्यायालयों का पद	दीवानी न्यायाधीश का राशि संबंधी	आगे अपील

		अधिकार अधिक से अधिक	
१.	पंडित अदालत	१ से ५० तक	कनिष्ठ सदर अमीन
२.	कनिष्ठ सदर अमीन	५० से ६०० तक	वरिष्ठ सदर अमीन
३.	वरिष्ठ सदर अमीन	६०० से ४००० तक	सुपरिटेंडेंट
४.	सहायक सुपरिटेंडेंट	४००० से अधिक	सुपरिटेंडेंट
५.	सुपरिटेंडेंट	केवल अपीलों से सम्बंधित	

उन दिनों सुपरिटेंडेंट ने नियमित वादों की सुनवाई करना स्थगित कर दिया था अतएव बहुत ही कम अपीलें की जाने लगी थीं।[८५]

कमिश्नर सुपरिटेंडेंट और सदर अमीन के दायित्व :—

दीवानी मुकदमें में सुपरिटेंडेंट की कचहरी से फैसले की अपील कमिश्नर को की जाती थी। हत्या के मामलों में जहां सुपरिटेंडेंट को आदेश जारी करने को सक्षम नहीं था, कमिश्नर आदेश जारी करता था। विशेष मामलों में सुपरिटेंडेंट कार्यालय की अपील कमिश्नर को प्रस्तुत होती थी।[८६]

उन दिनों सुपरिटेंडेंट के अधिकार भी कम नहीं थे। वह दोनों जिलों के दीवानी, फौजदारी, राजस्व तथा चूंगी आदि प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तरदायी था।[८७] वह अपने अधीनस्थ सभी अदालतों को आवश्यक आदेश जारी कर सकता था। दीवानी मामलों में वह अपने सहायक सुपरिटेंडेंट और सदर अमीन की कचहरियों के फैसलों की अपील सुना करता था। उसे राजस्व में ऋण प्रदान करने तथा राजस्व-भुगतान स्थगित करने के भी अधिकार थे। चूंगी वसूली के सामान्य कामों पर उसका पूर्ण नियंत्रण था।

वरिष्ठ सदर अमीन छः सौ रुपए से लेकर चार हजार की राशि तक के दीवानी मुकदमों का निर्णय करता था। फौजदारी मुकदमें तथा पुरानी प्रथा के अनुसार संपत्ति पर लिए गए बलात् कब्जों के मुकदमों की भी सुनवाई करता था। कनिष्ठ सदर अमीन के फैसले के विरुद्ध दायर की गई अपील की सुनवाई करने का उसे अधिकार प्राप्त था।[८८] कनिष्ठ सदर अमीन को ६०० रुपयों की राशि तक के दीवानी मामले निर्णीत करने व पंडित अदालत के फैसलों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार था। उसका काम अजमेर शहर और बाहर की इमारतों की देखभाल का भी था। वह सभी काम सहायक अधीक्षक के निर्देशन में करता था और आवश्यक होने पर सहायक अधीक्षक या सुपरिटेंडेंट को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता था।[८९] पंडित अदालत केवल ५० रुपयों की राशि तक के ही मामले सुना करती थी। इसका कार्य-क्षेत्र अजमेर शहर तक ही सीमित था।[९०]

मेरवाड़ा में सन् १८५९ के एक्ट ८ के लागू होने तक सभी दीवानी मामले पंचायतें निपटाती थीं।[९१] सन् १८१८ से सन् १८४३ तक अजमेर में यह

प्रथा प्रचलित थी कि स्थानीय लोगों और महाजनों अथवा अन्य लोगों के बीच सभी राशिगत लेन-देन के प्रपत्रों पर सुपरिंटेंडेंट के हस्ताक्षरों का होना अनिवार्य था। लेनदार को स्वयं उसके वकील या वकील के संबंधित अधिकार के समक्ष प्रस्तुत होकर प्रपत्र की लिखापढ़ी सत्य होने की तस्दीक करनी होती थी। इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था कि लेनदार अपनी सारी संपत्ति या उसका कोई भाग बंधक रख रहा है। केवल यही पर्याप्त समझा जाता था कि संबंधित पक्ष ने पत्र की लिखापढ़ी को मौखिक तौर से सही स्वीकार कर लिया है। यदि लेनदार स्वयं प्रस्तुत होकर एक लिखित प्रपत्र प्रस्तुत कर इकरारनामों की स्वीकृति की प्रार्थना करता तो कार्यवाही में विलम्ब नहीं होता था। एक सादे कागज़ पर इस आशय का प्रार्थना-पत्र ही प्रर्याप्त समझा जाता था तथा यह मान लिया जाता था कि सभी कानूनी खर्चे चुकाकर दीवानी अदालत की कार्यवाही पूरी की जा चुकी है। इस तरह की प्रक्रिया के फलस्वरूप अजमेर की जनता का एक बड़ा भाग सूदखोरों के चंगुल में फँस गया था। यदि कोई इस्तमरारदार सरकारी लगान चुकाने में असमर्थ होता तो वह किसी साहूकार को उस राशि के बदले कुछ आय निश्चित वर्षों के लिए हवाले कर देता था। कर्नल डिक्सन ने स्वयं इस प्रथा के दोषों एवं ऋणग्रस्तता की स्थिति का चित्रण किया है। उसने इसे समाप्त करने का सबसे पहले प्रयत्न किया था।

इसके स्थान पर नियामक प्रान्तों में सिविल प्रोसीजर कोड के लागू होने के पहले जो व्यवस्था थी, वह प्रारम्भ की गई। न्यायालय में वाद प्रस्तुत होने पर प्रतिवादी को स्वयं अथवा वकील के माध्यम से पन्द्रह दिन में उपस्थित होने का नोटिस जारी किया जाता था। यदि वह उक्त अवधि में उपस्थित नहीं होता तो दावे का फैसला एक तरफा कर दिया जाता था।[६२] यदि प्रतिवादी अपना जवाब दावा तथा अन्य औपचारिकताएं पन्द्रह दिन की अवधि में पूरी कर देता तब मुद्दे निर्धारित किए जाते थे और वादी को अपने सबूत और साक्षी प्रस्तुत करने के लिए ६ सप्ताह का अवसर दिया जाता था। इस तरह मामले की सुनवाई आरम्भ होने के पूर्व तीन माह का समय निरर्थक व्यतीत हो जाता था। इसके पश्चात् भी मूल मुद्दों के निर्धारण में भी अनावश्यक विलंब होता था।[६३]

न्यायिक विकास (१८४८–१८७१)

सन् १८४८ तक ए. जी. जी. का आवास अजमेर में ही था और जिला कमिश्नर तथा सुपरिंटेंडेंट उनके अन्तर्गत काम करते थे। तबतक यह जिला गैर-नियामक था। साल में केवल एक बार राजस्व का आय-व्यय प्रस्तुत होता था। यहाँ न तो कानून ही लागू थे और न सदर न्यायालय का यहाँ अधिकार-क्षेत्र ही था।[६४] कर्नल सदरलैंड के निधन के पश्चात् जब कर्नल लो ने पदग्रहण किया तब ए. जी. जी. से अधिकांश अदालतों सम्बन्धी कार्य सुपरिंटेंडेंट को हस्तांतरित किया

गया था।[९५] सन् १८५३ में ए. जी. जी. को अजमेर-मेरवाड़ा के नागरिक प्रशासन के भार से मुक्त कर दिया गया था।[९६] उस समय से न्यायिक अपीलें ए. जी. जी. राजपूताना के वजाय सदर दीवानी अदालत, आगरा को होने लगी थी।[९७]

सन् १८६२ में पुलिस एवं न्याय विभागों का पृथक्करण कर दिया गया था।[९८] फौजदारी अदालतें उच्च न्यायालय के अधीन रखी गई थीं। उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार द्वारा जो कानून लागू थे वे धीरे-धीरे अजमेर-मेरवाड़ा में लागू किए गए थे। इस तरह कुछ वर्षों में अजमेर-मेरवाड़ा गैर नियामक जिले से नियामक जिले में परिवर्तित हो गया था।[९९]

निम्न आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि जिले में मुकदमों की निरन्तर अभिवृद्धि होती रही:—[१००]

सत्र न्यायालय में वाद की संख्या।

१८६४	१५
१८६५	००
१८६६	१८
१८६७	५
१८६८	८

फौजदारी अपीलों की संख्या

१८६४	२४
१८६५	७१
१८६६	६७
१८६७	६०
१८६८	—

दीवानी अपीलें और वादों की संख्या

१८६४	३८
१८६५	६०
१८६६	६८
१८६७	६४

त्रुटिपूर्ण व्यवस्था

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अजमेर में न्याय-व्यवस्था का जो विकास हुआ उसमें अभी भी कई त्रुटियां थीं। एजेन्ट का कार्यालय ६ माह के लिए आबू में रहता था। उसे अजमेर के राजस्व आयुक्त, सत्र न्यायाधीश व सदर दीवानी अदालत के न्यायाधीश के रूप में काम करने के अतिरिक्त कतिपय विविध एवं सामान्य प्रशासनिक मामलों में उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार के विभिन्न विभागाध्यक्षों के अन्तर्गत भी कार्य

करना पड़ता था।[१०१] इस तरह ए. जी. जी. पर प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों का बहुत भार था। ए. जी. जी. अजमेर में एक वर्ष में एक बार सत्र न्यायालय की बैठक कर पाते थे अतएव अभियुक्तों को पूरे साल भर हवालात में रखा जाता था।[१०२] कार्याधिक्य के कारण एजेन्ट का राजनीतिक कार्य भी अत्यधिक शिथिल हो गया था। वह पड़ोसी रियासतों के यथा समय दौरे तक कर पाने में असमर्थ थे। स्थिति यह हो गई थी कि कर्नल कीटिंग को १६ अप्रेल, १८६८ के पत्र में स्पष्ट कहना पड़ा था कि कोई भी व्यक्ति जिसे ए. जी. जी. का कार्यभार भी वहन करना पड़ता हो, अजमेर जिले का विकास करने की स्थिति में नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रशासन का पुनर्गठन अनिवार्य हो गया था।[१०३]

न्यायपालिका का पुनर्गठन (सन् १८७२):—

इस जिले में १ फरवरी से अजमेर न्यायालय नियमन कानून १८७२ में लागू हुआ। न्यायालयों को आठ श्रेणियों में पुनर्गठित किया गया—[१०४]

१–तहसीलदार की कचहरी।
२–सहायक कमिश्नर का न्यायालय (साधारण अधिकार)।
३–सहायक कमिश्नर-न्यायालय (पूर्ण अधिकार)।
४–छावनी दंडनायक-अदालत।
५–न्यायिक सहायक कमिश्नर-अदालत।
६–डिप्टी कमिश्नर-कचहरी।
७–कमिश्नर-न्यायालय।
८–चीफ कमिश्नर-न्यायालय।

सन् १८७२ से चीफ कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, न्यायिक सहायक कमिश्नर, छावनी दंडनायक, सहायक कमिश्नर एवं अतिरिक्त सहायक कमिश्नरों की नियुक्तियां गवर्नर जनरल की कौंसिल द्वारा की जाती थी[१०५] तथा तहसीलदारों की नियुक्ति का अधिकार चीफ कमिश्नर को था।[१०६]

अधिकार-क्षेत्र

चीफ कमिश्नर गवर्नर जनरल की आज्ञा से किसी न्यायालय की स्थानीय सीमाओं का निर्धारण एवं परिवर्तन कर सकता था।[१०७] अजमेर के विभिन्न न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र इस प्रकार थे—[१०८]

कार्यालय-नाम	फौजदारी अधिकार-क्षेत्र	दीवानी अधिकार-क्षेत्र
१—तहसीलदार	चीफ कमिश्नर द्वारा जाब्ता फौजदारी कानून के तहत समय-समय पर प्रदान	दीवानी अदालत के अधिकार, जिनमें वाद की राशि सौ रुपए से

	किए गए अधिकार।	अधिक मूल्य की नहीं हो।
२—असिस्टेंट कमिश्नर (सामान्य अधिकार)	,, ,,	दीवानी अदालत के अधिकार जहाँ वाद की राशि पाँच सौ रुपए के मूल्य से अधिक की नहीं हो।
३—असिस्टेंट कमिश्नर (सम्पूर्ण अधिकार)	,, ,,	लघुवाद न्यायालय के अधिकार जहाँ वाद की लघुवाद न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के हों और वाद की राशि १ हजार से अधिक नहीं हो।
४—छावनी दंडनायक-अदालत	,, ,,	लघुवाद न्यायालय के अधिकार जहाँ वाद लघुवाद न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र का हो और वाद की राशि १ हजार से अधिक नहीं हो।
५—न्यायिक सहायक कमिश्नर	दंडनायक के सम्पूर्ण अधिकार	लघुवाद न्यायालय के सग्राम अधिकार जहाँ वाद मूल्य १००० रुपयों से अधिक न हो।
६—डिप्टी कमिश्नर	दंडनायक के सम्पूर्ण अधिकार तथा जाब्ता फौजदारी के ४४५ ए के अन्तर्गत निहित अधिकार। अधीनस्थ दंडनायकों के निर्णय के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार	दीवानी न्यायालय के किसी भी राशि तक के अधिकार। उपरोक्त ५ श्रेणी के न्यायालयों में से किसी भी वाद, अपील या जारी कार्यवाही के स्थानांतरण करने का अधिकार।

		इन्हें वह स्वयं सुन सकते थे अथवा अन्य सक्षम न्यायालय को वाद की राशि के आधार पर हस्तांतरित कर सकते थे।
७—कमिश्नर	सत्र न्यायाधीश के अधिकार सम्पूर्ण अधिकारयुक्त दंडनायक के न्यायालय तथा डिप्टी-कमिश्नर के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने के अधिकार।	जिला न्यायालय के अधिकार, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ श्रेणी के न्यायालयों के फैसले के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार।
८—चीफ कमिश्नर सदर न्यायालय के अधिकार।	,, ,,	सभी वादों में जहाँ नियमों के अन्तर्गत कमिश्नर के निर्णय के विरुद्ध अपील की सुनवाई के अधिकार। अपील सम्बन्धी उच्चतर न्यायालय के अधिकार।

चीफ कमिश्नर

प्रथम ६ श्रेणी के न्यायालयों पर कमिश्नर का सामान्य नियंत्रण था।[109] चीफ कमिश्नर गवर्नर जनरल की स्वीकृति से प्रथम चार न्यायालयों में से किसी भी न्यायालय में निहित अधिकार आनरेरी रूप में किसी एक व्यक्ति या तीन व तीन से अधिक व्यक्तियों को बैंच के रूप में प्रदान करने का आदेश दे सकते थे।[110] चीफ कमिश्नर ब्यावर के सहायक कमिश्नर को न्यायिक सहायक कमिश्नर के अधिकार प्रदान कर सकता था। वह किसी भी छावनी-दंडनायक के सहायक कमिश्नर को भी विशेष अधिकार प्रदान कर सकता था।[111] वह किसी भी नायब तहसीलदार को तहसीलदार के सम्पूर्ण अथवा अंशत: अधिकार प्रदान करने में सक्षम था। चीफ कमिश्नर अतिरिक्त सहायक कमिश्नर को सहायक कमिश्नर के सम्पूर्ण अथवा अंशत: सामान्य अथवा पूर्ण अधिकार प्रदान कर सकता था।[112] उसे मातहत अदालतों से वाद का प्रत्याहरण करने, स्वयं उसकी सुनवाई करने अथवा उसे अन्य सक्षम न्यायालय को सौंपने का भी अधिकार प्राप्त था।[113]

दीवानी न्याय-प्रक्रिया [114]

अजमेर न्यायालय-नियमन, १८७७ के अन्तर्गत इस क्षेत्र का दीवानी न्याय-प्रशासन में पुनः परिवर्तन किया गया था।[115] इस क्षेत्र में सबसे छोटी अदालत मुन्सिफ की थी। इसे सौ रुपए तक के वाद निर्णीत करने के अधिकार प्राप्त थे।[116] अजमेर, ब्यावर व टाडगढ़ के तहसीलदारों और नायब तहसीलदारों को यह अधिकार प्राप्त थे।[117] भिनाय, पीसांगन, सरवाड़, खरवा, बांदनवाड़ा और देवली के इस्तमरारदारों को भी उक्त अधिकार प्राप्त थे। मुन्सिफ कोर्ट से अपील उप न्यायाधीश (सब जज)[118] प्रथम श्रेणी सुनता था जिसकी मातहती में मुन्सिफ होता था। सब जज से अपील कमिश्नर जिला न्यायाधीश के रूप में सुनता था।[119] चीफ कमिश्नर की अदालत में कमिश्नर के यहां से अपीलें होती थीं।[120] पांच सौ की राशि तक के दीवानी वाद सुनने के अधिकार छावनी दंडनायक देवली तथा अतिरिक्त सहायक कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को प्राप्त थे।

निम्न अधिकारियों को प्रथम श्रेणी के दीवानी न्यायाधीश के अधिकार प्राप्त थे जो दस हजार मूल्य राशि तक के सभी वाद सुन सकते थे—[121]

सहायक (असिस्टेंट) कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा।
छावनी-दंडनायक, नसीराबाद।
न्यायिक सहायक कमिश्नर, अजमेर।
अतिरिक्त सहायक कमिश्नर, केकड़ी व अजमेर।
उप दंडनायक, ब्यावर।[122]

उपर्युक्त अधिकारियों में से केवल न्यायिक सहायक कमिश्नर अजमेर और अतिरिक्त सहायक कमिश्नर अजमेर व मेरवाड़ा को अपीलें सुनने व निर्णय करने का अधिकार था।[123] इनके न्यायालयों से अपील सीधी कमिश्नर की अदालत में जो जिला न्यायाधीश भी थे, की जाती थी। कमिश्नर के निर्णय की अपील चीफ-कमिश्नर की अदालत में की जाती थी जो कि जिले की उच्च न्यायालय थी।

पांच सौ रुपयों की राशि तक के लघुवाद न्यायालय के अधिकार सहायक कमिश्नर, मेरवाड़ा, छावनी-दंडनायक, नसीराबाद, अतिरिक्त सहायक कमिश्नर (द्वितीय श्रेणी) अजमेर और उपदंडनायक ब्यावर तथा २० रुपए की राशि तक के लघुवाद निर्णीत करने के अधिकार रजिस्ट्रार लघुवाद न्यायालय, अजमेर को प्राप्त थे।[124]

फौजदारी मुकदमों में कमिश्नर के यहां से जो कि सेशन्स जज का कार्य भी करते थे अपील चीफ कमिश्नर की अदालत में होती थी जो कि जिले की हाईकोर्ट थी।[125] उसके अधीन अजमेर और मेरवाड़ा के असिस्टेंट कमिश्नर थे जो अपने

क्षेत्रों के जिला दंडनायक भी थे। छावनी-दंडनायक, नसीराबाद, न्यायिक सहायक, अतिरिक्त सहायक कमिश्नर केकड़ी, उपदंडनायक ब्यावर और सहायक कमिश्नर टोडवाना को प्रथम श्रेणी दंडनायक के अधिकार प्राप्त थे। छावनी दंडनायक देवली, तहसीलदार अजमेर, ब्यावर और टाडगढ़ तथा ऑनरेरी दंडनायक अजमेर और ब्यावर को द्वितीय श्रेणी दंडनायक के अधिकार प्राप्त थे जिनके फैसलों की अपील जिला दंडनायक के यहाँ की जाती थी। नायब तहसीलदारों को तृतीय श्रेणी दंडनायक के अधिकार प्राप्त थे तथा इसी तरह के अधिकार ऑनरेरी दंडनायकों के रूप में भिनाय, पीसांगन, सावर, खरवा बांदनवाड़ा और देवली के इस्तमरारदारों को भी प्राप्त थे। सन् १८७७ में डिप्टी कमिश्नर का पद समाप्त करने पर दोनों सहायक कमिश्नर को भारतीय दंड-संहिता के अन्तर्गत आने वाले अपराधों के सम्बन्ध में जिला दंडनायक के अधिकार प्रदान कर स्वतंत्र रूप से न्याय-विभाग के काम सौंपे गए थे।[126]

सन् १८७७ के पश्चात् विचाराधीन वादों की संख्या में भारी वृद्धि हो गई थी।[127] सभी अधिकारियों पर न्यायिक कार्यों का बहुत भार था। उन पर अन्य नियमित प्रशासनिक कार्यों के भार के कारण प्रशासन में शिथिलता का आना स्वाभाविक ही था। इसीलिए निम्न अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी—

(१) सन् १८८६ में अतिरिक्त सहायक कमिश्नर राजस्व

(२) रजिस्ट्रार (सन् १८९०)

अतिरिक्त सहायक कमिश्नर 'राजस्व' केवल राजस्व सम्बन्धी मामलों के लिए नियुक्त किया गया था और रजिस्ट्रार को बीस रुपयों तक की राशि के लघुवाद निपटाने के अधिकार प्रदान किए गए थे।

इस व्यवस्था से लघुवाद मुकदमों को निपटाने में अधिक सहायता मिली जो निम्न आँकड़ों से स्पष्ट है—[128]

लघुवाद न्यायालय के मुकदमें

	वर्ष	मुकदमों की संख्या
सन्	१८८५	६८९०
	१८८६	७१७३
	१८८७	६८४२
	१८८८	६५३७
	१८८९	४४७३

उक्त न्यायालयों के कार्यों में वृद्धि का एकमात्र कारण इनके कार्य-क्षेत्र को रेल मार्गों तक विस्तृत कर देना भी था। वह सभी क्षेत्र जो राजपूताना व पश्चिमी

राजपूताना रेल्वे के अन्तर्गत था और जिस पर पोलिटिकल एजेंट अलवर, रेजिडेन्ट जयपुर व पश्चिमी स्टेट एजेन्सी का प्रशासन था, उस सभी क्षेत्र पर सन् १८८० में अस्थाई तौर पर चीफ कमिश्नर अजमेर को सेशन्स न्यायालय के अधिकार प्रदान किए गए।[१२९]

सन् १८८१ में सहायक कमिश्नर मेरवाड़ा को जिला अदालत के अधिकार दिए गए और अब वह मूल दीवानी मुकदमों की सुनवाई कर सकता था। उसे लघुवाद न्यायालय का न्यायाधीश भी नियुक्त किया गया। सन् १८८२ में उसे मारवाड़ा-मेरवाड़ा सीमावर्ती उस रेल मार्ग के लिए जो मारवाड़ के सिरोही क्षेत्र से गुजरता है, प्रथम श्रेणी के दंडनायक का कार्य भी सौंपा गया।[१३०]

सन् १८८४ में, छावनी दंडनायक नसीराबाद को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया जिसका अधिकार स्टेट्स रेल्वे के उस भूभाग पर था जो मेवाड़ और टोंक रियासतों के मध्य पड़ता था। सन् १८८५ में, न्यायिक सहायक कमिश्नर तथा छावनी-दंडनायक, नसीराबाद को अस्थाई रूप से लघुवाद न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया तथा इनका अधिकार-क्षेत्र राजपूताना रेल्वे के उस भूभाग पर रखा गया जो जयपुर, किशनगढ़ और मेवाड़ तथा टोंक रियासतों में से होकर गुजरता था।[१३१]

१८ सितम्बर, १८८६ को अजमेर व मेरवाड़ा के सहायक कमिश्नर को उनके अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में सन् १८८८ के एक्ट १० (जाब्ता फौजदारी) लागू होने से जिला-दंडनायक के पद पर नियुक्त किया गया परन्तु दोनों ही जिलों के चुंगी और आबकारी के मामलों में केवल कमिश्नर को ही जिला दंडनायक के अधिकार प्रदान किए गए।[१३२] अजमेर के न्यायालयों में काम के बँटवारे में काम की प्रक्रिया व्यवस्थित नहीं थी। सन् १९०० में यह महसूस किया गया कि वर्तमान व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत सहायक कमिश्नर सभी दीवानी और फौजदारी मामलों को स्वीकार कर उन्हें विभिन्न न्यायालयों में वितरित करने का कार्य त्रुटिपूर्ण था।[१३३] सहायक कमिश्नर का अधिकांश समय प्रतिदिन विभिन्न न्यायालयों में काम के बँटवारे में ही व्यतीत हो जाया करता था। इन्हें स्थानीय जानकारी प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध ही नहीं हो पाता था। इस एक मूल कारण के अतिरिक्त अन्य कतिपय कारणों से भी यह निर्णय लिया गया कि विभिन्न न्यायालयों के सीमा-क्षेत्र निर्धारित कर उसके आधार पर दीवानी और फौजदारी मामलों का कार्य उनमें बाँटा जाए।[१३४] अजमेर-मेरवाड़ा के कमिश्नर का भी यह मत था कि इस योजना से प्रशासनिक लाभ होगा।[१३५]

सरकार ने नवम्बर, १९०३ में न्यायिक कार्य-विभाजन की नवीन योजना लागू की।[१३६] इस प्रकार न्यायपालिका में सुधार के लिए निरन्तर प्रयास जारी रहे।

अजमेर में अंग्रेजों के शासन के बाद ही आधुनिक न्याय-प्रणाली प्रारम्भ हुई। प्रारम्भिक न्याय प्रक्रिया का स्वरूप सरल था। सुपरिटेंडेंट एक साथ ही दीवानी,

फौजदारी, राजस्व और चूंगी सम्बन्धी मामलों के प्रशासन का मुख्य अधिकारी होता था। सुपरिटेंडेंट की कचहरी से अपीलें कमिश्नर सुना करता था। सन् १८६२ तक दंडनायक और पुलिस के अधिकारों में सीमा रेखा निर्धारित नहीं हो पाई थी। सन् १८६२ के बाद पुलिस और न्याय विभागों को पृथक्-पृथक् किया गया।

अजमेर डिवीजन में जाब्ता फौजदारी कानून लागू होने के पूर्व फौजदारी मामलों में डिप्टी कमिश्नर सत्र न्यायाधीश का कार्य करता था। कमिश्नर को केवल विस्तृत न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार ही प्राप्त नहीं थे वरन् उन्हें राजस्व संबंधी अधिकार भी प्राप्त थे। सन् १८६९ में इस दिशा में पृथक्करण का प्रयास किया गया, परन्तु यह व्यवस्थित नहीं हो पाया।

अजमेर-न्यायालय-विनिमय द्वारा सन् १८७७ में उस आधार को जिस पर आज की न्यायपालिका का स्वरूप विकसित हुआ है, स्थापित किया गया। सन् १८७७ के प्रारुप पर न्याय-व्यवस्था उन्नीसवीं सदी तक चलती रही और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक वह थोड़े से संशोधनों के साथ बनी रही।

अध्याय ७

१. सारदा, अजमेर—हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव (१९४१), पृ० २६६।

२. यह पाँच थाने-ब्यावर, जवाजा, जस्सा खेड़ा, टाडगढ़ और देवर में स्थापित किए गए थे। त्रिपाठी, मगरा-मेरवाड़ा का इतिहास (१९१७) पृ० २०।

३. डिक्सन, स्केच ऑफ मेरवाड़ा (१८५०) पृ० ५।

४. कर्नल ए० जी० डेविड्सन, डिप्टी कमिश्नर द्वारा आर० एच० कीटिंग, कमिश्नर व ए० जी० जी० राजपूताना को पत्र, दिनांक ११ अप्रेल, १८६८ पत्र संख्या ५६८।१८६८।

५. लेफ्टिनेंट जान लिस्टन, असिस्टेंट कमिश्नर द्वारा डिप्टी कमिश्नर को पत्र, दिनांक ९ अक्टूबर १८६६, पत्र संख्या १९८।१८६६।

६. डिप्टी कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा कमिश्नर व ए०जी०जी० राजपूताना को पत्र, दिनांक ११ अप्रेल, १८६८ पत्र संख्या ५६८।१८६८।

७. कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र, दिनांक १७ मई, १८५७ संख्या ५६८।

८. एच० एम० रप्टन, डिप्टी कमिश्नर द्वारा एल० एस० सांडर्स कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २७ जुलाई, १८७१।

९. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स भाग १।

१०. एल० एस० सांडर्स कमिश्नर अजमेर द्वारा कर्नल जे० सी० ब्रुक्स, कार्यवाहक चीफ कमिश्नर को पत्र, दिनांक २५ जनवरी, १८७२।

११. कर्नल जे० सी० ब्रुक्स कार्यवाहक चीफ कमिश्नर द्वारा सी० यू० एचीसन, सचिव भारत सरकार को पत्र दिनांक केम्प नसीराबाद ६ फरवरी १८७२ पत्र संख्या ९८।

१२. असिस्टेंट जनरल सुपरिंटेंडेंट, ठगी एवं डकैती उन्मूलन कार्यवाही द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक ७ जुलाई, १८८४ संख्या २६६।

१३. चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा की विज्ञप्ति आबू दिनांक १५ अगस्त, १८८५ संख्या ८७७।

१४. सचिव, भारत सरकार द्वारा जनरल सुपरिंटेंडेंट, ठगी एवं डकैती उन्मूलन कार्यवाही फोर्ट विलियम दिनांक ९ फरवरी, १८६६ पत्र संख्या २०३ जी०।

१५. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १४ जुलाई, १८९३ पत्र संख्या २७४।१६८।

१६. उपर्युक्त।

१७. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २६ जनवरी, १८९४ पत्र संख्या ३०४।

१८. प्रशासनिक रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा सन् १८८८ से १८९४ तक।

१९. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र दिनांक २६ जनवरी, १८९४ संख्या ३०४।

२०. प्रथम असिस्टेंट ए० जी० जी० राजपूताना का कमिश्नर अजमेर के पत्र परसुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा व्यक्त मत आबू दिनांक २ जनवरी, १८९४ पत्र संख्या ७६।

२१. भारत सरकार का लेफ्टिनेन्ट गवर्नर उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को सरक्यूलर, सन् १८३७।

२२. वकील कोर्ट की रचना एवं इतिहास पर आलेख (आबू रेकॉर्ड राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर)।

२३. उपर्युक्त ।

२४. उपर्युक्त ।

२५. उपर्युक्त ।

२६. उपर्युक्त ।

२७. डिप्टी कमिश्नर द्वारा ए० जी० जी० राजपूताना को पत्र, दिनांक ११ अप्रेल, १८६८ संख्या ५६८ ।

२८. वकील कोर्ट की रचना एवं इतिहास पर आलेख (आबू रेकॉर्ड, राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर) ।

२९. उपर्युक्त ।

३०. उपर्युक्त ।

३१. डिप्टी कमिश्नर द्वारा ए०जी०·जी० राजपूताना को पत्र, दिनांक ११ अप्रेल, १८६८ पत्र संख्या ५६८ ।

३२. वकील कोर्ट की रचना एवं इतिहास पर आलेख (आबू रेकॉर्ड, राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर)

३३. उपर्युक्त ।

३४. उपर्युक्त ।

३५. उपर्युक्त ।

३६. उपर्युक्त ।

३७. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा डिप्टी कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक ४ जनवरी, १८७३ पत्र संख्या ८ ।

३८. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा डिप्टी कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १२ जुलाई, १८७६ पत्र संख्या ७६८ ।

३९. उपर्युक्त ।

४०. सचिव परराष्ट्र विभाग, भारत सरकार द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २४ सितम्बर, १८७६ पत्र संख्या ७६८ ।

४१. प्रशासनिक रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा १८७५–१८७६ ।

४२. सुपरिंटेंडेंट जिला-पुलिस द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र, दिनांक १२ जुलाई, १८७६ पत्र संख्या ७६८ ।

४३. कमिश्नर द्वारा चीफ़ कमिश्नर को पत्र, दिनांक १५ दिसम्बर, १८७४ संख्या ३८४० ।

४४. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र, दिनांक १२ जुलाई, १८७६ संख्या ७६८ ।

४५. मेजर रप्टन डिप्टी कमिश्नर, अजमेर द्वारा एल० एस० सांडर्स, कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक ३० नवम्बर, १८७४ संख्या १२८८ ।

४६. एल० एस० सांडर्स कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र, दिनांक १२ सितम्बर, १८७१ ।

४७. कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र दिनांक २२ अप्रेल, १८९३ पत्र संख्या १४११५ ।

४८. चीफ कमिश्नर की विज्ञप्ति क्रमांक २८८ आबू, दिनांक ४ अप्रेल, १८८८ ।

४९. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा जिला दंडनायक अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २७ जून, १८९३ संख्या ५९६ ।

५०. चीफ कमिश्नर विज्ञप्ति क्रमांक २८८ दिनांक आबू ४ अप्रेल १८८८ ।

५१. सुपरिंटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा जिला दंडनायक को पत्र दिनांक २७ जून, १८९३ संख्या ५९६ ।

५२. उपर्युक्त ।

५३. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स खंड १ ।

५४. उपरोक्त तथा डिप्टी कमिश्नर द्वारा आर० सिम्सन सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र, दिनांक १२ मई, १८६८ पत्र संख्या १ ।

५५. इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस के पत्र, दिनांक १४ फरवरी, १८६९ संख्या ७९७ पर टिप्पणी, फाइल नं० ९९ (पृ० १२२) ।

५६. इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार के निजी सहायक सी० ए० होवेल द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र, इलाहाबाद दिनांक १४ फरवरी, १८६८ संख्या ७९७ ।

५७. उपर्युक्त ।

५८. एल० वाइटकिंग जिला-दंडनायक अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १ जुलाई, १८८६ संख्या ८८७ ।

५९. हरविलास सारदा, अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रिप्टिव (१९४१) पृ० २६६ ।

६०. राजपूताना गजेटीयर्स (१८७९) खंड २ ।

६१. चीफ कमिश्नर की विज्ञप्ति आबू दिनांक २३ अप्रेल, १८८३ संख्या ३०८ ।

६२. असिस्टेन्ट कमिश्नर द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक १० नवम्बर, १६०२ संख्या ३२५६ ।

६३. चीफ कमिश्नर की विज्ञप्ति, दिनांक १४ फरवरी, १६०३ संख्या १५०७ ।

६४. चीफ कमिश्नर की विज्ञप्ति, दिनांक ५ मई, १६०३ संख्या ५१३ ।

६५. असिस्टेन्ट कमिश्नर द्वारा कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक २२ जुलाई, १६०६ संख्या २६८३ ।

६६. राजपूताना गजेटीयर्स (१८७६) खंड २ ।

६७. फाइल नं० १६, पत्र संख्या १८ दिनांक १२–४–६० ।

६८. भारत सरकार का प्रस्ताव दिनांक १८ मई, १८८२ संख्या १७१७४७ । ७५६ ।

६६. प्रशासनिक रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा सन् १८८८ ।

७०. सुपरिटेंडेंट जिला पुलिस द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १६ अक्टूबर, १८६६ संख्या ८०१।५२६ ।

७१. उपर्युक्त ।

७२. उपर्युक्त ।

७३. प्रशासनिक रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा वर्ष १६०२-१६०३ ।

७४. उपर्युक्त, वर्ष १६११–१६१२ ।

७५. उपर्युक्त, वर्ष १६१०–१६११ ।

७६. उपर्युक्त, वर्ष १८६५ –१८६६ ।

७७. उपर्युक्त, वर्ष १८६५–१८६६ ।

७८. प्रशासनिक रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा वर्ष १८६७–६८ ।

७६. उपर्युक्त, वर्ष १६१० ।

८०. उपर्युक्त ।

८१. इस प्रश्न पर सारा कबीला एवं उसके मित्रगण इसे अपना ही झगड़ा मानकर चलते थे। इस प्रश्न पर बहुधा गम्भीर संघर्ष उत्पन्न हो जाते थे ।

८२. फाइल क्रमांक ६६ (रा० रा० पु० मं०, बीकानेर) ।

८३. गवर्नर जनरल के सचिव द्वारा ए० जी० जी० राजपूताना को पत्र दिनांक ११ दिसम्बर, १८४८ ।

८४. कमिश्नर अजमेर द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र (सन् १८३२ से १८५८ तक अजमेर-मेरवाड़ा में प्रशासन संबंधी फाइल संख्या ७ पत्र संख्या ५२)।

८५. उपर्युक्त।

८६. कमिश्नर की कचहरी से जारी पत्र दिनांक १ दिसम्बर, १८५७।

८७. उपर्युक्त।

८८. उपर्युक्त।

८९. उपर्युक्त।

९०. उपर्युक्त।

९१. डिप्टी कमिश्नर अजमेर द्वारा कार्यवाहक कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक १२ अप्रेल, १८६०।

९२. उपर्युक्त।

९३. उपर्युक्त।

९४. लेफ्टिनेंट कर्नल कीटिंग कार्यवाहक कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा आर० सिम्सन सचिव उत्तर-पश्चिमी सूवा सरकार को पत्र, दिनांक २५ फरवरी, १८६८ पत्र संख्या ११४।

९५. उपर्युक्त।

९६. उपर्युक्त।

९७. सी० एल० कार्यवाहक सचिव भारत सरकार द्वारा कमिश्नर अजमेर को सन् १८३३ से १८५८ तक अजमेर-मेरवाड़ा प्रशासन पर पत्र (फाइल संख्या ७, पत्र संख्या ६२१। अ० सी० रा० रा० पु० मं०, बीकानेर)

९८. लेफ्टिनेण्ट कर्नल कीटिंग कार्यवाहक कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा आर० सिम्सन सचिव उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र, दिनांक २५ फरवरी, १८५८ पत्र संख्या ११४।

९९. उपर्युक्त।

१००. उपर्युक्त।

१०१. भारत सरकार के परराष्ट्र विभाग के अधीन अजमेर-मेरवाड़ा की पृथक् चीफ कमिश्नरी का गठन पर फाइल, फाइल संख्या ११७ (रा० रा० पु० मं०, बीकानेर)।

१०२. उपर्युक्त।

१०३. उपर्युक्त ।

१०४. धारा ४ अजमेर न्यायालय विनियम १८७२ ।

१०५. धारा ६, उपर्युक्त ।

१०६. धारा ६ ,,

१०७. धारा १० ,,

१०८. धारा ११ ,,

१०९. धारा ८ ,,

११०. धारा १२ ,,

१११. धारा १४ ,,

११२. धारा १४ ,,

११३. धारा १६ ,,

११४. सन् १८९० के पूर्ववर्ती दस वर्षों में दीवानी और फौजदारी न्यायालयों में सम्पत्ति संबंधी मुकदमों की वार्षिक औसत २६७५.२ थी। बाद के दस वर्षों में यह औसत बढ़कर २९३६.२ हो गई थी। सन् १९०२ में ३११९० नये मुकदमे दर्ज हुए थे। इस वृद्धि का कारण अकाल की वजह से ऋणग्रस्तता थी।

११५. निम्न पांच स्तर की दीवानी अदालतें स्थापित की गई थीं:—

१. चीफ कमिश्नर की कचहरी।

२. कमिश्नर की कचहरी।

३. प्रथम श्रेणी न्यायाधीशों की अदालतें।

४. द्वितीय श्रेणी न्यायाधीशों की अदालतें।

५. मुंसिफ अदालत।

११६. धारा ९ अजमेर न्यायालय विनियम १८७७।

११७. विज्ञप्ति सं० ३५५-ए दिनांक १ जून, १८७७।

११८. धारा १४ (अ) अजमेर न्यायालय विनियम १८७७।

११९. धारा १४ (ब) उपर्युक्त।

१२०. धारा २२ उपर्युक्त।

१२१. धारा ७ उपर्युक्त।

१२२. चीफ कमिश्नर विज्ञप्ति सं० ३५५ (अ) दिनांक १ जून, १८७७।

१२३. चीफ़ कमिश्नर विज्ञप्ति सं० ३१२-सी ११४ दिनांक २४ दिसम्बर, १८९१ ।

१२४. धारा ११ अजमेर न्यायालय विनियम १८७७ ।

१२५. धारा ३८ उपर्युक्त ।

१२६. फाइल क्रमांक ७३ प्रस्ताव फोर्ट विलियम, दिनांक २७ मार्च, १८७७ ।

१२७. जब्ती के मुकदमों में ८२ प्रतिशत, अपील के मुकदमों में ८९ प्रतिशत और फौजदारी मुकदमों में ८७ प्रतिशत की वृद्धि हुई ।

१२८. कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ़ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २२ नवम्बर, १८९० पत्र संख्या ३०८६ ।

१२९. उपर्युक्त ।

१३०. उपर्युक्त ।

१३१. उपर्युक्त ।

१३२. अकाल प्रशासन नियमावली अजमेर-मेरवाड़ा (१९१५) पृ० ३ ।

१३३. असिस्टेन्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक ८ अक्टूबर, १९०० पत्र संख्या २१५३ ।

१३४. असिस्टेन्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक २६ फरवरी, १९०१ पत्र संख्या ५९३ ।

१३५. कमिश्नर अजमेर द्वारा चीफ़ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक २० फरवरी, १९०१ पत्र संख्या ११४ डी तथा कमिश्नर द्वारा चीफ़ कमिश्नर अजमेर मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक ७ मार्च, १९०१ ।

१३६. कमिश्नर द्वारा चीफ़ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १६ सितम्बर, १९०१ तथा कमिश्नर द्वारा चीफ़ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक १४ नवम्बर, १९०३ ।

८

शिक्षा

सन् १८४७ में प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री लार्ड मेकॉले ने हाउस ऑफ कामन्स में भाषण करते हुए कहा "माननीय ! मेरा विश्वास है कि जन-साधारण को शिक्षा के साधन प्रदान करना राज्य का कर्त्तव्य एवं अधिकार है...........अतएव मैं यह कहना चाहता हूँ कि सरकार के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जन-साधारण की शिक्षा केवल साध्य ही नहीं है, यह उस लक्ष्य प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम साधन भी है। यदि यह सत्य है तो मेरा मस्तिष्क इस तर्क को कैसे स्वीकार कर सकता है कि कोई व्यक्ति इसमें ही परमसंतोष का अनुभव करके चले कि जनसामान्य की शिक्षा से सरकार का कोई संबंध नहीं है।[१] सन् १८३३ में हाउस ऑफ कामन्स में लॉर्ड मेकॉले ने पुनः कहा कि भारत का शासन इस तरह किया जाए कि वहाँ की जनता अंग्रेज़ों की स्वाधीनता एवं सभ्यता के स्तर तक उन्नत हो सके तथा उन्होंने एक प्रश्न प्रस्तुत किया" क्या हम भारत को अपना दास बनाए रखने के लिए ही वहाँ की जनता को अज्ञानी रखना चाहते हैं ?[२] भारत आने पर उन्होंने अपने उन्हीं सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया जो उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में उद्घोषित किए थे। मेकॉले के कारण सरकार ने भी एक प्रस्ताव द्वारा शीघ्र ही अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षा-नीति लागू करने का निर्णय लिया।

भारत में अंग्रेज़ी शासन में प्रथम शिक्षण संस्था कलकत्ता में वारेन हेस्टिंग द्वारा सन् १७८२ में मदरसे के रूप में खोली गई थी। तत्पश्चात् सन् १७९१ में

जौनाथन डंकन ने बनारस में हिन्दुओं के लिए कॉलेज का शिलान्यास किया। सन् १८१५ में, लॉर्ड हेस्टिंग्स ने यह अभिमत प्रकट किया कि वे भारत में शिक्षा-व्यवस्था लागू करना चाहते हैं।

उन दिनों भारतीय और पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के प्रश्न को लेकर एक संघर्ष छिड़ा हुआ था। राजा राममोहन राय जो भावी युग के स्वप्नदृष्टा थे उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा-नीति का समर्थन किया। ईसाई मिशनरी शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर आपस में एक मत नहीं थे। डॉ० केरे एवं उनके सहयोगी स्थानीय भाषा में शिक्षा देने के पक्ष में थे। उन्होंने १८१८ में श्री रामपुर में जो उन दिनों डेन्मार्क के अधीन था, एक कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज का घोषित लक्ष्य भारतीयों को ईसाई मतावलंबी बनाने का था। सन् १८२० में, इन लोगों के द्वारा ईसाई युवकों को मूर्तिपूजकों में ईसाईयत का प्रचार करने का प्रशिक्षण देने के लिए कलकत्ता में एक कॉलेज की स्थापना की गई।[3] परन्तु सन् १८३० में डॉ० डफ ने पुनः राजा राममोहन राय की सहायता से साहित्य, विज्ञान एवं धार्मिक शिक्षा के लिए एक स्कूल की स्थापना की। इस तरह आंग्ल भाषा के अध्ययन को प्रभावशाली पहल प्रदान की गई। डॉ० डफ की यह मान्यता थी कि ईसाई धर्म अंग्रेजी भाषा के ज्ञान प्रसार से ही प्रसारित हो सकता है।[4]

उन्नीसवीं सदी में अजमेर में भी प्रचलित शैक्षणिक व्यवस्था का विकास हुआ। केरे ने कुछ प्रारम्भिक कठिनाईयों के बाद पहले अजमेर और बाद में पुष्कर में नवम्बर, १८१८ में एक-एक स्कूल की स्थापना की। नवम्बर, १८२१ में इन दोनों में, प्रत्येक स्कूल में चालीस छात्र थे। सन् १८२१ में अजमेर सरकार ने अजमेर शहर के स्कूल के लिए तीन सौ रुपयों की आर्थिक सहायता प्रदान की। इसके अलावा सरकार के द्वारा जन-सामान्य की शिक्षा के लिए और कोई कदम नहीं उठाया गया।[5]

केरे को अक्टूबर, १८२२ में कई अन्य स्थानों पर भी स्कूल खोलने में सफलता मिली।[6] स्कूलों की कार्यविधि के अध्ययन के लिए एक 'जन शिक्षण-समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने २४ अप्रेल, १८२२ को अपनी प्रथम रिपोर्ट तथा ५ मार्च, १८२५ को दूसरी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिससे ज्ञात होता है कि शिक्षा के विस्तार की गति बहुत धीमी थी। इन स्कूलों के परिणाम इतने अपर्याप्त थे और उनके खर्च इतने भारी थे कि समिति ने ऐसे स्कूलों की उपयोगिता तक में संदेह प्रकट किया। जनरल कमेटी तथा स्थानीय अधिकारियों के निरंतर विरोध के बावजूद केरे ने इन स्कूलों में "न्यूटेस्टामेंट" पढ़ाना शुरू किया जिससे छात्रों के अभिभावकों के मन-मस्तिष्क में इन स्कूलों के उद्देश्यों के प्रति संदेह होना स्वाभाविक ही था। अक्टूबर, १८३२ में लार्ड बेंटिक ने अजमेर स्कूल का निरीक्षण किया और उसे पूर्णतया अपर्याप्त एवं निरर्थक ठहराया जिसके फलस्वरूप इसे बंद कर दिया गया।[7]

सन् १८३६ में अजमेर में एक सरकारी स्कूल की स्थापना की गई। इस स्कूल में एक यूरोपीय प्रधानाध्यापक तथा दो भारतीय अध्यापक एक हिन्दी के लिए व दूसरा उर्दू के लिए नियुक्त किए गए। नसीराबाद और अजमेर के यूरोपीय समाज ने इस स्कूल को दान एवं मासिक चंदे के रूप में अच्छी सहायता प्रदान की, और कुछ वर्षों तक इस स्कूल ने अच्छी उन्नति की। सन् १८३७ के अंत में छात्रों की संख्या २१९ तक पहुँच गई थी तथा कई सालों तक स्कूल निरंतर तरक्की करता रहा। परन्तु भारतीयों के मस्तिष्क में आरम्भ से ही इन सरकारी स्कूलों के खोले जाने के प्रति संदेह की भावना थी। एस०डब्ल्यू. फॉलो ने अपनी रिपोर्ट में यह उल्लेख किया है। सरकारी स्कूलों को लोग संदेह की नजरों से देखते हैं। उन्हें इसमें किसी विशेष उद्देश्यों की सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती।[८] इस तरह की संदेह की भावना और शंका के कारण सन् १८३७ के बाद सरकारी स्कूल में छात्रों की संख्या में भारी गिरावट आई, जिसके फलस्वरूप सन् १८४३ में इसे बंद कर देना पड़ा। यह स्कूल न तो भारतीय उच्च वर्ग और न मध्यम वर्ग के लोगों को ही आकर्षित कर सका और न इस पर किए जाने वाले व्यय के अनुकूल परिणाम ही निकले। इस स्कूल पर प्रति-वर्ष ६ हजार की राशि व्यय की जाती थी।[९] कुछ वर्षों बाद जनता शिक्षा की आवश्यकता महसूस करने लगी तथा जो संदेह इन स्कूलों के प्रति आरम्भ में बन चला था शनैः शनैः समाप्त होने लगा।[१०]

सन् १८४७ में सरकारी स्कूल खोलने और उसे कॉलेज स्तर तक उन्नत करने के प्रश्न पर पुनर्विचार किया गया। इस आशय का एक प्रस्ताव सरकार द्वारा निदेशकों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। उन्होंने ९ जुलाई, १८४७ को इसके लिए स्वीकृति प्रदान की तथा यह निर्देश दिया कि स्कूल को कालांतर में कॉलेज के रूप में परिवर्तित करने का प्रश्न अभी न उठाया जाकर भावी निर्णय पर छोड़ दिया जाय। परन्तु एक लम्बे समय तक इस आदेश का पालन नहीं हो सका। सन् १८५१ से डॉ० बुच के निर्देशन में अजमेर शहर में एक सरकारी स्कूल खोला गया।[११]

इसके साथ-साथ ही राजपूताना के कई नरेशों व सरदारों ने अंग्रेज़ी भाषा सीखने की तीव्र उत्कंठा प्रकट की। अंग्रेज़ सरकार भी इस बात से बहुत खुश थी कि कतिपय प्रभावशाली प्रतिष्ठित भारतीय आंग्ल भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। जयपुर के महाराजा रामसिंह अंग्रेज़ी अच्छी तरह से पढ़ लेते थे और वे इस भाषा के ज्ञान वर्धन में भी रुचि ले रहे थे। उन्होंने जयपुर में एक अंग्रेज़ी स्कूल खोल रखा था। जयपुर से कई ठाकुरों व रियासत के प्रतिष्ठित लोगों ने अपने बच्चों की अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा के लिए निजी अध्यापक रख छोड़े थे।[१२] महाराजा किशनगढ़ ने भी अंग्रेज़ी सीखने के लिए एक अध्यापक नियुक्त कर रखा था तथा इस भाषा में उनकी विशेष रुचि थी।[१३] अतएव इस ओर ध्यान दिया गया कि अजमेर को जो कि राजपूताना के केन्द्र में स्थित है, इस भावना की पूर्ति और राजपूताना की

इन पड़ोसी रियासतों के लोगों में इंग्लैंड के साहित्य एवं आंग्ल भाषा की जानकारी एवं अध्यापन प्रदान करने में पहल करनी चाहिए।[१४]

अजमेर में सन् १८५१ में आरम्भ किया गया स्कूल थोड़े समय में ऐसा केन्द्र-बिन्दु बन गया जिसके आधार पर आगे जाकर अजमेर में शिक्षा प्रणाली का उद्‌भव और विकास हुआ।[१५] सन् १८५४ में भारत सरकार द्वारा इस संबंध में दिया गया निर्देश भी शिक्षा के विकास में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।[१६] यद्यपि उसमें कुछ कमियां थीं। सन् १८६८ में यह स्कूल प्रिन्सिपल गोल्डींग महोदय के प्रयास एवं सद्‌प्रयत्नों के फलस्वरूप कॉलेज के स्तर को प्राप्त कर सका। १७ फरवरी, सन् १८६८ को कर्नल कीटिंग द्वारा कालेज का शिलान्यास किया गया था।[१७] इस नए कॉलेज भवन का उद्‌घाटन गवर्नर जनरल द्वारा १७फरवरी, १८७० को सम्पन्न हुआ।

लार्ड मेयो जब अजमेर में राजपूताना के नरेशों के दरबार में सम्मिलित होने को आए तब इस दरबार में उन्होंने राजपूताना के नरेशों व जागीरदारों के पुत्रों की शिक्षा के लिए एक रॉयल कॉलेज (गवर्नमेंट कॉलेज के अतिरिक्त) की स्थापना की घोषणा की। परन्तु गवर्नमेंट कॉलेज के प्रिन्सिपल ने इस सुझाव के प्रति अरुचि प्रकट की तथा अजमेर में एक और नए कॉलेज के खोलने से क्या नुकसान होगा उस ओर ध्यान आकर्षित किया।[१८] उनका कहना था कि:—

१. गवर्नमेन्ट कॉलेज सिर्फ अजमेर की जनता के लिए ही नहीं खोला गया है। यहाँ के लोग यदि गरीब नहीं हैं तो धनवान भी नहीं हैं। यह कॉलेज विशेष रूप से राजपूताने में और विशेषकर राजाओं, राजकुमारों और प्रमुख जागीरदारों में शिक्षा के प्रसार के लिए खोला गया है।[१९]

२. यदि यहाँ नया कॉलेज खुलता है तो गवर्नमेन्ट कॉलेज को राजपूताने की कई रियासतों के धनी एवं मध्यम वर्ग के लोगों की शिक्षा की अपेक्षा अजमेर शहर के लड़कों की शिक्षा तक ही सीमित रह जाना पड़ेगा।[२०]

३. गवर्नमेन्ट कॉलेज ने हाल ही में छात्रावास खोलकर अजमेर जिले के धनी एवं प्रभावशाली लोगों से अपना सम्पर्क स्थापित किया है, नए कॉलेज के खुलने से यह सम्पर्क समाप्त हो जाएगा।[२१]

४. नए कॉलेज के खुल जाने से गवर्नमेन्ट कॉलेज की हैसियत और उसकी वर्तमान स्थिति बुरी तरह से प्रभावित होगी।[२२]

५. राजपूताना के सामंतों में कॉलेज तो दूर रहा, हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता नहीं है। उनके लड़के पूरी तरह से अनपढ़ हैं और उनके लिए यदि कोई शैक्षणिक संस्था खोलनी ही है तो साधारण प्राथमिक स्कूल ही पर्याप्त होगा।[२३]

प्रिन्सिपल डिमेलो के गवर्नमेन्ट कॉलेज के बारे में इतनी एक पक्षीय मान्यता एवं सद्भाव तथा उसके हितों की रक्षा की उत्कंठा को सफलता नहीं मिली। नया कॉलेज खोलने की घोषणा ने व्यावहारिक रूप ग्रहण किया तथा शीघ्र ही मेयो कॉलेज की स्थापना की गई।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मेयो कॉलेज ने वायसराय द्वारा राजघराने के बच्चों में शिक्षा-प्रसार की भावना एवं अभिरुचि के फलस्वरूप जन्म लिया था।[२४] उनकी यह मान्यता थी कि एक तरुण राजपूत नरेश में केवल किताबी ज्ञान के अलावा नैतिक एवं शारीरिक योग्यताएं होना अत्यधिक आवश्यक है।[२५] अतएव सामंत वर्ग के लिए एक अलग कॉलेज की रूपरेखा प्रस्तुत की गई।

वायसराय ने कॉलेज की सहायतार्थ राजपूताना के सामंतों से सार्वजनिक धनदान द्वारा एक कोष-स्थापना की योजना तैयार की जिससे मेयो कॉलेज में शिक्षकों का वेतन अन्य शिक्षा संबंधी सामग्री, छात्रवृत्तियां तथा भवन की मरम्मत आदि के लिए आवश्यक व्यय की पूर्ति संभव हो सके। अनुदान के लिए धनराशि राजाओं और प्रमुख सरदारों से आमंत्रित की गई। फलस्वरूप लगभग छः लाख की राशि के वचन प्राप्त हुए, जो बाद में सात लाख की राशि तक पहुँच गए थे।[२६] इस राशि पर प्राप्त ब्याज तथा भारत सरकार से प्राप्त आर्थिक अनुदान मिलकर कॉलेज की स्थाई आय का साधन बनाया गया। इस कार्य के लिए सबसे उदार सहायता जयपुर नरेश से प्राप्त हुई जिनका कुल योगदान दो लाख से भी अधिक था। जोधपुर, उदयपुर, कोटा, झालावाड़ का योगदान एक-एक लाख से अधिक का था। अंग्रेज़ सरकार ने अपनी ओर से कॉलेज के लिए १६७ बीघे जमीन प्रिन्सिपल और वाइस प्रिन्सिपल के लिए आवास तथा छात्रावास भवन प्रदान किया। सरकार ने निर्माण एवं चार भवनों की मरम्मत का व्यय स्वयं अपने ऊपर लिया।

मेयो कॉलेज का मुख्य भवन "भारतीय-यूनानी स्थापत्य कला का एक अनूठा सम्मिश्रण है।" इसके निर्माण में करीब ४,०१,४०० रुपया खर्च हुआ था।[२७] इस भवन का शिलान्यास सर एलफ्रेड लॉयल द्वारा ५ जनवरी, १८७८ को रखा गया तथा इसका उद्घाटन ७ नवम्बर, १८८५ को वायसराय डफरीन के हाथों सम्पन्न हुआ।

अजमेर में शिक्षा की निरंतर प्रगति को देखते हुए सन् १८९६ से यहाँ डिग्री कक्षाओं की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।[२८] इसके पूर्व जबकि शिक्षा का प्रसार कम था, सामान्य शिक्षित युवकों को भारतीय रियासतों और अंग्रेज़ सरकार के अधीन नौकरी आसानी से उपलब्ध हो जाया करती थी, परन्तु अब शिक्षा का विकास व उसका स्तर उन्नत हो जाने के कारण एक सामान्य युवक के लिए जबतक कि वह स्नातक अथवा स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त नहीं हो तबतक नौकरी प्राप्त करना

कठिन था। राजपूताना में स्नातकों के अभाव में स्थानीय नियुक्तियां बाहरी प्रदेशों के ऊँची शिक्षा प्राप्त युवकों से की जाने लगी। इस तरह उन्नीसवीं सदी के अंत तक अजमेर और राजपूताना में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा लोगों में जागृत हो चली थी।

उच्च शिक्षा प्रदान करने तथा तत्सम्बंधी व्यवस्था के लिए एक भारी धन-राशि आवश्यक होती है। सरकार की यह नीति थी कि सामान्य शिक्षा के लिए तो वह खर्च करती थी तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था गैर सरकारी स्वयं सेवी शैक्षणिक संस्थाओं के हाथों में छोड़ देती थी। भारत में दूसरे स्थानों पर भी उदाहरणस्वरूप, दिल्ली, आगरा, बरेली, मेरठ तथा अन्यत्र राजा महाराजा, जमींदार वर्ग, धनी एवं प्रतिष्ठित शिक्षित वर्ग के लोगों ने उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए साधन जुटाने में आगे बढ़कर उदारतापूर्वक योगदान दिया था। अतएव, अजमेर में भी ऐसी ही आशा व्यक्त की गई थी कि कॉलेज की नितांत आवश्यकता अनुभव करने वाले लोगों का उदार सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए। फलस्वरूप १० अप्रेल, १८९६ को इसके लिए एक सार्वजनिक सभा आमंत्रित की गई।

इस सभा का आयोजन दौलत बाग में किया गया जो पूर्णतया सफल रहा। यह नगर के गण्यमान्य लोगों की सभा थी, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन कमिश्नर कब्ब महोदय ने की।[२९] चंदे के लिए की गई अपीलों का जनता ने दिल खोलकर स्वागत किया और उदारता से धन प्रदान किया। मसूदा राव ने व्यक्तिगत रूप से तीन हजार की राशि तथा ब्यावर के सेठ चम्पालाल ने पाँच हजार का धन दान में दिया। अजमेर कॉलेज के भूतपूर्व विद्यार्थियों की संस्था ने इस कार्य में गंभीर रुचि लेते हुए धन संग्रह के लिए सहयोग प्रदान किया। इन भूतपूर्व विद्यार्थियों ने कॉलेज की उन्नति के लिए अपने एक माह का वेतन प्रदान करना स्वीकार किया और इस तरह शीघ्र ही एकत्रित ग्यारह हजार की धनराशि इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि जनता में इस प्रयास की सफलता के लिए सराहनीय उत्साह था।[३०] सरकार ने १५ जुलाई, १८९६ से अजमेर के गवर्नमेन्ट कॉलेज में स्नातक कक्षाएं प्रारम्भ करदीं।

बीसवीं सदी के आरम्भ में विज्ञान-शिक्षा की आवश्यकता भी महसूस की जाने लगी। कृषि विशेषज्ञ, चिकित्सक एवं इंजीनियरों की कमी पहले से ही अनुभव की जा रही थी। देश में उन दिनों टेक्नीकल विशेषज्ञों की भारी कमी थी। इंग्लैंड के सम्राट ने ६ जनवरी, १९१२ को कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए कहा "मेरी यह कामना है कि इस धरती पर स्कूलों और कॉलेजों का जाल सा बिछ जाए जिससे स्वामिभक्त तथा उपयोगी नागरिक तैयार हो सकें जो अपने कर्तव्यों के प्रति गौरव अनुभव कर सकें। मेरी यह कामना है कि मेरी भारतीय प्रजाजनों के घरों में ज्ञान का प्रसार हो तथा उनके श्रम के फल एवं ज्ञान की गंध से सुवासित उच्च

विचार, सुख-सुविधा एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति में सहायक हो। मेरी कामना की पूर्ति शिक्षा के माध्यम से पूरी की जा सकती है और भारत में शिक्षा का उद्देश्य मेरे हृदय के बहुत समीप है।[31] भावी अंग्रेज़ी शासन की भावी शिक्षा-नीति एवं लक्ष्य की एक झलक इससे आँकी जा सकती है।

ब्रिटिश सम्राट की इस घोषणा से अजमेर की जनता में उत्साह एवं प्रेरणा को बल मिला। यहाँ स्नातक कक्षाओं में विज्ञान-विषय का अभाव तेजी से अनुभव किया जा रहा था। इसलिए २५ मई, १६१३ को ट्रैवर टाउन हॉल अजमेर में प्रमुख नागरिकों की सभा बुलाई गई जिसमें कमिश्नर ए० टी० होम्स की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जिसका उद्देश्य इस कार्य के लिए धन-संग्रह करना था। गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर में बी० एस० सी० कक्षाएं आरम्भ करने के लिए पन्द्रह हजार का सार्वजनिक चन्दा इकट्ठा करने का निर्णय इस समिति ने किया।[32] समिति के इस उद्देश्य की सफलता का मूल कारण इस प्रदेश के प्रमुख नागरिकों का उत्साह तथा गवर्नमेन्ट कॉलेज के भूतपूर्व विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग था। जुलाई, १६१३ से गवर्नमेन्ट कॉलेज में बी० एस० सी० की कक्षाएं आरम्भ की गईं और इसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया गया।[33]

अजमेर में सन् १८५० के पूर्व प्राथमिक शिक्षा स्थानीय लोगों द्वारा ही संचालित होती थी और उसमें किसी तरह का सरकारी हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। इन देशी पाठशालाओं को स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त था। परन्तु सन् १८५० के बाद कर्नल डिक्सन द्वारा अजमेर-मेरवाड़ा में ७५ स्कूल स्थापित किए गए और लोगों को इनके व्यय की पूर्ति-हेतु, कर के रूप में साधन स्रोत जुटाने के लिए अनुप्रेरित किया गया। बाद में इन स्कूलों की संख्या घटाकर ५७ कर दी गई। सन् १८५१ में अजमेर के देहाती क्षेत्र की स्कूलों के लिए तथा मेरवाड़ा की स्कूलों के लिए भी सन् १८५२ में एक-एक निरीक्षक नियुक्त किए गए। कर्नल डिक्सन के निधन के पश्चात् इस कर के प्रति जनता का असंतोष बढ़ गया था। इस कारण सरकार को बाध्य होकर यह कर समाप्त करना पड़ा और यह निर्णय लिया गया कि वे सभी स्कूलों में जो जनता से कर के रूप में एकत्रित धन से अनुचालित होती थी बंद कर केवल सरकारी व्यय पर चलने वाली पाठशालाएं रखी जाएं।[34]

इन देशी पाठशालाओं के अध्यापकों का वेतन बहुत कम था तथा ये अध्यापन-कार्य के अयोग्य भी थे। सरकारी निरीक्षक ने सन् १८५८ में अपनी रिपोर्ट में यह कहा कि जबतक इन पाठशालाओं की वर्तमान स्थिति बनी रहेगी इस प्रदेश में शिक्षा का स्तर लज्जाजनक रहेगा। इससे पूर्ववर्ती रिपोर्ट में यह स्पष्ट बतलाया गया था कि इन स्कूलों में कई वर्ष व्यतीत करने के बाद भी छात्र को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह कितना अधकचरा एवं अनुपयुक्त है। उसमें कहा गया है कि दस या बारह

वर्ष स्कूल में व्यतीत कर लेने के बाद जब छात्र स्कूल छोड़ता है तो उसकी योग्यता की यह स्थिति रहती है कि १०–१२ वर्ष तक फारसी भाषा या १२–१३ वर्ष तक अरबी भाषा का अध्ययन करने के बाद उसको कुरान का कामचलाऊ ज्ञान होता है और यही स्थिति उसकी दफ्तर के काम की समझ के संबंध में होती है।

सन् १८७१ में अजमेर-मेरवाड़ा का सीधा नियंत्रण भारत सरकार के हाथों में चले जाने से यहाँ के शिक्षा-विभागों का उत्तर-पश्चिमी सूबों से सम्बन्ध विच्छेद हो गया और ये विभाग कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा के सीधे नियंत्रण में आ गए जो शिक्षा विभाग के निदेशक पद का भार भी संभाले हुए थे। सन् १८९१ में, अजमेर-मेरवाड़ा में ४७ अपर प्राईमरी पाठशालाएं थीं जिनकी छात्रसंख्या ३०८२ थी। इन सार्वजनिक संस्थाओं के अतिरिक्त निजी तौर पर ८३ प्रारम्भिक पाठशालाएं भी चल रही थीं जिनकी छात्र संख्या २७७७ थी। आगामी दशक में अकाल एवं सूखे की स्थिति के कारण प्रारम्भिक शिक्षा में स्पष्ट ह्रास हुआ था, परन्तु इसके पश्चात् सन् १९०७ में, प्राथमिक शिक्षा ने बड़ी तेजी से प्रगति की।[35] सन् १८८१ में पाठशाला जाने योग्य आयु के बच्चों की तुलना में शिक्षा ग्रहण कर रहे बच्चों का अनुपात १२.८ प्रतिशत, सन् १८९१ में १३.५ प्रतिशत तथा सन् १९०३ में १२.५ प्रतिशत था।

सार्वजनिक प्राथमिक पाठशालाओं का संचालन शिक्षा-विभाग के नियंत्रण में था जिसके संचालक कमिश्नर स्वयं थे। विभाग को इन सरकारी पाठशालाओं के संचालन व देखरेख के लिए सरकारी सहायता के अलावा नगरपालिकाओं एवं जिला बोर्ड से भी आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी। पाठशालाओं में छात्रों से फीस भी ली जाती थी। अध्यापकों के वेतनमान में बहुत फर्क था। गवर्नमेन्ट ब्रांच स्कूल अजमेर के प्रधानाध्यापक को सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था जबकि विभाग के कनिष्ठ अध्यापक का वेतन ६ रुपए प्रतिमाह था। पचास प्राथमिक पाठशालाओं में से सात लड़कियों के स्कूल थे और ४२ पाठशालाएं देहातों में थीं। सन् १९०३ में सार्वजनिक प्राथमिक पाठशालाओं पर कुल व्यय १७,७२२ रुपए प्रतिवर्ष था।

अजमेर में माध्यमिक शिक्षा की स्थिति अच्छी थी। सन् १९०३ में सार्वजनिक माध्यमिक पाठशालाओं की संख्या १४ थी जिनमें २४६५ छात्र थे।[36] इन १४ माध्यमिक पाठशालाओं में से ९ पाठशालाएं तहसील स्तर पर ग्रामों में विशुद्ध वर्नाक्यूलर पाठशालाएं थीं। दो सरकारी सहायता प्राप्त हाई स्कूल (नसीराबाद और ब्यावर) थे तथा दो बिना सरकारी सहायता के संस्थाओं द्वारा संचालित अजमेर मिशन स्कूल और दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल थे तथा एक सरकारी स्कूल था जो गवर्नमेन्ट कॉलेज में स्थित था।[37]

इन दो जिलों में सरकारी स्कूलों एवं कॉलेज के कर्मचारियों एवं संचालन

पर सरकार द्वारा निम्न तालिका में प्रदर्शित राशि व्यय होती थी :—

कॉलेज के अध्यापक	रुपए	२४,४०४
विविध व्यय		३,१६६
१८ ग्राम पाठशालाएं (अजमेर में)		५,६६४
विविध व्यय		२,२०४
१४ ग्राम पाठशालाएं (मेरवाड़ा में)		१,६४२
विविध व्यय		४००
गर्ल्स नॉर्मल स्कूल और महिला नॉर्मल स्कूल विविध व्यय सहित		१,०२०
पुरुष नॉर्मल क्लास		६००
विविध व्यय		१९२
वार्षिक सरकारी व्यय		३९,३९२ रुपए

सन् १८८३ में शिक्षा-शुल्क निम्नलिखित था:—

अभिभावक की आय	प्रारंभिक या विशुद्ध वर्नाक्यूलर	लोअर या ११,१०, ९,८,७,वीं कक्षाएं	मिडिल ६,५,४ कक्षाएं	हायर तीसरी कक्षा आदि
मासिक रुपए	रु. आ. पै.	रु. आ. पै.	रु. आ. पै.	रु. आ. पै.
रुपए ७ से १५	० १ ०	० ३ ०	० ४ ०	० ५ ०
„ १५ से २५	० २ ०	० ५ ०	० ७ ०	० ९ ०
„ २५ से ५०	० ३ ०	० ९ ०	० १२ ०	१ ० ०
„ ५० से १००	० ४ ०	१ ० ०	१ ८ ०	२ ० ०
„ १०० से २००	० ६ ०	२ ० ०	२ ८ ०	३ ० ०
„ २०० से ५००	० ८ ०	३ ० ०	३ ८ ०	४ ० ०
„ ५०० से १०००	० ८ ०	४ ० ०	४ ८ ०	५ ० ०
„ १००० से अधिक	० ८ ०	५ ० ०	७ ० ०	१० ० ०

सन् १८९९ में अजमेर-मेरवाड़ा में व्याप्त शिक्षा-प्रसार का अन्य प्रांतों से तुलनात्मक अध्ययन निम्न तालिका से संभव है।[३८] निम्न तालिका बंबई प्रेसीडेंसी की

है जहाँ स्कूल जाने योग्य बच्चों की संख्या ४,०४४,६३६ थी तथा पढ़ने वाले छात्रों की संख्या ६४८,६४१ थी। इस तालिका में व्यावसायिक शिक्षा, चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग इत्यादि सम्मिलित हैं :—

बम्बई :

क्षेत्र—१,६३,१४६ वर्गमील

कस्बे एवं ग्राम–४०,६६६ ।

जनसंख्या–२,६६,६६,२४२ ।

छात्रों की संख्या

	११ आर्ट्स कॉलेजों में	१,६५६
	४ व्यावसायिक कॉलेजों में	८६३
	४६३ माध्यमिक स्कूलों में	४१,९७९
	६,६३० प्राथमिक शालाओं में	५,३३,५७७
	१८ प्रशिक्षण स्कूलों में	७६१
	३१ विशेष स्कूलों में	२,०१६
	२,७६२ निजी शिक्षण संस्थाओं में	६७,७८६
कुल	१२,६७६ शिक्षण शालाओं में	६,४८,६४१

ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों बम्बई में प्रति १०० कस्बों एवं ग्रामों पर ३,१७७ शिक्षण संस्थाएं थीं और पढ़ने वाले छात्रों का प्रतिशत १६ था।

मध्यप्रदेश में (सेन्ट्रल प्राविन्स) स्कूल जाने योग्य छात्रों की संख्या १६,४१,७२१ थी उसमें से १,४०,०६८ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[38]

		छात्र
	३ आर्ट्स कॉलेजों में	३०१
	२ व्यावसायिक कॉलेजों में	२६
	२४६ सैकण्डरी स्कूल में	२५,४०६
	२२३२ प्राथमिक शालाओं में	१,१४,०१३
	५ प्रशिक्षण शालाओं में	१८१
	४ विशेष स्कूलों में	१७१
कुल	२४६२ संस्थाएं	१,४०,०६८

प्रत्येक सौ कस्बों और ग्रामों पर लगभग ६ शिक्षण संस्थाएं थीं। इसमें स्कूल जाने योग्य छात्रों की संख्या का ६२ प्रतिशत शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इनमें निजी शिक्षण सस्थाओं की स्थिति उनकी रिपोर्ट में वर्णित नहीं होने से समाविष्ट नहीं है। इनके समावेश से भी संख्या में कोई विशेष अन्तर नहीं होता क्योंकि वे सामान्य प्रारम्भिक स्तर की थीं। उत्तर-पश्चिम प्रांतों और अवध में जहां शिक्षा-योग्य बच्चों की संख्या १७,०३५,७६२ थी, शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्र ३,५२,९७२ थे, जिनका विवरण निम्न प्रकार से है [४०]:—

	छात्र
२० आर्ट्स कॉलेजों में	१,८६३
९ व्यावसायिक कॉलेजों में	५७२
५०० सैकण्डरी स्कूलों में	५,९७२
६,२९२ प्राथमिक शालाओं में	२,१६,२७३
५ प्रतिशत विद्यालयों में	५९१
५० विशेष स्कूलों में	२,९२०
५,६३० निजी शिक्षण-संस्थाओं में	७१,५११
कुल १२,५०६ शिक्षण-संस्थानों में	३,५२,९७२

उपर्युक्त विवरण के अनुसार प्रत्येक सौ कस्बों और ग्रामों पर २ शिक्षण-संस्थाएं और स्कूल जाने वाले छात्रों का अनुपात ५ प्रतिशत था।

अजमेर-मेरवाड़ा जैसे छोटे से जिले में जहां स्कूल जाने योग्य बच्चों की संख्या ८१,३५३ थी, वहां १०,७८० छात्रों को शिक्षा प्रदान की जा रही थी। [४१]

	छात्र
१ आर्ट्स कॉलेज	७३
१४ सैकण्डरी स्कूलें	२,९२०
५० प्राथमिक स्कूलें	४,२५४
१ प्रशिक्षण विद्यालय	१२
१३४ निजी शिक्षण-संस्थाएं	३,५२१
कुल २०० शिक्षण-संस्थान	१०,७८०

इस तरह प्रत्येक सौ कस्बो और ग्रामों पर २७ शिक्षण-संस्थाएं थीं। स्कूल जाने योग्य छात्रों की संख्या तथा शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या का

अनुपात १३.५ प्रतिशत था । ऊपर दिए गए विवरण म कॉलेज के ७३ छात्र भी सम्मिलित हैं जो कि प्रथम वर्ष से लेकर चतुर्थ वर्ष तक की कक्षाओं में अध्ययन कर रहे थे ।

प्रान्त	प्रति सौ कस्बों एवं ग्रामों पर शिक्षण संस्थाएं	स्कूल जाने योग्य बच्चों में से स्कूल जाने वाले छात्रों का अनुपात	विशेष
बम्बई	३१.१७	१६	
मध्यप्रदेश	६.००	७.२	इनमें प्राइवेट शिक्षण-संस्थाओं का समावेश नहीं है ।
उत्तर-पश्चिमी सूबे एवं अवध	१२	५	
अजमेर-मेरवाड़ा	२७	१३.५	

इस तरह अजमेर-मेरवाड़ा में शिक्षा प्रसार उल्लेखनीय गति से विकास कर रहा था और उपर्युक्त आँकड़े इस तथ्य को बताते हैं कि इस छोटे से जिले में भी शिक्षा के प्रति अत्यधिक जागृति हो चली थी ।[४२]

विभिन्न स्तरों पर विभाजित विद्यार्थियों की संख्या एवं प्रतिशत निम्नांकित था ।[४३]

प्रान्त	कॉलेज		सैकण्डरी		प्राथमिक स्कूल		अन्य निजी शिक्षण-संस्थाएं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
बम्बई	२५१९	.३९	४१९७९	६.४७	५३३५६६	८२.२६	७०५६६	१०.८८
मध्यप्रदेश	३२७	.२३	२५४०६	१८.१४	११४०१३	८१.३८	३५२	.२५
उत्तर-पश्चिमी सूबे एवं अवध	२४३५	.६९	५९१७२	१६.७६	२१६२७३	६१.२७	७५०९२	२१.२८
अजमेर-मेरवाड़ा	७३	.६८	२९२०	२७.०९	४२५४	३९.४६	३५३३	३२.७७

कुल संख्या	प्रतिशत
६४८६४१	१००
१४००६८	१००
निजी शिक्षण-संस्थाएं सम्मिलित थीं :—	
३५२९७२	१००
१०७८०	१००

सबसे पहले सन् १८६४ में एक मिशनरी स्कूल मसूदा में खोला गया। इसके बाद भिनाय और बीर में भी मिशन स्कूल खुले। सन् १८८१ में इंसपेक्टर स्कूल ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि टाटोटी, परायड़ा, सुकरानी, मसूदा, भिनाय और बीर में सरकारी स्कूल खोले जाने चाहिए। रीड ने रिपोर्ट में यह स्पष्ट कहा कि मिशन स्कूलें जनता में लोकप्रिय नहीं हैं व सभी जगह सरकारी स्कूलें खोलने पर बहुत जोर दिया जा रहा है तथा जिले के अधिकांश ग्रामों को सरकारी स्कूलों के लाभ से वंचित नहीं रखा जा सकता है।[४४] मिशन स्कूलों की कार्य-प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए रीड ने लिखा "सभी दृष्टिकोणों से मैं यह विश्वास करने पर बाध्य हुआ हूँ कि क्षेत्र में मिशन स्कूलें लोकप्रिय सिद्ध नहीं हुईं हैं और वे जो शिक्षा प्रदान कर रही है वह बहुत थोड़ी है। दुर्भाग्य से इन्होंने जिले के बड़े कस्बों को अपना कार्य-क्षेत्र चुना है परन्तु मेरा यह मत है कि अब वह समय आ गया है जब इस जिले के बड़े कस्बों को सरकारी स्कूलों के लाभ से वंचित नहीं रखा जा सकता है।"[४५]

एक अन्य पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा "मिशन स्कूलें जनता की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति में असफल रही हैं। मसूदा और टाटोटी के ठाकुरों ने मुझ से कई बार अनुरोध किया है कि मैं उनके वहाँ सरकारी स्कूलें खोले जाने के लिए सरकार से सिफारिश करूँ और भिनाय ठाकुर (जिनसे मैं आज तक मिला तक नहीं) ने भी बार-बार यही अनुरोध मेरे डिप्टी इंस्पेक्टर से किया है।"[४६]

इस संदर्भ में रीड का दृष्टिकोण नवीन नहीं था। इसी तरह का मत प्रशासनिक पुनर्गठन के समय, कुछ वर्षों पूर्व, मेजर रीप्टन ने प्रकट किया था। सन् १८७७–७८ की अपनी रिपोर्ट में मेजर डब्ल्यू. वाईट ने भी मिशन स्कूलों की प्रशंसा नहीं की थी। सामान्यत: जिले में सर्वत्र लोगों ने इन्हें अस्वीकार ही किया। रीड के असंतोष का मुख्य कारण इन मिशन स्कूलों में शिक्षा का निम्न स्तर था।[४७] उसने स्पष्ट कहा कि "२१ वर्षों तक बिना हस्तक्षेप किए इन्हें परीक्षण का अवसर दिया गया था परन्तु ये अपने कर्तव्य में असफल सिद्ध हुए और अब यदि उनके हितों की अपेक्षा जनता के अत्यधिक आवश्यक हितों को प्राथमिकता दी जाती है तो उन्हें असंतोष प्रकट नहीं करना चाहिए।"[४८]

व्यावर मिशन स्कूलों के सुपरिंटेंडेंट डी० डी० स्वलब्रेड ने रीड द्वारा सरकारी स्कूलें खोलने की राज्य की नीति के विरुद्ध कड़ा विरोध प्रकट किया था।[४९] अजमेर के कमिश्नर एवं निदेशक शिक्षा-विभाग सॉडर्स को उनके द्वारा लिखे गए एक पत्र में यह असंतोष पूर्णतया स्पष्ट है। इस पत्र में उन्होंने यह तर्क दिया है कि इस तरह के सरकारी स्कूल खोलना सार्वजनिक धन का अपव्यय मात्र है।[५०] मिशन के अधिकारियों ने भी भारत के वायसराय रिपन को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया जिसमें यह कहा गया था कि "मिशन स्कूलें जनता की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्णतया पूर्ति कर रही हैं। इन सभी में उन छात्रों को शिक्षित करने की पूर्ण शक्ति एवं सामर्थ्य है जो स्कूल में उपस्थित होते हैं और नए सरकारी स्कूल खोलने का परिणाम पहले की तरह कटुता एवं द्वेष का वातावरण होगा।"[५१] इस तरह के ज्ञापन का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[५२]

सन् १८८१ में, पाँच सरकारी स्कूलें सेंदड़ा, टाटोटी, मसूदा, परायड़ा और भिनाय में खोली गईं।[५३] मसूदा में मिशन और सरकारी स्कूल दोनों थे। वहाँ के संबंध में सन् १८८२ में हेरिल ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि मसूदा के अधिकांश लोग सरकारी स्कूल के जारी रखने के पक्ष में हैं और छात्रों की संख्या एवं उनके शैक्षणिक स्तर के दृष्टिकोण से सरकारी स्कूल अपने प्रतिद्वन्द्वी (मिशन स्कूल) से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।[५४] यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गत सदी के अंतिम बीस वर्षों में मिशन स्कूलों की असंतोषजनक स्थिति के कारण ही सरकारी स्कूलें स्थापित करने की नीति को प्रोत्साहन मिला था।

इस वात की संभावना पहले से ही थी कि अजमेर जहाँ की अधिकांश जनसंख्या रूढ़िवादी व पिछड़ी हुई थी उसमें शिक्षा की गति धीमी रहेगी।[५५] सन् १८७१ में अजमेर में महिला नार्मल स्कूल स्थापित कर उसके साथ लड़कियों का एक स्कूल भी (कन्या शाला) सम्बद्ध कर दिया गया। १८७५–७६ में महिला नॉर्मल स्कूल में १२ व स्कूल में १९ छात्राएं थीं।[५६] लड़कियों ने सीने-पिरोने के प्रशिक्षण को अधिक पसंद किया और इसी प्रशिक्षण से लड़कियां इस स्कूल की ओर आरम्भ में आकर्षित हुईं। १८९०-९१ में निजी और सार्वजनिक संस्थाओं को मिलाकर १९ स्कूलों में ५६७ लड़कियां शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। शिक्षा योग्य महिलाओं की संख्या के अनुपात में इनका प्रतिशत १.५ था। धीरे-धीरे महिला-शिक्षा के प्रति प्रचलित अंधविश्वास कम होता गया। मुसलमान महिलाएं अपनी पर्दानशीनी के कारण और राजपूत महिलाएं अपनी जातिगत संकीर्णता के फलस्वरूप इस क्षेत्र में काफी पिछड़ी रहीं। अजमेर-मेरवाड़ा की जनता के लिए महिला-शिक्षा एकदम 'अनूठी' और नवीन वात थी। इसकी धीमी गति होना आश्चर्यजनक नहीं था।

सन् १८८१ में, प्रांत में यूरोपीय छात्रों के लिए सिर्फ एक रेल्वे स्कूल अजमेर में था।[५७] उस वर्ष इसमें छात्रों की संख्या २९ थी और सन् १८९१ में यह बढ़कर ९४ तक पहुँच गई थी। सन् १८९६-९७ में यूरोपीय लड़के-लड़कियों के लिए एक स्कूल रोमन कैथोलिक कान्वेंट ने अजमेर में शुरू किया। इसने शीघ्र ही सभी रोमन कैथोलिक माता-पिता का ध्यान आकृष्ट कर लिया और रेल्वे स्कूल के छात्रों की संख्या घट कर सन् १९०३ में ५४ रह गई, जबकि कान्वेंट स्कूल में ८८ छात्र-छात्राओं की संख्या थी। दोनों ही सैकेंडरी स्तर की स्कूलें थीं जिन्हें सरकार से आर्थिक अनुदान प्राप्त होता था।[५८]

अजमेर-मेरवाड़ा में प्राथमिक शिक्षा-प्रसार के लिए गत शताब्दी के चतुर्थ दशक में किए गए आरम्भिक प्रयास असफल रहे। वास्तविक आधार तो सन् १८५१ में स्थापित हुआ और शिक्षा का प्रसार तेजी से होने लगा। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति लोगों का अविश्वास और संदेश भी लुप्त हो गया। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गवर्नमेन्ट कॉलेज की स्थापना और मेयो कॉलेज खोलने की घोषणा महत्वपूर्ण कदम् थे। ये संस्थाएं बुनियादी तोर पर ठाकुरों और रजवाड़ों के राजघराने के लोगों के लिए थीं। सन् १८९६ में बी०ए० विषय तथा सन् १९१३ में बी० एस० सी० के विषय खुल जाना अजमेर-मेरवाड़ा के शैक्षणिक क्षेत्र में विकास के लक्षण थे।

महिला-शिक्षा इतना व्यापक स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकी इसके मूल में लोगों की पुराणपंथी मनोवृत्ति और सामाजिक पिछड़ापन बाधक था। गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मिशनरियों ने भी प्रमुख कस्बों और ग्रामों में कई स्कूलों की स्थापना की, परन्तु मिशन स्कूलें लोगों में लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सकीं और उनका शैक्षणिक स्तर भी सामान्यत: काफी गिरा हुआ था।

अध्याय ८

१. लार्ड मेकॉले के भाषण—लांगमेन्स—लंदन (१८६३) पृ० २२३–२५।

२. उपरोक्त पृ० ७८।

३. एनीबेसेन्ट, इन्डिया ए नेशन, मद्रास १९२३ पृष्ठ १०१।

४. उपरोक्त

"यद्यपि यह सच है कि अंग्रेज़ी शिक्षा का श्रेय ईसाई मिशनरियों को है तथापि यह भी सही है कि उनका ध्येय शिक्षा न होकर धर्म-परिवर्तन

था तथा शिक्षा उसका माध्यम था। भारतीयों ने ईसाई धर्म की अवहेलना करते हुए शिक्षा का पूर्ण फायदा उठाया।

५. शिक्षा सिर्फ देशी स्कूलों में दी जाती थी। सन् १८४५–४६ में इनकी संख्या ५६ थी जिनमें से ४२ हिन्दी व संस्कृत पाठशालाएं थीं व इनमें ८०७ छात्र अध्ययन करते थे तथा १४ फारसी व अरबी के मदरसे थे जिनमें २६६ छात्र थे। अजमेर व शाहपुरा में १३ फारसी व २० हिन्दी के स्कूल थे तथा शेष गाँवों में थीं। राजपूत, शिक्षा के प्रति उदासीन थे। इस जाति के कुछ विद्यार्थी हिन्दी स्कूलों में अवश्य थे परन्तु फारसी मदरसे में एक भी नहीं था। (फाइल नं० ६६ आर० एस० ए० बी०)।

६. इन स्कूलों में से अजमेर में ४५, पुष्कर में ५६, भिणाय में १६, केकड़ी में १६ व रामसर में १६ विद्यार्थी थे। (फाइल नम्बर ६६ आर० एस० ए० बी०)।

७. फाइल क्रमांक ६६।

८. अजमेर देहात पाठशालाओं के निरीक्षक एस० डब्ल्यू फॉलन द्वारा एच० एस० रीड को पत्र दि० १ अक्टूबर, १८५९ पत्र संख्या ३८।

९. कर्नल सदरलैंड ए० जी० जी० राजपूताना द्वारा सचिव, भारत सरकार को पत्र, दि० १० मार्च, १८४७।

१०. अजमेर देहात पाठशालाओं के निरीक्षक एस० डब्ल्यू फॉलन द्वारा एच० एस० रीड को पत्र, दि० १ अक्टूबर, १८५९ पत्र संख्या ३८।
"कुछ वर्षों पूर्व दिल्ली में इस आशय की अफवाह फैली थी कि देहली कॉलेज के विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी पोशाक पहनना अनिवार्य कर दिया जाएगा, इसे लोगों ने ईसाईयत का पर्याय मान लिया था। इसी तरह अजमेर में भी सैनिक विद्रोह के दिनों में यह अफवाह फैली थी कि गवर्नमेंट स्कूल के विद्यार्थियों की जाति नष्ट करने के लिए उनमें एक विशिष्ठ मिठाई वितरित की जाएगी। दोनों ही मामलों में कुछ अभिभावकों ने सतर्कतावश अपने बच्चों को कुछ दिनों के लिए स्कूल भेजना स्थगित कर दिया था, परन्तु जब ये अफवाहें निर्मूल सिद्ध हुईं तो वे उन्हें पुनः स्कूल भेजने लगे।"

११. सन् १८५३ में कुल २३० विद्यार्थी थे जिनमें ४४ मुसलमान और १८६ हिन्दू थे। सन् १८६१ में यह स्कूल कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबंधित था और सन् १८६८ में इसे कॉलेज के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था। परन्तु शिक्षकों की संख्या कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम कला

परीक्षा के शिक्षण के लिए आवश्यक सीमा तक ही निर्धारित रखी गई थी।

१२. उत्तर-पश्चिमी प्रांत के सहायक सचिव द्वारा सचिव, भारत सरकार को पत्र, दिनांक ३ अप्रेल, १८४७।

१३. उपरोक्त।

१४. उपरोक्त।

१५. प्रोफेसर हॉल व डा. फालोन के निर्देशन में स्कूल ने बड़ी तरक्की की थी।

१६. सर चार्ल्स वुड ने सन् १८५४ में अपना बहुचर्चित संदेश प्रसारित किया जिसमें यूरोपीय ज्ञान के व्यापक प्रसार, प्रजा के नैतिक मानसिक एवं शारीरिक विकास तथा उच्चतम योग्यता के सरकारी कर्मचारियों की प्राप्ति के सुझाव निहित थे। सरकारी व्यय से अधिकतम प्रजा को सभी उपयोगी और व्यावहारिक ज्ञान देने की योजना सुझाई गई थी। प्रत्येक जिले में ऐसी स्कूलें खोलने का सुझाव दिया गया था जो स्थानीय भाषा के माध्यम द्वारा उच्चतम शिक्षा प्रदान कर सकें। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर कालेज एवं विश्वविद्यालय के स्तर तक शिक्षा को पहुँचाने का लक्ष्य एवं इस आशय का शिक्षा क्रम इसमें निर्धारित किया गया था। उक्त संदेश पर आधारित सरकारी आदेश के अन्तर्गत जनता में व्याप्त अशिक्षा की समाप्ति के लिए शिक्षा-विभाग की स्थापना की गई। एस० डब्ल्यू फॉलन द्वारा एस० एस० रीड को प्रेपित पत्र, दिनांक १ अक्टूबर, १८५९ पत्र संख्या ३८।

१७. सी० एच० डिमेलों कार्यवाहक प्रिंसिपल अजमेर कालेज द्वारा कर्नल ब्रूक्स ए० जी० जी० राज० को पत्र, दिनांक १३ अक्टूबर, १८७०; सन् १८८८ में कालेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बन्धित था और सन् १८९६ तक कालेज का शिक्षणस्तर प्रथम कला वर्ग अथवा इंटरमीडियेट से आगे नहीं बढ़ पाया था। सन् १८९६ में ४२ विद्यार्थी एंट्रेंस कक्षा में पढ़ रहे थे जो मैट्रिक परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, जबकि चार कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या ५५ थी। (ड्यूल पांक, अजमेर-मेरवाड़ा की मेडिको टोपोग्राफिकल रिपोर्ट) पृ० ८८।

१८. सी० एच० डिमेलो द्वारा निदेशक, शिक्षा-विभाग को पत्र दिनांक ७ नवम्बर, १८७०।

१९. उपर्युक्त।

२०. उपर्युक्त।

२१. उपर्युक्त ।

२२. उपर्युक्त ।

२३. उपर्युक्त ।

२४. सी० यू० एचीसन द्वारा डिप्टी कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक १२ जनवरी, १८७१ "इस योजना को प्रस्तुत करने में वायसराय एवं कौंसिल का मुख्य उद्देश्य राजाओं और राजपूताने की प्रजा की रुचि शिक्षा के प्रति जागृति कर इस क्षेत्र में उनकी सहानुभूति प्राप्त करना है। ऐसी आशा है कि रियासतों के शासक स्वयं इतने समझदार हैं कि वे रियासतों के मध्य ऐसी संस्था की संरचना के लाभ को अच्छी तरह से समझते हैं।"

२५. जे० डी० लाटूश-गजेटीयर्स अजमेर-मेरवाड़ा (१८७५) पृ० ६२

२६. धौलपुर, जैसलमेर और डूंगरपुर की तीन रियासतों ने आरम्भ में इस कोष में अनुदान राशि नहीं दी थी परन्तु बाद में डूंगरपुर और जैसलमेर ने अनुदान राशि प्रदान कर दी थी। जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, कोटा, भरतपुर, बीकानेर, झालावाड़, अलवर तथा टोंक रियासतों ने कॉलेज पार्क में छात्रावास भवनों का ४,२८,००० रुपए की लागत से निर्माण करवाया था तथा उस पर वार्षिक व्यय लगभग १८,५६०० रुपए किया जाता रहा। इस राशि में हाऊस मास्टर और कर्मचारियों का वेतन भी समाहित था।

२७. जे० डी० लाटूश गजेटीयर्स अजमेर-मेरवाड़ा (१८७५) पृ० ६२।

२८. "गत बीस वर्षों में शिक्षा की अजमेर और राजपूताने में बहुत प्रगति हुई है। सन् १८७६ में २१ विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे जबकि सन् १८९६ में इन विद्यार्थियों की संख्या २०० हो गई थी। यदि उचित सुविधाएं प्राप्त होती रहीं, तो यह निश्चित है कि इनमें से अधिकांश विद्यार्थी बी० ए० तक शिक्षा जारी रख सकेंगे जिससे उन्हें सरकारी विभागों एवं रजवाड़ों में आजीविका प्राप्त हो सकेगी।"

एफ० एल० रीड, प्रिन्सिपल गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर द्वारा प्रसारित विज्ञाप्ति दिनांक २३ मार्च, १८९६।

२९. प्रिन्सिपल रीड की विज्ञप्ति दिनांक २३ मार्च, १८९६।

३०. कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा तथा ए० जी० जी० राजपूताना को पत्र दि० २३ जून, १८९६।

निम्न तालिका बी० ए० की कक्षा को प्रारम्भ करने के लिए प्राप्त आर्थिक सहायता की सूचक है:—

अ—ठाकुर तथा इस्तमरारदार		
१—रावबहादुरसिंह मसूदा	रुपए	३,०००
२—देवलिया ठाकुर	,,	५००
३—दातरी ठाकुर	,,	४००
४—सावर ठाकुर	,,	१,०००
५—खरवा ठाकुर	,,	१०
६—गोविंदगढ़ ठाकुर	,,	७५
७—ठाकुर सरदारसिंह	,,	७५
८—नवाब शम्सुद्दीन अलीखान	,,	११०
ब—सेठ एवं साहूकार		
९—सेठ चंपालाल	रुपए	५,०००
१०—सेठ समीरमल	,,	२,०००
११—सेठ मूलचन्द सोनी	,,	२,०००
१२—सेठ सोभागमल	,,	७००
१३—सेठ पन्नालाल	,,	४००
१४—सेठ हरनारायण	,,	३०१
१५—भूतपूर्व विद्यार्थी एवं अन्य	,,	१०,३३०
कुल योग		२८,५२६

(परिशिष्ट सूची संलग्न पत्र संख्या ३७७-८ दिनांक २३ नवम्बर, १९०५ प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर द्वारा कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा को प्रेषित)

३१. शिक्षा-विभाग भारत सरकार द्वारा प्रसारित विज्ञप्ति, २१ फरवरी, १९१३, सं० ३०१ सी० डी० ।

३२. फाइल क्रमांक २२८ सन् १९१३-१४ (कमिश्नर कार्यालय, अजमेर) ।

३३. रजिस्ट्रार इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर को पत्र, दि० २० जनवरी, १९१४ संख्या २८० ।

कॉलेज के पास एक अच्छा पुस्तकालय था उसके अहाते में छात्रावास भवन भी था जिसमें नार्मल स्कूल में पढ़ने वाले छात्र तथा देहातों से आए हुए छात्रवृत्ति प्राप्त छात्रों के लिए रहने एवं खाने की व्यवस्था थी। इस

छात्रावास में पचास छात्रों की व्यवस्था थी। कॉलेज के कर्मचारी वर्ग में १ प्रिन्सिपल, संस्थाओं के प्रधानाचार्य, ६ प्रोफेसर, १३ अंग्रेजी के शिक्षक, ६ पंडित, ६ मोलवी एवं १ पुस्तकालय व्यवस्थापक की व्यवस्था थी। (डुरेल पांक, मेडिको टोपोग्राफिकल रिपोर्ट अजमेर-मेरवाड़ा पृष्ठ ८८)।

३४. शिक्षा-कर की अलोकप्रियता का अनुमान इसी से आँका जा सकता है कि सन् १८५७ में जब भिनाय राजा की साली सती होने लगी तो पंडितों ने उसकी चिता के चारों ओर खड़े होकर उक्त सती से अपने प्रभाव द्वारा देहाती स्कूलों पर लगने वाले कर की समाप्ति की याचना की।

३५. फाइल क्रमांक २२६ सन् १९१३, कमिश्नर कार्यालय, अजमेर। सन् १८७६-७७ में जिला पाठशालाओं का पुनर्गठन किया गया था। इन्हें सरकार से आर्थिक सहायता तथा ३½ वार्षिक शुल्क में से (१ प्रतिशत) अनुदान मिलता था। सन् १८७६-७७ से लेकर सन् १९०० तक इन पाठशालाओं की संख्या में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ था। इनकी संख्या यथावत रही। सन् १८७६ में इन पाठशालाओं के नियमित छात्रों की संख्या १७७० थी, सन् १९०० में छात्रसंख्या ४०८५ थी जिसमें २७८८ छात्र अजमेर के तथा १२९७ छात्र मेरवाड़ा के थे। अजमेर-मेरवाड़ा की मेडिको टोपोग्राफिकल रिपोर्ट डुरेल पांक पृ. ८८।

३६. क्षेत्र में १९ एडवांस्ड स्कूलें भी थीं जो सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा संचालित होती थीं।

३७. दो तरह की स्कूलें थीं—एक तो तहसील स्कूलें अथवा वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलें एवं दूसरी हलकाबंदी या वर्नाक्यूलर एलीमेंटरी स्कूलें थीं। तहसील स्कूलों का सम्पूर्ण भार सरकार द्वारा वहन किया जाता था। स्कूल भवनों का निर्माण तथा शिक्षकों का वेतन सरकार चुकाती थी। सामान्य प्रभार की पूर्ति विद्यार्थियों के शिक्षा शुल्क से की जाती थी। हलकाबंदी स्कूलें जमींदारों से उगाहे गए शिक्षा शुल्क पर निर्भर थी—
विद्यालय-निरीक्षक द्वारा एल. एस. सॉडर्स को पत्र, दिनांक २८ अगस्त, १८७१।

३८. ई. एफ. हेरिस, कार्यवाहक प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कॉलिज, अजमेर द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दि. १८ जुलाई, १८६९ संख्या २६५।

३९. उपर्युक्त।

४०. उपर्युक्त।

४१. उपर्युक्त ।

४२. उपर्युक्त ।

४३. उपर्युक्त ।

४४. विद्यालय निरीक्षक, अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट वर्ष सन् १८८०-८१ से अंकित उद्धरण ।

४५. उपर्युक्त ।

४६. रीड, प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कालेज द्वारा सॉडर्स कमिश्नर अजमेर के पत्र, दि. ११ दिसम्बर, १८८१ ।

४७. रीड का कथन है कि उन्होंने मसूदा मिशन स्कूल का निरीक्षण करने पर यह देखा कि अढ़ाई साल की शिक्षा के बाद भी छात्र साधारण गुणा करने में असमर्थ थे । अन्य विषयों में भी उनका सामान्य ज्ञान बहुत ही निम्न स्तर का था । टांटोटी मिशन स्कूल में चार साल की शिक्षा के पश्चात् भी छात्र सामान्य ज्ञान से अधिक आगे नहीं बढ़ सके थे । ब्यावर स्कूल भी पुराने रिकॉर्डों की जाँच तथा व्यक्तिगत निरीक्षण से पूर्णतया असंतोषजनक सिद्ध हुआ था । रीड प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर द्वारा सॉडर्स कमिश्नर अजमेर को पत्र दि. ११ दिसम्बर, १८८१ ।

४८. सॉडर्स, कमिश्नर अजमेर को पत्र दिनांक २२ जून, १८८१ ।

४९. स्कूलग्रेड द्वारा कमिश्नर एवं शिक्षा निदेशक अजमेर को पत्र दिनांक २२ जून, १८८१ ।

५०. स्कूलग्रेड द्वारा सॉडर्स को पत्र दिनांक २९ जून, १८८१ ।

५१. सन् १८८१ में आयोजित मिशन कांफ्रेन्स की ओर से स्कूलग्रेड एवं जे. ग्रे. द्वारा वायसराय को प्रस्तुत ज्ञापन, फाइल क्रमांक १८ ।

५२. रीड द्वारा सॉडर्स कमिश्नर अजमेर को पत्र, फाइल दिनांक ११ दिसम्बर, १८८१ ।

५३. मसूदा स्कूल २० जून, १८८१ को खुला और शीघ्र ही ८० लड़के भरती हो गए थे ।

५४. हेरिस द्वारा विशेष रिपोर्ट दिनांक २८ जून, सन् १८८२,

५५. सन् १८६७ में महिला अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिए एक स्कूल पुष्कर में खोला गया था परन्तु यह परीक्षण सफल नहीं हुआ, क्योंकि इस स्कूल के अध्यापिका पद के लिए शिक्षित महिलाएं उपलब्ध नहीं हो

गई थी। प्रिंसिपल अजमेर कॉलेज द्वारा एल. एल. साडर्स कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दि. १७ फरवरी, १८७२।

५६. निरीक्षिका महिला नार्मल स्कूल द्वारा निरीक्षक शिक्षा विभाग अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र— फाईल संख्या ११।

५७. मैनेजर राजपूताना-मालवा रेल्वे द्वारा ए० जी०जी० के प्रथम असिस्टेन्ट को पत्र, दि० २५ अप्रेल, १८८७ (पत्र संख्या ५७०६)।

५८. रेल्वे स्कूल को मासिक सहायता ७५) रुपया व कान्वेन्ट स्कूल को १००) रुपया मासिक थी।

९

जनता की आर्थिक स्थिति

सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह में स्थानीय जनता ने भाग नहीं लिया था और गदर एक गरजते बादल की तरह बिना बरसे ही अजमेर के राजनीतिक आकाश से गुजर गया था।[1] किन्तु इससे यह अनुमान लगाना गलत होगा कि अजमेर-मेरवाड़ा की जनता अंग्रेज़ी प्रशासन के अन्तर्गत सुखी और समृद्ध थी।

अजमेर-मेरवाड़ा में अंग्रेज़ों के शासन के अन्तर्गत किसानों की दयनीय स्थिति बराबर बनी रही। इसका मुख्य कारण यह था कि मराठों ने अपने शासन के अन्तिम वर्ष में जो लगान की रकम वसूल की थी उसी को आधार मानकर अंग्रेज़ सरकार इस पूरे काल में अपनी लगान की राशि को निर्धारित करती रही। खालसा-क्षेत्र में केवल उन्हीं किसानों को भूमिया ठिकाने में हक प्राप्त थे, जो अपनी भूमि में कुँआ, नाड़ी, मेड़बंदी आदि का निर्माण करते थे।[2] असिंचित और बंजर भूमि पर सरकार का स्वामित्व था।[3] अंग्रज़ों के शासन के प्रारम्भिक काल में लगान की दर फसल का आधा हिस्सा होती थी। सरकार किसानों की गिरी हुई हालत से अनभिज्ञ थी। उनके द्वारा निर्धारित राशि अपूर्ण एवं अविश्वस्त आंकड़ों पर आधारित थी।[4] लगान निर्धारित करने में उनका दृष्टिकोण सिर्फ राजस्व की वृद्धि करना होता था।[5] उन्होंने लोगों की स्थिति जानने का कभी प्रयत्न किया ही नहीं।[6] मेरवाड़ा में जमीन पथरीली होने के कारण आधी फसल लगान के रूप में देना किसान की क्षमता के बाहर था। कुछ समय के लिए सरकार ने यह व्यवस्था

भी करदी थी कि अगर किसी गाँव में किसान के गाँव छोड़कर चले जाने या कृषि के धन्धे का परित्याग कर देने के कारण लगान की राशि में जो कमी होगी तो उसकी पूर्ति उन लोगों को करनी पड़ती थी जो खेती नहीं करते थे। इसने लोगों पर कर का भार बढ़ा दिया था।[७] यद्यपि बाद में लगान की दर आधी से घटा कर ⅓ कर दी गई थी,[८] परन्तु इसने भी किसानों को वास्तविक राहत प्रदान नहीं की, क्योंकि आरम्भ में निर्धारित कर की दर इतनी ज्यादा थी कि उसका ⅓ हिस्सा भी किसानों के लिए अधिक था। सरकार ने सिंचाई के लिए कुछ तालाबों आदि का निर्माण अवश्य कराया परन्तु इसमें भी सरकार का दृष्टिकोण किसान को सिंचाई के साधन उपलब्ध करवाने के बजाय अपनी राजस्व की आय की वृद्धि की नीयत रहती थी! सिंचाई के साधन भी सरकार अपनी ओर से तैयार नहीं करवाती थी। जब कभी कोई नया तालाब बनाया जाता था या पुराने की मरम्मत की जाती थी तब कराधान के समय निर्माण का व्यय का खर्च अतिरिक्त जोड़ा जाता था। कर्नल डिक्सन जैसे व्यक्ति ने भी लगान की दर इतनी ऊँची निर्धारित की थी कि उसे अच्छे वर्षों में ही वसूल किया जा सकता था। कर्नल डिक्सन ने यद्यपि अकाल व सूखे की स्थिति में लगान में आवश्यकतानुसार छूट की व्यवस्था रखी थी परन्तु सन् १८८०-८४ के बीच अजमेर में केवल ६५५ रुपए तथा मेरवाड़ा में कुल ५९१ रुपए की छूट दी गई थी।[९] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह राहत सिर्फ दिखावामात्र थी। इस्तमरारदारी क्षेत्र में लगान के कड़े नियमों के बाद भी खालसा क्षेत्र के अन्य किसानों की तुलना में वहाँ के किसानों की स्थिति ठीक थी। खालसा-क्षेत्र के किसान भारी कर्ज में डूबे हुए थे।[१०]

मराठा शासनकाल से इस्तमरारदारी क्षेत्र में किसानों की हालत खराब होने लगी थी। मराठों की नीति थी "जितना लिया जा सके ले लो।" वे मनमाने कर इस्तमरारदारों से वसूल करते थे।[११] इस्तमरारदार जितना धन मराठों को प्रदान करते थे वह उनके द्वारा किसानों से वसूल किया जाना स्वभाविक था। मराठा काल में लगभग ४० कर व उपकर प्रचलित थे। इस कारण मराठा काल में किसानों से कई नये कर व उपकर वसूल किए जाने लगे। मुगलकाल में इन ठिकानेदारों को अपने ठिकाने छिनने का भय बना रहा था परन्तु मराठों ने नकद भुगतान के एवज में उन्हें अपने ठिकानों का स्थाई स्वामी बनाकर उन्हें निरंकुश अधिकार प्रदान कर दिए थे।[१२] मराठों की मुख्य इच्छा धन बटोरने की थी। उन्होंने इन ठिकानेदारों को भूमि का स्वामी बना कर किसानों को पूर्णतया उनकी मर्जी पर छोड़ दिया था। इस कारण ठिकानेदारों को अपने ठिकाने में रहने वाली जनता पर असीमित अधिकार प्राप्त हो गए थे।[१३] अंग्रेज़ों ने इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया। अंग्रेज़ सरकार ने सन् १८७७ में इस्तमरारदारों पर अतिरिक्त कर समाप्त करते समय भी इस बात का कोई ध्यान नहीं रखा कि उसी अनुपात में करों व लागबागों

से आम जनता को राहत मिले।[१४] इसका परिणाम यह हुआ कि इस्तमरारदार को आर्थिक राहत मिलने के बाद भी जनता करों से पहले के समान ही दबी रही।[१५] सिर्फ उन चन्द व्यक्तियों को छोड़कर जिनके परिवार उस ठिकाने में इस्तमरारदार के आगमन के पूर्व से बसे हुए थे, शेष जनता को अपने मकानों को बेचने का अधिकार भी प्राप्त नहीं था।[१६] अंग्रेज़ सरकार ने सन् १८७७ के भूमि एवं राजस्व विनिमय की धारा २१ के अन्तर्गत ठिकानों में किसान को इस्तमरारदार की भूमि पर किरायेदार का स्थान दे दिया था। इस्तमरारी ठिकानों में किसान को भूमि पर ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं था कि जिसके अन्तर्गत किसान ठिकानेदार के अप्रसन्न होने पर भी उस ठिकाने में रह सकता था।[१७] कठोर कर और असुरक्षा के कारण ठिकानों में किसान की स्थिति दयनीय हो गई थी।[१८] किसान को अपनी उपज का साठ प्रतिशत ठिकानेदार को लगान व अन्य लागबागों के रूप में दे देना पड़ता था।[१९] इस्तमरारदारी क्षेत्र मे किसान को उनकी बेदखली के विरुद्ध किसी भी प्रकार के कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं थे।[२०] अंग्रेज़ सरकार ने सार्वभौम सत्ता होने के नाते नागरिकों के अधिकारों के प्रश्न पर भी ठिकाने की जनता को सुरक्षा प्रदान करने का प्रयत्न नहीं किया था।[२१]

प्राय: प्रतिवर्ष अकाल पड़ने से क्षेत्र की जनता की आर्थिक स्थिति जर्जर हो गई थी। सन् १८१९, १८२४, १८३३, १८४८, १८६८, १८९०-९२, १८९८–१९०० और १९०१–१९०२ के अकाल वर्षों ने क्षेत्र में भुखमरी की स्थिति पैदा कर दी थी, जिससे लोगों का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान पूर्णतया नष्ट हो गया था।[२२] गरीब जनता राहत के लिए कराहने लगी थी। पारिवारिक बंधन शिथिल हो गए थे। क्षेत्र के तीन-चौथाई मवेशी नष्ट हो गए थे। सन् १८७९ में राजपूताना-मालवा रेल मार्ग ने भौतिक समृद्धि के आसार उत्पन्न किए परन्तु इससे विशेष फर्क नहीं हुआ। अजमेर शहर की जनसंख्या भी पहले की अपेक्षा दुगनी हो गई थी। शहर का महत्व बढ़ा एवं विस्तार भी हुआ परन्तु जिले के ग्रामीण क्षेत्र के लोगों पर अकालों के इतने गहरे प्रहार हुए कि अजमेर इनकी क्षतिपूर्ति करने में असमर्थ रहा और इसकी प्रगति में ये विपदाएं बहुधा बाधक ही बनी रहीं।[२३]

अजमेर-मेरवाड़ा जिले की अधिकांश जनता कृषि प्रधान थी अतएव इस तथ्य को समझ लेने मात्र से ही हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि निरंतर अकालों एवं सूखों की स्थिति ने कितनी गंभीर क्षति पहुँचाई होगी। औद्योगिक जनसंख्या केवल १७.७४ प्रतिशत थी जो मुख्यतया कपास एवं चमड़े के उद्योगों, किराना एवं परचून के धंधों और रेल्वे वर्कशॉप में लगी हुई थी। खेतिहर मजदूरों के अतिरिक्त सामान्य श्रमिक की जनसंख्या १०.५९ प्रतिशत थी। निजी नौकरियों गैर सरकारी में ५.९१ और ४.२१ प्रतिशत व्यापार में लगी हुई थी। स्वतंत्र साधन वाले लोग

मुश्किल से १.८०, प्रतिशत थे जबकि रोजगार एवं सरकारी सेवाओं में लगे लोग २.५६ और २.३८ प्रतिशत थे। अतः यह स्वाभाविक था कि अकाल के वर्षों ने अधिकांश जनता पर क्रूर प्रहार किया और यहाँ के उद्योग धंधों पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ा। [२४]

मुश्किल से १.८० आर्थिक कठिनाइयों के साथ ही कुछ तो शिक्षा प्रसार और बहुत कुछ सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप राजनीतिक चेतना बढ़ने लगी जिसने की लोगों में निराशा का भाव पैदा हुआ। इस निराशा की भावना ने अंग्रेज़ शासन के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न की। [२५]

यद्यपि यह जिला सन् १८५१ में नियमित व्यवस्था के अन्तर्गत आ गया था तथा कर्नल डिक्सन के समय में कृषि आदि के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कार्य भी हुए परन्तु साथ ही यह तथ्य भी साफ है कि अंग्रेज़ों ने राजस्व के रूप में जहाँ दो सौ की राशि औचित्यपूर्ण मानी थी वहाँ लोगों से तीन सौ रुपए तक वसूल किए तथा जहाँ चार सौ रुपया लेना चाहिए था वहाँ पांच सौ रुपए वसूल किए और इतने पर भी उनका सदा ही यह तर्क रहता था कि राजस्व व सरकारी शुल्क में और भी वृद्धि की गुंजाइश है। [२६] फलस्वरूप जनता आर्थिक भार से दब गई थी और उसकी स्थिति भिखारियों जैसी बन गई थी। अंग्रेज़ों ने चौकीदारी कर पहले दुगुना और फिर चौगुना कर दिया था। इस तरह उन्होंने लोगों को करों से दबा रखा था। सभी प्रतिष्ठित और शिक्षित लोगों के धंधे चौपट हो गए थे और लाखों लोग जीवनयापन की तलाश में बेघरबार हो गए थे। जब कभी कोई व्यक्ति धंधे या काम की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का निर्णय भी करता तो प्रत्येक व्यक्ति से सड़कों पर गुजरने के कर के रूप में एक आना व बैलगाड़ी के लिए चार आने से लेकर आठ आने तक कर वसूल किया जाता था। केवल वे ही लोग यात्रा कर पाते थे जो यह कर चुका सकते थे। किसानों की हालत दयनीय हो गई थी और नौकरी-पेशा लोगों की स्थिति भी शोचनीय थी। [२७]

अंग्रेज़ों के आधिपत्य के सम्पूर्ण काल में अजमेर-मेरवाड़ा का किसान आकाश-वृत्ति पर ही जीता था। उनके जीवन-यापन का एकमात्र साधन खेती था। किसान पर्याप्त संख्या में मवेशी पालकर भी अपनी आय में अतिरिक्त वृद्धि करने का प्रयास करते थे परन्तु अकाल एवं अभाव की स्थिति के कारण पशु भी अधिकांशतः नष्ट हो जाते थे। मवेशियों से उन्हें दूध, घी, ऊन और खेतों के लिए खाद उपलब्ध हुआ करती थी। [२८] अकाल के समय में पाँच प्रतिशत पशु ही बच पाते थे। घास व चारे के अभाव में, मवेशियों की भारी क्षति होती थी और इस तरह उनके जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होना भी कठिन हो जाता था। [२६]

किसानों में बच्चों की संख्या एक सबसे बड़ी समस्या थी। उन्हें अपने सीमित हाथों एवं साधनों से अनेक प्राणियों का पेट भरना होता था। एक तरफ आए दिन परिवार में नये सदस्यों की वृद्धि और दूसरी तरफ अकाल से किसानों के लिए भोजन

और जीवनोंपयोगी वस्तुएं जुटाना कठिन समस्या थी। इसका दुष्प्रभाव उनकी खुराक पर पड़ता था। उन्हें पोषण, शक्ति से हीन और अपर्याप्त भोजन पर गुजारा करना पड़ता था। सामान्यतः वे एक समय ही भोजन करते थे।[३०]

कृषि भूमि में भी वृद्धि हुई थी। खाद्यान्नों के ऊँचे भावों से किसान को लाभ न पहुँच कर सूदखोर महाजनों को इसका लाभ मिलता था। किसान ऋण से दबा रहता था। यदि किसान अपनी फसल निकट एवं दूरस्थ मंडियों में बेचने ले जाता तो उसे अवश्य ही लाभ पहुँच पाता, परन्तु यहाँ का किसान ग्राम साहूकार पर अधिक निर्भर रहता था।[३१]

लोगों की सामान्य खुराक गेहूँ, बाजरा, जौ, मक्का, ज्वार और मोठ आदि की दालें थीं। किसान अधिकांशतः जो और मक्का पर गुजारा करता था। जिले के अधिकांश क्षेत्र में यही फसलें बहुतायत से होती थीं। अकाल एवं पशुधन के ह्रास से घी दूध किसानों के लिए जीवन की आवश्यकता न रहकर त्योंहारों की चीजों में शुमार होने लगा था। लोगों की वार्षिक खपत के अनुपात में फसलों की उपज में भारी गिरावट आगई थी। रेलवे की रसीदों को देखने से पता चल जाता है कि उन दिनों अजमेर में बाहर से प्रतिवर्ष भारी गल्ला मँगाया जाता रहा था।[३२]

अकाल के दिनों में अंग्रेज़ सरकार ने राहत कार्य हाथ में लेना प्रारम्भ किया था जिससे किसानों को भुखमरी और दूसरे स्थानों पर जाने से बचाया जा सका। सरकार के इन कदमों का जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा।[३३] सरकार तकावी ऋण बाँटने, कतिपय अकाल राहत कार्य और अन्य राहत सामग्री वितरित करने के कदम उठाती रहती थी। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो जिले की स्थिति और भी खराब हो जाती तथा भारी संख्या में लोग दूसरे स्थानों पर चले जाते। राहत कार्य में लगे लोगों को इतनी ही मजदूरी दी जाती थी जो मात्र उनके भरण-पोषण के लिए पर्याप्त होती थी। रेलों के माध्यम से चारा बाहर से मंगवाया जाता था ताकि जिले के मवेशियों को बचाया जा सके।[३४]

भारत के सभी प्रान्तों की अपेक्षा राजपूताना अपनी विशिष्ट प्राकृतिक स्थिति के कारण आये दिन अकाल से घिरा रहता था। अजमेर-मेरवाड़ा जिले में एक भी नदी या नहर नहीं होने से यहाँ की खेती समय पर होने वाली वर्षा पर ही निर्भर थी। जब कभी वर्षा का अभाव होता, लोग सिंचाई के लिए कुँओं, जलाशयों आदि स्रोतों का उपयोग करते थे। कुँओं तालाबों एवं नाडियों के निर्माण द्वारा यदि कभी एक मौसम सूखा रहता तो कुछ उपज इन साधनों से संभव हो पाती थी। इस जिले में अकाल एवं सूखे का सामना करने के लिए इन साधन स्रोतों में वृद्धि की गई थी। इस तरह के निर्माण कार्यों से राज्य के राजस्व में भी वृद्धि हुई। इस तरह एकाध वर्ष वर्षा की कमी एवं सूखे के व्यापक प्रभाव को किसान आसानी से इन सिंचाई

स्रोतों की सहायता से झेलने में समर्थ हो गया था।[35]

एक साथ ही दो तीन वर्ष तक अकाल का लगातार प्रकोप न होने पर अकाल की इतनी भयावहता का यहाँ की जनता को कदापि अनुभव नहीं होता था। यद्यपि सरकार ऐसे समय राहत कार्य करती थी तथापि अकाल के दिनों में किसानों का अपने मवेशियों के साथ दूसरे स्थानों पर जाना बना रहता था। क्योंकि किसान सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्यों के प्रति कुछ ज्यादा आशावान नहीं होते थे।[36] ज्यादातर किसान सूखे एवं अकाल के दिनों में अपने मवेशियों को मालवा ले जाया करते थे।[37]

जहाँ तक सुख-सुविधाओं के उपयोग का प्रश्न है अजमेर-मेरवाड़ा की कृषक जनता यह लाभ केवल अच्छी फसल प्राप्त करने पर ही उठा सकती थी। राजपूताना में अफीम और तम्बाकू मौज शौक की वस्तुओं में सम्मिलित नहीं थी। ये जीवन की आवश्यकताएं बन गई थीं और लोग साधन उपलब्ध होने पर इनका खुलकर उपयोग किया करते थे। परन्तु अकाल के दिनों का प्रभाव इन पर भी पड़ता था। देहातों में इस व्यसन का बहुत अधिक प्रचलन नहीं था परन्तु शहरों एवं कस्बों में जहाँ मजदूरी आसानी से उपलब्ध हो जाती थी, वहाँ दूसरी ही स्थिति थी। एक किसान शराब तभी पीता था जब उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती या उसके खेत लहलहा उठते थे। कर्ज में दबे रहने के कारण किसान आभूषण पर भी खर्च नहीं कर पाते थे। इस तरह की संभावनाएं इसलिए भी पैदा नहीं हो सकती थीं क्योंकि गांव का महाजन बाज की तरह किसान-परिवार में समृद्धि के लक्षण नज़र आने की बाट में लगा रहता था जिससे कि वह दीवानी अदालत की सहायता से उस पर झपट्टा मार सकें।[38]

"वाल्टर कृत हितकारी सभा" के उद्घाटन के साथ ही राजपूताना के राजपूतों में विवाह एवं अन्य क्रियाकर्मों सम्बन्धी सामाजिक सुधार होने लगे थे। इन सुधारों की आवश्यकता एक लम्बे समय से अनुभव की जा रही थी। इन सुधार-आन्दोलनों का समाज में स्वागत हुआ था। शहर और गाँवों की सभी जातियों में इनका अनुकरण करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ और विवाह एवं अंतिम क्रियाकर्म और अवसरों पर होने वाले अंधाधुन्ध खर्च पर रोक के प्रयत्न प्रारम्भ हुए। सामान्य अशिक्षित जनता इन सुधारों के प्रति सहज ही आकृष्ट नहीं हुई होती यदि इस क्षेत्र में अकाल तथा कर्ज के भार से लोगों की आर्थिक स्थिति खराब नहीं होती। खराब आर्थिक स्थिति के कारण भी लोगों ने व्यर्थ के खर्चे से बचाने के लिए सामाजिक सुधार का सहारा लिया। जब अच्छी एवं भरपूर फसल होती थी तब किसान "मौसर" आदि के नाम पर जी खोल कर व्यय करने में पीछे नहीं रहता था।[39]

जिले में रेलों के आगमन से भी चीज़ों के भावों में स्थिरता आई थी और

रुई के व्यापार को प्रोत्साहन मिला था। इस जिले से रुई ही एकमात्र ऐसी व्यावसायिक फसल थी जो बाहर भेजी जाती थी परन्तु इसका किसानों पर विपरीत प्रभाव पड़ा क्योंकि रेलों का साधन होने से पहले वे स्थानीय उपज के अच्छे दाम उठाया करते थे।[४०]

कृषकों की ऋणग्रस्तता ने व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया था इस ऋणग्रस्तता की वृद्धि के कारण किसानों में व्याप्त गरीबी, अज्ञान, दूरदर्शिता का अभाव, विवाहों व क्रियाकर्म पर अपव्यय तथा ऋण चुकाने की असमर्थता इसके मुख्य कारण थे।[४१]

भारत में प्रचलित संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली, कस्बों एवं शहरों की अपेक्षा ग्रामों में अधिक गहरा प्रभाव जमाए हुए थी। इस प्रथा से लाभ और हानि दोनों ही थे। परन्तु इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि अगर सौभाग्य से किसान सूदखोर या महाजन के चंगुल से बच पाता तो अन्य व्यवसायी की अपेक्षा वह अधिक अर्जित करने की स्थिति में था। परन्तु एक बार वह अगर बनिएं की छोटी सी ऋणग्रस्तता में भी फँस जाता तो उसका पीढियों तक उसके चंगुल से निकलना संभव नहीं था। पितृऋण चुकाने की नैतिक परम्परा का पालन करने के कारण बहुधा सूदखोर अपनी बेईमानी से किसान का शोषण करता चला जाता था।[४२]

किसान हिसाब नहीं रखता था उसका सभी लेन देन गाँव के साहूकार के यहाँ था जहाँ उसकी अतिरिक्त फसल उसके भंडार में जमा हो जाती थी। महाजन की बही में किसान का अनाज कम मूल्य में जमा कर लिया जाता था और उसे कर्ज के रूप में धन बहुत ही ऊँची दरों पर दिया जाता था। यदि दुर्भाग्य से मौसम प्रतिकूल रहता, जो कि राजपूताना में सामान्य बात थी, तब किसान को आवश्यकता की वस्तुएं भी उसी के यहाँ से लानी पड़तीं और एक बार ऋण का खाता आरम्भ हो जाने के पश्चात् वह सदा के लिए साहूकार के हिसाब से बढ़ता ही जाता और उसका कभी अन्त नहीं हो पाता था।[४३]

अज्ञानवश किसान एवं अशिक्षित समाज तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी भी शर्त पर ऋण लेने को उद्यत रहता था व उसके भावी परिणामों की ओर कदाचित् ही उसका ध्यान जाता था। इस तरह उनका साहूकारों के चंगुल से छुटकारा पाना असंभव था।

सामाजिक प्रथाओं में विवाह, मृतक भोज तथा गंगोज प्रमुख रूप से प्रचलित थे। इनके साथ धार्मिक भावनाएं बंधन के रूप में जुड़ी हुई थीं। इनका पालन करना एक तरह से अनिवार्य एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न होता था। इनमें विशाल भोज होते थे जो कि साधारण व्यक्ति पर अत्यधिक आर्थिक भार लाद देते थे।

ऋण ली गई राशि पर व्याज की ऊँची दरें, गृहस्थी में नये सदस्यों की अभिवृद्धि, मौसम की अनुकूल-प्रतिकूल अस्थिरताएं, सभी मिलकर कर्जे में वृद्धि ही किया करतीं। लाटूश ने इन सभी तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् जो सारांश प्रस्तुत किया है उसे काफी हद तक निश्चित एवं सही भविष्यवाणी के रूप में लिया जा सकता है "अकाल का यह परिणाम सदा यह रहा है कि सम्पूर्ण जिला कर्ज के चंगुल में फँस जाता है और कदाचित् ही वह इससे मुक्ति पाने में सफल हो पाया हो। बकाया राजस्व चुकाने के लिए लिया गया कर्ज किसान के लिए बहुत घातक सिद्ध होता था क्योंकि उन्हें महाजन को बहुत सस्ते भाव पर अपना अनाज बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता था और आवश्यकता पड़ने पर यही अनाज उन्हें ऊँचे भावों पर खरीदना पड़ता था।"[४४]

भू-भाग भी सामान्यतः असुरक्षित था। अकेले अजमेर में रजिस्ट्रेशन के आंकड़ों से यह पता चलता है कि भूमि का बंधक या विक्रय दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। इस तरह भूस्वामित्व का हस्तांतरण अबाधगति और अनियंत्रित जारी रहने देने का फल यह हुआ कि मूल स्वामी के पास बहुत कम भू-संपत्ति शेष रह गई थी तथा सरकार द्वारा प्रदत्त तकावी ऋण की एवज में बड़े-बड़े खेत बंधक के रूप में रखे जाते थे।[४५]

सम्पूर्ण अजमेर जिले में व्यापारियों की अपेक्षा सूद पर रुपया देने का धंधा ज्यादा था। पैसे वालों में से अधिकांश ओसवाल या जैन समाज के लोग थे। ये लोग व्याज-बट्टे का धन्धा करते थे। गांवों में इनका समाज में प्रमुख स्थान था। वे किसानों को कपड़े एवं अन्य आवश्यक सामग्री भी उधार दिया करते थे।[४६]

जिले में रेलमार्ग खुल जाने से कपास ओटने की मशीनें लगने लगीं जिसकी वजह से यहाँ के रुई व्यापार को अच्छा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। ब्यावर, केकड़ी व नसीराबाद में जिनिंग फैक्टरियां स्थापित हुई थीं। जिले से रुई और अफीम का ही निर्यात व्यापार होता था, परन्तु ब्यावर, नसीराबाद आदि स्थानों में फैक्टरियां और अजमेर में रेल कार्यालयों व रेल्वे वर्कशॉप खुल जाने से शहर की व जिले की बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी बाहर से खाद्यान्न एवं अन्य सामग्री आयात होने लगी। अंग्रेजों के शासनकाल में, जिले के आयात और निर्यात व्यापार में अभिवृद्धि हुई थी। सभी उपभोक्ता सामग्री के भावों में वृद्धि हो गई थी और गेहूँ, चना, मक्का, बाजरा, दालें, मोठ, घी, जौ इत्यादि के दाम बढ़ते ही जाते थे।[४७]

गांव का मजदूर, यद्यपि सही माने में अपने खेतों को जोतकर फसल के स्वामित्व वाला किसान तो नहीं था, परन्तु उसके हित इस वर्ग के साथ इस तरह जुड़े हुए थे कि किसान की स्थिति में परिवर्तन के साथ-साथ उसकी स्थिति में भी

उत्थान-पतन होता रहता था। जिले में दैनिक मजदूरी पर खेत पर मजदूर रखने की प्रथा अधिक प्रचलित थी, जो कि "हाली" कहलाते थे। ये मजदूर खेत जोतने, निराई करने, रखवाली करने और फसल काटने के लिए नियुक्त किए जाते थे। इन लोगों को मजदूरी नगदी में अथवा अनाज के रूप में दी जाती थी। यदि नगद रूप में मजदूरी दी जाती तो पुरुष को चार रुपए, महिला को ३ रुपए और अल्पवयस्क को जो बारह साल से कम नहीं होता था २ रुपए प्रतिमाह दिया जाता था। यदि मजदूरी खाद्यान्न के रूप में दी जाती तो पुरुष को डेढ़ सेर, महिला को एक सेर और बच्चे को आधा सेर अनाज प्रतिदिन की दर से दिया जाता था। मौसम की अनुकूलता का भी इनके वेतन पर प्रभाव पड़ता था। मजदूर अधिकांशतः चमार, बलाई, डोम आदि जाति के होते थे। मजदूरी के अलावा वे अपने जातीय व्यवसाय भी करते थे। मजदूरी के अतिरिक्त इनमें कई लोग घास, जंगली लकड़ी (ईंधन) बेचने का काम भी करते थे। प्रत्येक जाति का अपना जातिगत व्यवसाय होता था जैसे चमार चमड़े का काम करता था, बलाई कपड़ा बुनता था और ये लोग अपनी जीविका के लिए पूर्णतया किसान पर ही निर्भर रहते थे। ग्राम में इन की अपनी ज़मीनें नहीं होने के कारण इनकी दशा इतनी दयनीय थी कि इन लोगों को ऋण भी उपलब्ध नहीं हो पाता था। यही एक प्रमुख कारण था कि दो फसलों के बीच के समय में इनकी गुजर बसर बड़ी ही कठिनाई से हो पाती थी। यद्यपि ये लोग अधिकांशतः ऋणग्रस्त नहीं थे क्योंकि बिना द्रव्याधार के इन्हें ऋण मिलता ही नहीं था परन्तु ग्राम के गरीब से गरीब किसान की अपेक्षा इनकी आर्थिक हालत अत्यन्त गिरी हुई थी।[४८]

इन मजदूरों की मुख्य खुराक मक्का और जौ थी जिसे ये लोग गाँव के समृद्ध किसानों के घर से छाछ माँग कर उसके साथ खाते थे। इन लोगों को मुश्किल से एक समय का भोजन ही मिल पाता था। दूध, घी, शाक भाजी इनके लिए त्योहारों की चीज़ थी। गाँव में बुने मोटे कपड़े के वस्त्र ही इनका पहनावा था। उनके पहनावें में धोती, बगलबन्दी, पछोड़ा और सर्दियों में एक रजाई होती थी। बहुत कम के पास यह सब होता था तथा अधिकांश की पोशाक खाली धोती ही होती थी।[४९]

कपास ओटने व गाँठें बनाने के कारखाने खुल जाने तथा रेल्वे वर्कशाप के अजमेर में स्थापित होने पर बहुत से श्रमिक अपने घरबार छोड़कर शहरों में काम करने चले आए थे। अजमेर रेल्वे वर्कशॉप के मजदूरों में उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के सभी भागों से और पंजाब के कुछ भागों के मजदूर नौकरी करने आए थे। अजमेर के श्रमिक जबतक कि अकाल की भयावहता से वे बाध्य नहीं हो जाएं, दूसरे स्थान पर काम करना पसंद नहीं करते थे।[५०]

शहर या कस्बे का मजदूर खेतिहर मजदूरों से कुछ बेहतर था। उसे अपना वेतन नकदी में मिला करता था। शहरों में एक सामान्य मजदूर का मासिक वेतन पांच या छः रुपए होता था। इसके अतिरिक्त उसकी पत्नी अनाज पीस कर, पानी भर कर या अन्य शारीरिक श्रम से कुछ न कुछ अतिरिक्त उपार्जन कर लेती थी। खेतिहर मजदूरों की अपेक्षा नौकरी पेशा मजदूरों को ऋण मिलने में भी आसानी रहती थी, परन्तु ऋण की दरें यहां भी बहुत थीं। अजमेर के सूदखोर उचित ब्याज दर और धन की सुरक्षा की अपेक्षा अधिक वसूल करने की नियत से अपनी रकम खतरे में डालने से भी नहीं हिचकिचाते थे। शहरी जीवन ने मजदूर के जीवन में मौज-शौक का वातावरण पैदा कर दिया था। वह अपने दायरे में सभी व्यसन का उपयोग करता था। एक तरह से उसने नई आर्थिक जिम्मेदारियां पैदा कर अपनी आर्थिक स्थिति और भी खराब करली थी। कुछ स्थानों पर कपास ओटने की फैक्टरियां और नए-नए कारखाने खुलने के कारण मजदूरों की आवश्यकता बढ़ गई थी अतएव मजदूरों को काम एवं अच्छा वेतन सुलभ हो गया था। परन्तु शहरी जीवन के दुर्व्यसनों ने उसे इस तरह घेर लिया था कि उसके वेतन का एक बड़ा भाग शराब पर खर्च होता था या शादी और मौसर इत्यादि में नष्ट हो जाता था। वह अंग्रेज़ी मिलों के बने धोती जोड़े, जाकेट या बण्डी पहनता था। उसके रहन-सहन का स्तर निस्संदेह खेतिहर मज़दूर की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा था। परन्तु अन्त दोनों का एक ही सा था। यदि एक तरफ खेतिहर मज़दूर को रोजगार के अभाव में दयनीय जीवन बसर करना पड़ता था तो दूसरी ओर शहरी मज़दूरों को अपनी फिज़ूलखर्ची के कारण कर्ज़दारों के कड़े तकाजों का सामना करना होता था। [५१]

औद्योगिक कामधंधों में अकाल के वर्षों के अतिरिक्त किसी तरह के ह्रास के संकेत नहीं मिलते थे। औद्योगिक व्यवसाय में प्रमुख धन्धे बुनाई, रंगाई, पीतल के बर्तनों का निर्माण तथा लुहारी, सुनारी, सुथारी व चमड़े के काम मुख्य थे। देशी कपड़े की बढ़ती हुई मांग ने बुनकरों को रोजगार के अच्छे अवसर प्रदान कर रखे थे, जबकि रंगसाजी स्थानीय कलात्मक रोजगार था। यद्यपि यूरोपीय रासायनिक रंगों का इस उद्योग पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा था परन्तु अजमेर में तबतक वे लोकप्रिय नहीं हुए थे। लुहार और सुनार की रोजी सामान्यतः अच्छी चल रही थी। गहनों का रिवाज़ बहुत था। [५२]

किसानों एवं गांव के मज़दूरों की समृद्धि का आधार अच्छी फसल पर निर्भर करता था। परन्तु समृद्धि का यह आधार अजमेर जिले के लिए स्वप्नमात्र था। अंग्रेज़ी शासनकाल के इतिहास में अच्छी फसल का कहीं भी लिखित उल्लेख नहीं मिलता है। इन दोनों ही वर्गों का हित समान ही सा था। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अकाल का एक वर्ष किसान और खेतिहर मजदूर पर

इतनी गहरी मार करता था कि उसकी पूर्ति एक अच्छी फसल नहीं कर पाती थी। एक अकाल की मार को पूरा करने में इन्हें दस वर्ष लगते थे और वह भी उस हालत में जबकि उन दस वर्षों में दूसरा अकाल न पड़े। [५३]

किसानों का ज्यादा समय सूखे एवं अकाल में ही गुजरता था। इन प्राकृतिक विपदाओं तथा अन्य कई कारणों से किसान वर्ग गहरे कर्जे में डूबा हुआ था, परन्तु अधिकांश खेतिहर मजदूर कर्जदारी से मुक्त थे। अजमेर सब-डिवीजन के पंजीयन आँकड़े इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि भारी ऋणग्रस्तता के फलस्वरूप किसान खेतों का विक्रय या बंधक अधिक करने लगे थे और यह प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता था। पहले यह भी संदेह किया जाने लगा था कि किसान पुरानी प्रथा के अनुसार कदाचित् खाद्यान्न की जमाबन्दी करने लगा हो, परन्तु इस दिशा में यदि निष्पक्ष जांच की जाती तो यह तथ्य छुपा नहीं रहता कि जमाबन्दी के नाम पर किसानों ने केवल पीड़ाएं तथा गरीबी बटोर रखी थी और समृद्धि एवं ऐश्वर्य का सपना उनके निकट नहीं फटक पाया था। वे वास्तव में अत्यंत ही अरक्षित जीवन-यापन कर रहे थे। अधिकांश किसानों की आय जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति तक में अपर्याप्त थी। कुछ किसान अच्छा खा पी लेते थे परन्तु ऐसे किसानों की संख्या गिनी चुनी थी। [५४]

जिले के दूसरे कृषकों की भाँति, उन दिनों मेरवाड़ा का किसान भी कठिनाई से दिन गुजार पाता था। वह अच्छी फसल के दिनों में अपनी अतिरिक्त आय खर्च कर डालता था और जब खराब दिनों के बादल मंडराते तो उसके लिए साहूकार से ऋण लेने के अलावा और कोई दूसरा चारा शेष नहीं रहता था, परन्तु यह ऋण की राशि और ब्याज की दरें कदाचित् ही उससे चुक पाती थीं। इस भूभाग की प्राकृतिक बनावट एवं इसकी भौगोलिक स्थिति ही ऐसी थी कि जिसमें उसकी हालत कभी अच्छी नहीं हो सकती थी। जिले में अच्छी फसल भूले भटके ही कभी-कभी होती थी अन्यथा यहाँ निरंतर सूखे एवं अकाल-वर्षों का तांता लगा रहता था और इस वर्ग की ऋणग्रस्तता का यह सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कारण था। यद्यपि वे हाथ बुने रेजे के वस्त्रों से सज्जित अवश्य थे तथापि उनका यह पहनावा महाराष्ट्र या बरार के किसानों की तुलना में पोशाक नहीं कहा जा सकता था। उनकी आय मात्र गुजर बसर जितनी ही पर्याप्त थी, इससे सुख-सुविधा जुटा पाना संभव नहीं था। कर्नल हॉल और डिक्सन ने इन लोगों को लूटपाट के धन्धे से हटाकर खेती में जुटा दिया, यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं थी। [५५]

मेरवाड़ा के खेवतदारों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कृषक वर्ग अभीतक सभ्य समाज के अन्य कृषक वर्गों के स्तर तक उन्नति नहीं कर पाया था। एक सामान्य सार्वेक्षक को ये लोग असभ्य वनवासी से प्रतीत होते थे। गाँवों में स्कूल खोले गए थे व नई पीढ़ी लिखना-पढ़ना सीख रही थी।

जिले के अधिकांश पटवारी मेर और रावत थे और इस बात का भरसक प्रयत्न किया गया था कि गाँवों की स्कूलों से निकले छात्रों को ही विशेषकर मेरों और रावतों को पटवारी के पदों पर नियुक्त किया जाए। मेर युवक जो मेरवाड़ा बटालियन में सैनिक अनुशासन की शिक्षा ग्रहण कर चुके थे, अपने गाँवों को लौटने पर अपने साथ सभ्यता के अंकुर साथ ले गए थे जिसका इन गाँवों पर प्रभाव स्पष्ट दिखता था।[५६]

मेरवाड़ा के ग्रामवासियों के बारे में कर्नल डिक्सन ने यह अभिमत प्रकट किया है कि "मेर लोग विश्वासपात्र, दयालु और उदार चरित्र के होते हैं और अपनी जाति से अविच्छिन्न रूप से जुड़े रहते थे तथा एक दूसरे को परिवार का व्यक्ति मान कर चलते हैं।"[५७] सैनिक विद्रोह के समय वे अंग्रेज़ सरकार के प्रति वफादार बने रहे थे।[५८]

मेरवाड़ा में ब्यावर का एक ही बड़ा कस्बा था। इस नगर की समृद्धि एवं व्यवसायिक प्रतिष्ठानों की स्थापना से मेरवाड़ा के लोगों की समृद्धि में भी बहुत योगदान प्राप्त हुआ था। औद्योगिक विकास के साथ मजदूर की स्थिति में भी परिवर्तन आया था। उसके लिए रोजगार की सुविधाएं सुलभ हो गईं थीं। ब्यावर की समृद्धि का प्रभाव जिले के लोगों पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था।[५६]

एक औसत ग्रामीण मजदूर परिवार में चार सदस्य होते थे। एक मजदूर परिवार की औसत वार्षिक आय ७३ रुपए के लगभग हुआ करती थी अर्थात् मासिक औसत ६ रुपए प्रति परिवार का अनुमान लगाया जा सकता है। मेरवाड़ा के खेतिहर मजदूरों और नया नगर के श्रमिकों के वेतन में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था। मेरवाड़ा के खेवतदार खाने-पीने की चीज़ों में इन मजदूरों की अपेक्षा अच्छी स्थिति में थे। यह कहा जा सकता है कि मेरवाड़ा के खेवतदारों को मजदूरों की अपेक्षा ज्यादा सुख सुविधाएं उपलब्ध थीं। इसका मूल कारण कदाचित् यह हो सकता है कि मजदूरों के पास अपने खेत नहीं थे जिन पर उन्हें आसानी से ऋण उपलब्ध हो सकता था। साधारण श्रमिक की पोशाक हाथ बुने मोटे कपड़े (रेजे) की होती थी।[६०]

अकाल अथवा सूखे की स्थिति पैदा होने पर ग्रामीण मजदूर को किसी तरह की राहत उपलब्ध नहीं हो पाती थी। उसे निश्चत रूप से अपने परिजनों एवं घर बार सहित अन्यत्र जाना पड़ता था। प्रव्रजन के लिए उसका लक्ष्यबिंदु मालवा अथवा वह जिला था जहाँ कोई सरकारी निर्माण का काम बड़े पैमाने पर चल रहा हो और उसे जहां आसानी से मजदूरी मिल सकती हो। उसके पास जमीन नहीं होने से ऋण प्राप्ति के साधन नगण्य से थे। इस दृष्टि से उसकी स्थिति मेरवाड़ा के खेवतदारों से अच्छी थी। बहुत कम श्रमिक कर्जदार पाए जाते थे। अपने भरण-पोषण एवं गुजारे लायक वेतन उसे मिल ही जाया करता था, परन्तु वह इतना कम होता था कि मजदूर के लिए इस अल्प वेतन में सुख सुविधाएं जुटा पाना

संभव नहीं था। खाद्यान्नों के भावों के घटने बढ़ने के अनुसार ही उसकी स्थिति बदलती रहती थी। यदि खाद्यान्न सस्ता होता तो उसका गुजारा आसानी से हो जाता था अन्यथा उसे भी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। खेवतदारों व मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष फर्क नहीं था।[६१]

अंग्रेजों ने जानबूझकर भारतीय जनता की भावनाओं को ठेस पहुँचाने का कभी प्रयास नहीं किया। यद्यपि उनकी स्वयं के बारे में यह मान्यता थी के वे एक श्रेष्ठ जाति के हैं, उनकी अपनी सभ्यता भी श्रेष्ठ है और वे ईमानदारी के साथ पश्चिमी सभ्यता के वरदानों का वितरण पिछड़े हुए पूर्व के लोगों को प्रदान करना चाहते थे। परन्तु वे यह बात भूल गए थे कि विदेशी शासकों के अच्छे कदम भी स्थानीय जनता के मन में सन्देह उत्पन्न कर सकते हैं और उनका गलत अर्थ लगाया जा सकता है। अपनी इन परिस्थितिगत बाधाओं के होते हुए भी उन्होंने कई ऐसे सुधार, जिन्हें वे बहुत ही आवश्यक समझते थे, लागू करने का प्रयास किया। इस दिशा में अपने उत्साह के कारण उन्होंने यह जानने की कोशिश भी नहीं की कि कौन से सुधार अविलम्ब आवश्यक हैं और कौन से सुधार बाद में भी हो सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप कई प्रश्नों पर जनता की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचना स्वाभाविक था।

हिन्दू समाज के कट्टरपंथी तत्वों को अंग्रेजों द्वारा सती प्रथा की समाप्ति के प्रयास को अंग्रेजों के प्रति द्वेष एवं विरोध का आधार बनाने में हिचकिचाहट नहीं हुई। आज कोई भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि यह सामाजिक सुधार बहुत पहले ही लागू हो जाना चाहिए था और यह प्रथा सभ्य समाज के लिए एक अभिशाप थी। धार्मिक मामलों में पूर्ण निष्पक्षता बरतने के उद्देश्य से अंग्रेज सरकार उन सभी प्रयासों से दूर रही जिन से हिन्दू एवं मुसलमानों के मन में उनके प्रति किसी तरह का द्वेष उत्पन्न हो सकता था। परन्तु कोई भी सभ्य प्रशासन मनुष्य को जीवित जलाने की प्रथा को कदापि सहन नहीं कर सकता है इसलिए ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशक इस अभिशाप को समाप्त करने के लिए उत्सुक थे। लार्ड विलियम बैंटिक ने इस प्रथा को बंद करने का प्रयास किया। उन्हें उदार एवं हिन्दू सुधारक राजा राममोहनराय और द्वारकानाथ टगोर आदि का समर्थन प्राप्त था। परन्तु दुर्भाग्य से तत्कालीन समाज में ऐसे लोग गिने-चुने ही थे और अधिकांश हिन्दू समाज की यह मान्यता थी कि उनके किसी मामले में हस्तक्षेप धर्म विरुद्ध हैं।[६२]

सन् १८३९ में, सरकार की धार्मिक नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। भारत में दीर्घकाल से यह परम्परा चली आ रही थी कि राज्य, चाहे उसकी किसी भी धर्म में मान्यता हो, वह सभी जातियों के तीर्थ स्थानों का परम्परागत संरक्षक माना जाता था और धार्मिक विवादों में शासक के विभिन्न धर्मावलंबी होने के बावजूद

भी उसको मध्यस्थता करनी पड़ती थी। इसी तरह औरंगजेब को हिन्दुओं के धार्मिक विवाद के मुद्दे, पेशवा को रोमन कैथोलिक पादरी के अधिकारों के बारे में निर्णय देना पड़ता था। इस परम्परागत प्रथा के अनुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों के कंधों पर यह भार आना स्वाभाविक ही था कि वे हिन्दुओं के देवालयों एवं मुसलमानों की सुप्रसिद्ध अजमेर की दरगाह के संरक्षक का कर्तव्य निभाएं। अजमेर की दरगाह की देखरेख भी अंग्रेज़ अधिकारियों ने इसी उद्देश्य से अपने हाथों में ली थी।[६३] इन पवित्र स्थानों से सरकार की आय में वृद्धि ही हुई थी क्योंकि इनकी देखरेख इत्यादि में यात्रियों से प्राप्त धन में से नाममात्र की राशि ही व्यय होती थी।[६४] परन्तु कम्पनी की सरकार को अपने ही देश में लोगों के तीव्र विरोध के दबाव के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक स्थल उन्हीं जातियों के संरक्षण में छोड़ देने पड़े।[६५]

यहाँ मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार से जनता में रोष की भावना उत्पन्न होने लगी थी। उनके धर्म-प्रचार के अधिकार को चुनौती देने का प्रश्न नहीं था परन्तु ये लोग ईसा का संदेश प्रसारित करने तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि ईसाई पादरी खुले आम हिन्दू मुसलमानों की धार्मिक परम्पराओं और उपासना पद्धति का मखौल उड़ाते थे। विक्षुब्ध जनता ने ईसाई मिशनरियों को अंग्रेज़ शासन का अंग माना क्योंकि बहुधा इन मिशनरियों के साथ पुलिस की व्यवस्था भी रहती थी।[६६]

यद्यपि मिशनरी बहुत ही कुशल अध्यापक होते थे, उनकी यह कुशल शिक्षण-पद्धति पुराणपंथी हिन्दुओं के लिए चिंता का विषय बन गई थी। ईसाई मिशन के अध्यापक बालकों के मानसिक विकास तक ही सीमित नहीं रहते थे अपितु उनका सर्वोपरि उद्देश्य उन पर ईसाई धर्म का प्रभाव डालना होता था। उनके मतानुसार ईसाई धर्म ही मुक्ति का केवलमात्र मार्ग था। उनका यह दावा था कि सम्पूर्ण सत्य का एकाधिकार इस धर्म के पास है और उनके इस अभिमत का एक ही अभिप्राय जो लोगों के समक्ष व्यावहारिक रूप से प्रकट होता था वह यह था कि पश्चिमी शिक्षा का उद्देश्य ही धर्म-परिवर्तन है। उदार हिन्दू यह मानकर संतोष कर लेते थे कि सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है, परमात्मा की प्राप्ति, परन्तु मुसलमान, जिनका दृढ़ विश्वास था कि अकेला उनका ही मजहब सच्चा मजहब है, यह रियायत देने को तैयार नहीं थे। अधिकांश हिन्दू समाज प्राचीन दर्शन से पूर्ण अनभिज्ञ था। उनका यह विश्वास था कि धार्मिक परम्पराओं का पालन और शास्त्रानुसार कर्मकाण्ड के आचरण से ही मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। अधिकांश हिन्दुओं की यह मान्यता थी कि यदि उसके पुत्रों ने उसकी मृत्यु के पश्चात् क्रियाकर्म नहीं किए तो उसकी कभी मोक्ष नहीं होगी और आत्मा भटकती रहेगी। मुसलमानों में ऐसी कोई भावना

नहीं थी। अतएव ईसाईमत-प्रचारकों और गैर ईसाई मतावलंबियों के बीच विवाद का न कोई हल और न कोई मध्यम मार्ग ही था। भारतीयों के मस्तिष्क में यह बात भी घर किए हुए थी कि उसके धार्मिक प्रतिद्वन्दी को सरकार का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त है। मिशनरियों की कार्यवाहियां केवल शिक्षण संस्थाओं तक ही सीमित नहीं थीं। ईसाई अध्यापक प्रतिदिन जेल में वंदियों को सामान्य ज्ञान एवं ईसाई मत की शिक्षा देने के लिए जाते थे और प्रति रविवार को वाईवल का उपदेश उन्हें सुनाया जाता था।[६७]

लोगों के इस संदेह को नए कानून (सन् १८४८) से भी वल मिला जिसके अनुसार सभी कैदियों का भोजन एक स्थान पर वनने लगा और उन्हें एक साथ भोजन करने को वाध्य होना पड़ा। यद्यपि आज सामान्य रूप से जेलों में सभी वंदियों का भोजन कुछ कैदियों द्वारा एक जगह वनाया जाता है, परन्तु उन दिनों जातिगत कट्टरता अधिक थी। जेलों में जाति वंधनों का कैदियों द्वारा कड़ाई से पालन किया जाता था और प्रत्येक को अपना खाना वनाने की छूट दी हुई थी। इस नए नियम के अन्तर्गत एक जेल में सभी कैदियों के लिए ब्राह्मण रसोईया नियुक्त किया गया था। यह उच्चवर्ण के हिन्दुओं को अच्छा नहीं लगा क्योंकि ब्राह्मणों में भी कई उपजातियां थीं और दूसरों के हाथों का छुआ नहीं खाते थे।[६८] इस नए नियम का यह गलत अर्थ लगाया गया कि इसका उद्देश्य परोक्ष रूप से हिन्दुओं की जात-पाँत नष्ट कर उन्हें ईसाई धर्म में परिवर्तित करना है। पटवारियों या गाँवों में सरकारी हिसाब तैयार करने वाले कारकूनों को हिन्दी या नागरी लिपि सीखने के लिए मिशनरी स्कूल में भेजा था। उनकी शिक्षा वहाँ हिसाव किताव या नागरी लिपि तक ही सीमित नहीं रहती थी। मिशनरी ईसाई मत का प्रचार करने को नियुक्त किए जाते थे। न्यायाधीश देशी पादरी को (जिसे हिन्दू धर्मपरिवर्तन के कारण हीन दृष्टि से देखते थे) जेलों में वंदियों के वीच प्रतिदिन ईसा का उपदेश सुनाने भेजा करते थे। नवयुवक पटवारी अपने विभागीय प्रशिक्षण के वाद गाँवों में वाईबिल की प्रतियों के साथ लौटा करते थे। इन सव कारणों की वजह से सामान्य जनता का यह दोषारोपण करना कि सरकार के इरादे नेक नहीं हैं स्वाभाविक था।[६९]

जनता ने सन् १८५० के एक्ट २१ को उपर्युक्त पृष्ठभूमि में ही लिया। इस कानून के अनुसार एक धर्मपरिवर्तित नव ईसाई को अपनी पैतृक संपत्ति में हिस्सा पाने का अधिकार प्रदान किया गया था। सिद्धांततः इस कानून के प्रति कोई मत-भेद नहीं हो सकता कि किसी भी व्यक्ति द्वारा अपनी उपासना-विधि में या धार्मिक विचारों में परिवर्तन मात्र से ही उसे पैतृक संपत्ति से वंचित रखा जाए जबतक कि वह देश के प्रचलित नियमों के विरुद्ध आचरण करे। परन्तु हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ने ही इसे नव-ईसाईयों के लिए रियायत के रूप में लिया। हिन्दू धर्म में धर्मत्याग का

कोई स्थान नहीं है। इसलिए उसे इस नए कानून से कोई लाभ नहीं मिला और न मुसलमानों को इस कानून से किसी तरह का लाभ मिला क्योंकि उनकी शरीयत में भी मजहब छोड़ने वाले की सम्पत्ति ग्रहण करने का खुला निषेध है। अतएव इस कानून को दोनों ही मतावलंबियों ने अपने पर प्रहार के रूप में लिया। हिन्दुओं के लिए यह कानून इसलिए भी घातक माना गया क्योंकि इसके अनुसार नव-ईसाई पैतृक संपत्ति विना किसी उत्तरदायित्व के ग्रहण कर सकता था। वह अपने पिता की सम्पत्ति का स्वामी विना किसी तरह उसकी अंतिम क्रिया कर्म किए ही वन सकता था।[७०] हिन्दू के मन में यह भावना जम जाना स्वाभाविक ही था कि इस कानून ने उस पर दुहरीचोट की है। एक तो उसका कमाऊ वेटा छिन जाता है, दूसरा वह उसको पिंडदान व अन्तिम क्रिया कर्म सम्पन्न कराए विना ही उसकी सम्पत्ति का स्वामी वन सकता है। मुसलमानों के लिए यह कानून एक तरह से धर्मत्याग को प्रोत्साहित करने वाला कदम था क्योंकि मुसलमान लोग भी मिशनरी संकट से अछूत नहीं वचे थे।[७१]

इस वातावरण के कारण पुण्यार्थ एवं संस्थानों की गतिविधियों तथा जन-पयोगी कार्यो के वारे में भी लोगों के मन में संदेह एवं शंका उत्पन्न होने लगी थी। किसी भी भवन या सड़कों के निर्माण-कार्य के दौरान यदि एकाध देवालय वीच में पड़ जाता तो उन्हें हटा देना पड़ता था। परन्तु लोगों ने आवागमन की इस सुविधा को नजरों से ओझल करके इन्हें भी विद्वेष का कारण ठहराया, मानों ये भवन और मार्ग, देवालयों को गिराने के निमित वनवाए जा रहे थे। सरकारी अस्पतालों के वारे में भी लोगों की ऐसी ही अप्रिय भावना वन गई थी।[७२]

सामान्य जन-साधारण की अंग्रेज़ी प्रशासन के प्रति अनुकूल भावनाएं नहीं थीं। अजमेर शहर के नगण्य शिक्षित समुदाय ने अंग्रेज़ों के सामाजिक सुधार कानूनों एवं पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली लागू करने की नीति का स्वागत किया था। इस वात में भी संदेह है कि वावू समुदाय में अंग्रेज़ी शासन के प्रति एक मत रहा हो। इन लोगों में भी वहुधा शासन की निरंकुशता एवं अनुदारता की कटु आलोचना घर किए हुए थी। एक शताब्दी से भी अधिक काल तक आपसी संसर्ग एवं सम्पर्क के वाद भी यह स्थिति थी कि हिन्दू और अंग्रेज़ों में आपसी व्यवहार स्थापित नहीं हुआ था।[७३] शासक वर्ग द्वारा अपने को सामाजिक रूप से शासितों से पृथक् रखने की नीति के कारण उनके मन में शासक वर्ग के प्रति घृणा की भावनाओं ने घर कर लिया था। अंग्रेज़ अधिकारियों के दंभ और अपने मातहत भारतीय कर्मचारियों के प्रति हिकारत भरे दृष्टिकोण ने दोनों के मध्य एक खाई पैदा कर दी थी। अंग्रेज़ों का भारतीयों को अपने से अलग करने में वहुत वड़ा हाथ रहा है।[७४] अजमेर-मेरवाड़ा में प्रशासनिक उच्च पदों से जिस व्यवस्थित ढंग से भारतीयों को अलग रखा गया था, उसके कारण भी असंतोष काफी वढ़ गया था।

अंग्रेजों ने सदा ही भारतीयों के प्रति—चाहे वह उच्चपदासीन अधिकारी हों अथवा मातहत निम्न स्तरीय कर्मचारी—व्यवहार में कोई अन्तर नहीं रखा। केवल इतना ही नहीं वल्कि छोटे कर्मचारियों की तुलना में ऊँचे पदासीन भारतीयों को उनके अनादर एवं लांछनों का अधिक प्रहार सहना पड़ता था। अंग्रेजों द्वारा प्रचलित कानून को कभी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए व्यवहार में नहीं लाया जाता था। गरीब किसानों में भी, जिनके हितों की रक्षा के लिए इन कानूनों को बनाया गया था, ये लोकप्रिय और हितकारी सिद्ध नहीं हुए थे। इसका कारण यह नहीं था कि कानून में कोई बुराई थी परन्तु इनकी अप्रियता का कारण यह भी था कि कानूनी अदालतें भ्रष्ट हो गई थीं।[७५] इसके अतिरिक्त अंग्रेजी कानून की प्रक्रिया इतनी जटिल एवं पेचीदा थी कि वह साधारण गरीब एवं अशिक्षित किसान के बस की नहीं थी। उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह वकील नियुक्त कर सके। पुलिस और निम्न अधिकारियों का भ्रष्ट व बदनाम होना भी इन अदालतों व कानून के लोकप्रिय नहीं होने का कारण है।[७६] कानूनी अदालतें पैसे वालों के हाथ का खिलौना व अन्यायपूर्ण शोषण का साधन बन गई थी। साक्षियों के बनावटी दस्तावेज व झूठे दावे उस प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्भव थे।[७७]

परन्तु सबसे अधिक बदनाम भूमि विक्रय सम्बन्धी कानून था। पुरानी प्रथा के अनुसार सभी व्यावहारिक रूप से भूमि अहस्तांतरित मानी गई थी। अंग्रेज् सरकार ने इसके स्थान पर यह कानून बनाया कि जो ऋण चुकाने में असमर्थ हो उसकी भूमि बेची जा सकती है। लगान पहले से ही इतना अधिक निर्धारित था कि जमींदार उसे चुकाने में असमर्थ थे। अनुकूल मौसम में उन्हें थोड़ा बहुत प्राप्त हो जाता था तो प्रतिकूल दिनों में उनकी बहुत ही दयनीय स्थिति हो जाती थी। इस कानून का किसान और तालूकदार दोनों पर ही गहरा प्रहार हुआ।[७८] यही गहरी जमी हुई घृणा और अविश्वास की भावना सन् १८५७ में सैनिक विद्रोह के रूप में फूट पड़ी थी और बाद में इसी के फलस्वरूप राजस्थान में राष्ट्रीय गतिविधियों ने प्रखर रूप धारण किया था।

अध्याय ९

१. सी० सी० वाट्सन—राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १ ए (१९०४) पृष्ठ १३।

२. जे० डी० लाटूश—बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८७४) पृ० २६।

३. एफ० विल्डर द्वारा मेजर जनरल डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, दिनांक २६ सितम्बर, १८१८।

४. एफ० विल्डर द्वारा मेजर जनरल डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र दिनांक २६ सितम्बर, १८१८। जे० डी० लाट्रुश—बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८७४) पृ० २०।

५. जे० डी० लाट्रुश—बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८७४) पृ० २०।

६. उपर्युक्त।

७. एडमॉन्सटन–सैटलमेन्ट रिपोर्ट दिनांक २६ मई, १८३६।

८. कर्नल डिक्सन द्वारा सचिव, उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र-संख्या २७४।१८५२।

९. सी० सी० वाट्सन राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १ ए (१९०४) पृ० २२।

१०. कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमिश्नर को पत्र, दिनांक २६ फरवरी, १८९१।

११. आर० केवेंडिश द्वारा रेजीडेन्ट राजपूताना व देहली को पत्र, दिनांक १० जुलाई, १८२८।

१२. एफ० विल्डर द्वारा मेजर जनरल डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र दि० २६ सितम्बर, १८१८।

सर एलफ्रेड लॉयल–भूमिका राजपूताना गजेटीयर्स १८७९।

१३. आर० केवेंडिश द्वारा रेजीडेन्ट राजपूताना व देहली को पत्र दिनांक ११ जुलाई, १८२९।

१४. जे० थामसन सचिव, उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार द्वारा सदरलैंड कमिश्नर अजमेर को पत्र, मई १८४१।

१५. सी० सी० वाट्सन राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खण्ड १ ए अजमेर-मेरवाड़ा (१९०४) पृ० ९०। लाट्रुश-गजेटीयर्स ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा (१८७५) पृ० ५०।

१६. आर० केवेंडिश द्वारा रेजीडेन्ट राजपूताना व मालवा को पत्र दिनांक १० जुलाई, १९२९।

१७. लाट्रुश–बन्दोवस्त रिपोर्ट (१८७४) अनुच्छेद १२९।

१८. इस्तमरारदारी एरिया इनक्वायरी कमेटी रिपोर्ट अध्याय ४, पृ० ११।

१६. उपर्युक्त—अध्याय ४ पृ० २०।

२०. उपर्युक्त—अध्याय ५ पृ० १६।

२१. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खंड १-८ (१६०४) पृ० १३।

२२. बुरेलपॉक—मेडीको टोपोग्राफिकल अकाउन्ट अजमेर-१६००-पृ० ८३१।

२३. फाइल क्रमांक ७३३ खंड २ (रा० रा० पु० मं०) सी० सी० वाट्सन राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खंड १, अजमेर-मेरवाड़ा पृ० १३ तथा ७० से ७७ (१६०४)।

२४. सी० सी० वाट्सन, राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर्स, खंड १ ए पृ० ३७। (१६०४) सन् १८६८–६६ के अकाल वर्ष में जिला छोड़कर जाने वालों की संख्या २३३४५ कही जाती है। अजमेर से १४१५२, तथा मेरवाड़ा से ६,६१३ व्यक्ति बाहर गए थे। अक्टूबर १८६८ से बाहर जाने का क्रम आरम्भ हुआ और मार्च १८६६ तक जारी रहा। बाहर जाने वाले व्यक्तियों में से १०६५० वापस लौट आए थे। निम्न तालिका में सन् १८६०-६२ के अकाल के समय बाहर जाने वाले व्यक्तियों, मृतकों अथवा पुनः न लौटने वालों के आँकड़े प्रस्तुत हैं—

जिला	निष्क्रमण	वापसी	मृतक अथवा बाहर रह गए।
अजमेर	३२२१६	२३७६३	८४५६
मेरवाड़ा	६२०६	४५५४	१६५३
	३८४२८	२८३१७	१०१११

सन् १८६८–७० के अकाल वर्षों में जिले में कई राहत कार्य खोले गए थे। सरकार ने राहत कार्यों पर ७५६,४०७ रुपया व्यय किया था। सार्वजनिक निर्माण-विभाग के अन्तर्गत इन राहत कार्यों पर औसतन ६७४२ व्यक्ति प्रतिदिन कार्य करते थे। सन् १८६०–६२ के अकाल वर्षों में राहत कार्यों पर कार्य करने वालों की संख्या प्रतिदिन ११६८२ थी तथा सरकार ने इस पर १२५६११६ रुपया खर्च किया था। बुरेल पॉक, मेडीको टोपोग्राफिकल अकाउंट, अजमेर-मेरवाड़ा १६०० पृ० ८३–८४।)।

२५. सन् १६१६ में आयोजित देहली अजमेर राजनीतिक कांफ्रेंस में अर्जुनलाल सेठी का भाषण। फाइल क्रमांक ८५–ए (रा० रा० पु० मं०)।

२६. खालसा-भूमि का लगान कदापि कम नहीं था। जनता अधिकांशतः कृषि पर निर्भर थी और वह बड़ी ही कठिनाई से गुजारा कर पाती थी। उनका फसलों के अलावा आजीविका का कोई और साधन नहीं था। प्रत्येक सूखे के साल का यह परिणाम होता था कि इससे जमा खोरों को अपने पुराने कर्ज की वसूली का अवसर प्रायः मिल जाया करता था। जे० डी० लाट्रश अजमेर-मेरवाड़ा का गजेटीयर्स १८७५-पृष्ठ ११३ एवं ११४।

२७. परराष्ट्र एवं गुप्त विचार-विमर्श दि० ३०-४-१८५८ क्रमांक १४ (रा० रा० पु० मं०) "कमिश्नर के अनुसार सम्पूर्ण खालसा क्षेत्र में लोगों के घरों की हालत नाजुक हो गई थी तथा तालुकादारियों के मुकाबले में यहाँ के किसानों की हालत बड़ी ही दयनीय थी।"
जे० डी० लाट्रश अजमेर-मेरवाड़े गजेटीयर्स १८७५-पृ० ६६।

२८. लाट्रश के अनुसार अकाल के वर्षों में जिले से लोगों के निष्क्रमण की गति दिनोंदिन बढ़ रही थी। लोगों की स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि भूख के कारण वे खेजड़े की छाल को पीस कर आटे में मिलाकर रोटियां बनाकर खाने को मजबूर हो गए थे।
लाट्रश अजमेर-मेरवाड़ा गजेटीयर्स (१८७५) पृ० ११०।)

२६. फाइल क्रमांक ७३३ (रा० रा० पु० मं०)।

३०. फाइल क्रमांक ५६६ पृ० १३ (रा० रा० पु० मं०) पृ० १३, अकाल-क्षेत्र के बीच अजमेर पृथक् पड़ जाता था, उसके पास खाद्यान्न वस्तुओं की पूर्ति का कोई साधन नहीं था, घास-चारा इतना महंगा हो गया था कि वह खाद्यान्न वस्तुओं से भी महंगे भाव पर उपलब्ध हो पाता था। इन दिनों में न तो बैलगाड़ियां ही चला करती थीं और न राजपूताना व मध्य भारत की तरह बंजारों के सामान लदे काफिले ही घूमते थे। लोगों की दशा दयनीय हो गई थी तथा साहूकारों ने उन्हें ऋण देने से भी हाथ खींच रखा था। कई स्थानों पर मवेशी बिल्कुल नहीं बचे थे। ऐसी स्थिति में पुरुषों को बैल की तरह जुतकर जमीन जोतने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

लाट्रश-अजमेर मेरवाड़ा गजेटीयर्स (१८७५) पृ० १०६,११०,१११।

३१. जी० एस० ट्रेवर चीफ कमिश्नर, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा सचिव, भारत को पत्र आबू दि० ७ नवम्बर, १८६२ पत्र संख्या ११७८-७३५।

३२. उपर्युक्त।

३३. सन् १८६८–७० के अकाल वर्ष में जिले में कतिपय राहत कार्य आरम्भ किए गए थे उन पर सरकार ने ७,५६,४०७ रुपए व्यय किए थे तथा राहत कार्यों में औसतन ६७४२ व्यक्तियों को सार्वजनिक निर्माण-विभाग के अन्तर्गत दैनिक मजदूरी मिलती थी। सन् १८६०–६१ के अकाल वर्ष में दैनिक मजदूरी करने वाले लोगों की संख्या ११,६८२ थी तथा राहत कार्यों पर १२,५४,११६ रुपए सरकार द्वारा व्यय किए गए थे। सन् १८६०–६२ के वर्षों में तीन निःशुल्क भोजनगृह भी खोले गए थे जिन पर सरकार ने ३३६४ रुपए ६ आने ३ पाई व्यय किया था। पर्दानशीन महिलाओं, विधवाओं एवं बच्चों को जो जाति अथवा वंश के कारण खुले में मजदूरी करने में असमर्थ थे, घरेलू काम भी दिए गए थे, क्योंकि इनके भरण-पोषण का कोई सहरा नहीं था। अक्टूबर, १८६१ में आरम्भ किए गए राहत कार्य में ४,७६,२७६ व्यक्ति कार्य करते थे जिनमें से ४,७६,२६७ अजमेर तथा १२ मेरवाड़ा से थे। इन पर ७,७५,६२ रुपए व्यय हुए थे। इनमें ७७,८८५ रुपए अजमेर तथा १०७ रुपए मेरवाड़े में खर्च किए गए थे। डुरेल पॉक, मेडीको—टोपोग्राफिकल अकांउट अजमेर-१६०० पृ० ८४ तथा ८५।

३४. वालमुकन्ददास एवं इमामुद्दीन संयुक्त रिपोर्ट दि० २०–१०–१८६२

३५. फाइल सं० ५६६ "१८६२–१६१२" (रा० रा० पु० मं०)।

३६. सन् १८६८–६६ में अजमेर-मेरवाड़े से बाहर जाने वाले व्यक्तियों की संख्या २३३४५ थी। इनमें से १०६५० व्यक्ति वापस लौटे थे। सन् १८६०–६६ में यहाँ से ३८४२८ व्यक्ति बाहर गए जिनमें से वापस लौटने वालों की संख्या २८३१७ थी। डुरेल पॉक, अजमेर-मेरवाड़ा का मेडीको-टोपोग्राफिकल अकांउट ११६०–पृ० ८३।)

३७. लाटूश का मत है कि सन् १८६६ में राजस्व वसूली की नई प्रक्रिया के कारण भी ऋणग्रस्तता ने नया स्वरूप ग्रहण कर लिया था। नई राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत सरकारी लगान के लिए केवल ग्राम-मुखिया को उत्तरदायी ठहराया गया था। इस कारण उसे अकाल के दिनों में खुद के नाम पर भारी रकमें कर्जे पर लेनी पड़ी थीं। यद्यपि इस राशि को बाद में जातियों के नाम चढ़ा दिया गया था परन्तु न्यायालयों ने इसे नियमानुसार नहीं स्वीकार किया तथा यह कर्ज की राशि ग्राम-मुखिया के मत्थे मंड दी गई थी और उसकी निजी संपत्ति से वसूली की डिगरियां जारी की जाने लगी थीं, जब कि यह राशि ग्राम के लिए कर्जा ली गई

थी। बन्दोबस्त के समय खालसा ग्रामों में बंधक ऋण राशि ११,५४३७ रुपए थी।

लाटूश अजमेर-मेरवाड़ा गजेटीयर्स (१८७५) पृ० ११४। फाइल सं० ५६८।

३८. फाइल संख्या ७३३ खंड २ (रा० रा० पु० मं०)।

३९. उपर्युक्त।

४०. बालमुकुंददास एवं इमामुद्दीन द्वारा संयुक्त रिपोर्ट दिनांक २०–१०–१८७२ (रा० रा० अभिलेखागार)।

४१. सन् १८८१ से १८८६ के वर्षों में जो समृद्धि के वर्ष कहलाते थे बंधक रखे गए खेतों का वार्षिक औसत क्षेत्रफल ६०० एकड़ भूमि था। सन् १८८७–८८ का वर्ष अकाल वर्ष था तथा उस वर्ष से बंधक ऋण में वृद्धि के आंकड़े निम्न थे—

१८८७–८८	=१२०० एकड़
१८८८–८९	=२००० एकड़
१८८९–९०	=३४०० एकड़
१८९०–९१	=३१०० एकड़

उपरोक्त आंकड़े खालसा एवं जागीर कृषि भूमि के हैं जो पंजीयन किए गए थे। इनके साथ कतिपय अपंजीयत बंधक भूमि भी अवश्य रही होगी। उनके आंकड़े उपलब्ध नहीं हो सके थे। कुल खालसा-भूमि जो बंधक थी, उसके आंकड़े निम्न हैं :—

वर्ष	क्षेत्रफल	बंधक ऋण	वार्षिक संख्या
सन् १८७३	१२६०० एकड़	रुपए ३४४०००	रुपए ६८०००
सन् १८८६	१५७०० एकड़	रुपए ७०००००	रुपए ९१०००
सन् १८९१	२०००० एकड़	रुपए ७०००००	रुपए १४०००

लगभग ७० प्रतिशत किसानों को कृषि योग्य भूमि सूखे एवं अकाल के दिनों में बंधक रख देनी पड़ी थी। मेरवाड़ा में ९० प्रतिशत से अधिक सिंचित भूमि रहन रखी गई थी।

असिस्टेन्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र, दिनांक २२ नवम्बर, १८९१ पत्र संख्या २१२९।

४२. लाटूश-अजमेर-मेरवाड़ा गजेटीयर्स (१८७५) पृ. ११४।

४३. लाटूश के अनुसार अजमेर में ब्रिट्रिश प्रशासन की नीति सदा ही धनाढ्य लोगों के पक्ष में रही थी। विल्डर ने अपने सेठों को अजमेर में बसने के लिए प्रोत्साहित किया था। यहाँ तक कि कर्नल डिक्सन भी इसी मत के थे कि जल की पूर्ति के पश्चात् क्षेत्र की समृद्धि के लिए महाजन वर्ग को अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र में बसाये जाने के लिए प्रशासन को प्रयत्न करना चाहिए। उनकी यह मान्यता थी कि महाजनों के हस्तक्षेप के बिना कृषि विकास संभव नहीं है।

४४. लाटूश-बंदोबस्त रिपोर्ट (१८७४) पृ. ८९, अनुच्छेद २०४।

४५. स्थानीय किसानों एवं बनियों के बीच तीव्र असंतोष की भावना घर किये हुए थी। इस असंतोष का प्रमुख कारण यह था कि भूमि तेजी से किसानों के हाथों से निकल कर बनियों के चुंगल में फँसती जा रही थी। किसानों की आय के सभी स्रोत ऋणग्रस्तता में लिप्त हो गए थे। प्रशासनिक सत्ता दिनोंदिन शिथिल होती जा रही थी और किसानों के कष्ट-निवारण में असमर्थ थी। दीवानी अदालतें वास्तविक रूप से बनियों के हितों की रक्षा करती थीं और किसानों की दृष्टि में वे शोषण के प्रमुख साधन बन गए थे। ग्रामीणों में यह भावना घर कर गई थी कि बनियें उनके साथ धोखा कर रहे थे और अदालतें भी उनके पक्ष में थीं। सरकारी संरक्षण से उसका विश्वास उठ गया था और वह पूर्णतया अपने ही साधन स्रोत पर निर्भर था। असिस्टेन्ट कमिश्नर के मतानुसार सितम्बर, १८९१ में लूट की दुर्घटनाओं का मूल कारण यही था। किसानों ने भारी संख्या में संगठित होकर बनियों की दुकानों को लूट लिया था। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य खाद्यान्न प्राप्त करना था और बनियों से प्रतिकार लेना था, अतएव उनके खाता वही और गोदाम नष्ट कर दिये गये थे।

लाटूश-बंदोबस्त रिपोर्ट (१८७४) पृ. ९९।

असिस्टेन्ट कमिश्नर द्वारा चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा को पत्र दिनांक २२ नवम्बर, १८९१ पत्र संख्या २१२९।

४६. फाइल संख्या ५६९ (रा. रा. पु. मं.)।

४७. फाइल संख्या १६५, क्रमांक २०, पृ. संख्या १० (रा. रा. पु. मं.)।

४८. जी. एच. ट्रेवर चीफ कमिश्नर द्वारा सचिव, भारत सरकार को पत्र दिनांक ७ नवम्बर, १८९२ पत्र संख्या ११७८।

४९. उपर्युक्त।

५०. फाइल संख्या १६५, क्रमांक संख्या २० (रा. रा. अभिलेखागार)।
५१. हरनामदास एवं इमामुद्दीन की संयुक्त रिपोर्ट दिनांक २०-१०-१९२९ (रा. रा. पु. मं.)।
५२. उपर्युक्त।
५३. लाटूश-अजमेर-मेरवाड़ा गजेटीयर्स (१८७५) पृ. ११३।
५४. संयुक्त रिपोर्ट हरनामदास एवं इमामुद्दीन दि० २०–१०–१९२९ (रा. रा. पु. मं.)।
५५. लेफ्टिनेंट प्रीचार्ड, असिस्टेन्ट कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा की रिपोर्ट, दि. २०–१०–१८९२, पृ. १४ (रा. रा. पु. मं.) लेखागार।
५६. फाइल नं. ५६६ (रा. रा. पु. मं.)।
५७. डिक्सन, स्केच ऑफ मेरवाड़ा (१८५०) पृ. ३३।
५८. फाइल संख्या ९ (३), १८२१ चीफ कमिश्नरी कार्यालय, अजमेर।
५९. फाइल क्रमांक ५६६, १८९२-१९१२ (रा. रा. पु. मं.)।
६०. लेफ्टिनेंट प्रीचार्ड, असिस्टेन्ट कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा की रिपोर्ट दिनांक २०-१०-१८९२ (रा. रा. पु. मं.)।
६१. उपर्युक्त।
६२. परराष्ट्र एवं गुप्त-विमर्श, संख्या २२-२३, ३० अप्रेल, १८५८ (रा. रा. पु. मं.)।
६३. अजमेर कमिश्नर कार्यालय, फाइल संख्या ४२ (रा. रा. पु. मं)।
६४. अजमेर कमिश्नर कार्यालय, फाइल संख्या ८५ (रा. रा. पु. मं.)।
६५. रिसालदार अब्दुलस्समद की घोषणा, रेजीडेंसी रिकॉर्ड फाइल संख्या ३ (८)-५३।
६६. अजमेर कमिश्नर कार्यालय फाइल संख्या (रा. रा. पु. मं.)।
६७. शेरिंग, दी इंडियन चर्च ड्यूरिंग दी ग्रेट रिबेलियन(१८५९)पृ.१८४-८५।
६८. अवीन्स एन एकाउन्ट ऑफ दी म्यूटिनीज इन अवध एण्ड ऑफ दी सीज ऑफ लखनऊ रेजीडेन्सी (१८५९) अनुसूची १२ पृ. ५५६।
६९. शेरिंग-दी इंडियन चर्च ड्यूरिंग दी ग्रेट रिबेलियन (१८५९) पृ. १८६।
७०. अजमेर कमिश्नर कार्यालय, फाइल संख्या १४ (रा. रा. पु. मं.)।
७१. सन् १९२१ में आर्य समाज और अजमेर के वार्षिक अधिवेशन के अवसर

पर प्रोफेसर घीसूलाल घनोपिया का भाषण आर्य प्रतिनिधि सभा की पत्रिका, खंड ११ पृ. ४८ । (१६३१)।

७२. चीफ कमिश्नर द्वारा गवर्नर जनरल को पत्र दि. ३० अप्रैल, १६०४ फाइल संख्या ८३ ।

७३. प्रोफेसर घीसूलाल का लेख "काजेज ऑफ दी इंडियन रिवोल्ट" राजपूताना हेराल्ड ।

७४. रसल "भाई डायरी इन इंडिया" (१८६०) खंड १ पृ. १४६ प्रीचार्ड "म्यूटिनीज इन राजपूताना" (१८६०) पृष्ठ २७७ ।

७५. प्रीचार्ड "फ्रोम सिपाई टू सूबेदार" पृ. ४१ ।

७६. उपर्युक्त पृ. १२७-१२८ ।

७७. रायक्स, उत्तर-पश्चिमी सूबा सम्बन्धी टिप्पणियां, पृ. ७ (१८५८) (रा. रा. पु. मं.) ।

७८. अजमेर कमिश्नर कार्यालय, फाइल संख्या ८५ ए. पृ. ८८-१०० (राज. रा. पु. मं.) ।

१०

१८५७ का विद्रोह और अजमेर

मई, सन् १८५७ में जब सैनिक विद्रोह आरम्भ हुआ तब कर्नल डिक्सन अजमेर-मेरवाड़ा के कमिश्नर थे। वे उत्तर-पश्चिमी सूबों के लेफ्टिनेंट गवर्नर के सीधे नियंत्रण में थे। नीमच यद्यपि मध्य प्रांत के ग्वालियर में था तथापि राजपूताना के अन्तर्गत रखा गया था। नीमच के कमिश्नर का कार्य मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट के अधीन था। वह नीमच छावनी में ही रहते थे।[1]

उन दिनों राजपूताना में कोई रेलमार्ग नहीं था। कलकत्ता-लाहौर रेलमार्ग कानपुर से आगे तक नहीं पहुँच पाया था और बम्बई-अजमेर के बीच जो वर्तमान रेलमार्ग दिखाई देता है, उसका उस समय निर्माण नहीं हुआ था।[2] अजमेर से १६ मील की दूरी पर नसीराबाद छावनी में दो रेजीमेंट बंगाल नेटिव इन्फेंट्री १५ एवं ३० तथा फर्स्ट बम्बई केवेलरी और पैदल तोपखाना बैटरी तैनात थी। नसीराबाद से केवल ६० मील दूर देवली छावनी में कोटा दस्ता तैनात था जिसमें इंडियन केवेलरी की एक रेजीमेन्ट और इन्फेन्ट्री थी। भारतीय सैनिकों, घुड़सवार और पैदल सैनिकों की एक रेजीमेन्ट नीमच में थी जो नसीराबाद से १२० मील दूर था। अजमेर से सौ मील दूर एरिनपुरा में जोधपुर रियासत के अनियमित सैनिकों की पूरी पलटन तैनात थी जिसकी व्यवस्था जोधपुर रियासत के हाथों में थी। मेवाड़ में उदयपुर से पचास मील दूर खैरवाड़ा में अंग्रेज़ अधिकारियों के नियंत्रण में भील पलटन थी।

मेरों की एक अन्य पलटन ब्यावर में भी तैनात थी।[3] इस तरह उन दिनों राजपूताना में पाँच हजार भारतीय सैनिक थे और एक भी गोरी पलटन नहीं थी। केवल स्थानीय पलटनों के अतिरिक्त सभी सैनिक विद्रोह के लिए उत्कंठित थे और बगावत की चिनगारी धधकने की बाट देख रहे थे। स्थिति इसलिए भी विकट थी क्योंकि इस क्षेत्र में स्थित दोनों सैनिक छावनियों में नियमित सैनिकों के रूप में केवल भारतीय सैनिक थे और उनको विद्रोह की लपटों से दूर रखना संभव नहीं था।[४]

राजपूताना में इन पाँच हजार सिपाहियों की उपस्थिति और उनके नियंत्रण के लिए एक भी गोरी टुकड़ी का न होना तत्कालीन ए० जी० जी० के लिए गंभीर चिंता का विषय बन गया था। १,२८,८५५ वर्ग मील भू-भाग में विस्तृत राजपूताना की रक्षा के लिए पाँच हजार सैनिक थे जोकि स्वयं विद्रोह के लिए उत्कंठित थे। इनको नियंत्रित करने के लिए मात्र बीस गोरे सारजेंट वहाँ थे। निकटतम अंग्रेजी सेना की छावनी बम्बई प्रेसीडेंसी में स्थित थी। ऐसी स्थिति में वास्तव में अंग्रेजों के लिए भावी संकट गंभीर चिंता का विषय बन गया था।[५] परन्तु लारेन्स ने इस विकट परिस्थिति में भी अपना धैर्य कायम रखा। इस परिस्थिति के मुकाबले के लिए लारेंस ने सभी रियासतों को अपने-अपने क्षेत्र में शांति बनाए रखने और अंग्रेज सरकार की सहायता के लिए सेनाओं को तैयार रखने की अपील की थी।[६]

राजपूताना के केन्द्र में स्थित होने के कारण, अजमेर का सामरिक दृष्टि से बहुत महत्व था। यदि विद्रोहियों का अजमेर पर अधिकार हो जाता तो राजपूताना में अंग्रेजों के हितों को निस्संदेह आघात लगता। अजमेर शहर में भारी मात्रा में गोला बारूद, सरकारी खज़ाना और सम्पत्ति थी। यदि ये सब विद्रोहियों के हाथ पड़ जाता तो उनकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो जाती। अजमेर में भारतीय सैनिकों की केवल दो कंपनियां ही तैनात थीं और उन्हें आसानी से विद्रोह के लिए राजी किया जा सकता था। ऐसी हालत में अजमेर की सुरक्षा के दृष्टिकोण से ब्यावर से दो मेर रेजीमेंट बुलाली गईं थीं ताकि स्थानीय सिपाहियों द्वारा बगावत की योजना बनाने से पूर्व ही स्थिति पर नियंत्रण किया जा सके।[७] एक मामूली पैदल सेना भी डीसा छावनी से अजमेर बुलाली गई थी।[८] कोटा पलटन को भी तत्काल अजमेर पहुँचने के आदेश भेज दिए गए थे,[९] परन्तु इन आदेशों के पहुँचने के पूर्व ही देवली स्थित पलटन ने आगरा के लिए कूच कर दिया था। कुछ दिनों से बाजारों और छावनियों में दिल्ली से संदेशवाहक फकीरों के वेश में पहुँच कर विद्रोह का संदेश प्रसारित कर रहे थे और सर्वत्र अफवाहों का बाजार गर्म था। अफसरों को यद्यपि यह विश्वास था कि उनके मातहत सिपाही दंगा नहीं करेंगे तथापि संपूर्ण राजपूताना में व्याप्त असंतोष को देखते हुए उन पर पूरा भरोसा संभव नहीं था। आशंका का एक और कारण यह भी था कि अजमेर में बंगाल नेटिव आर्मी की पन्द्रहवीं रेजीमेंट थोड़े समय पहले ही मेरठ से आई हुई थी, और इसमें पूरविया सिपाही भरे पड़े

थे।[10] इनको विद्रोह के लिए भड़काना बहुत आसान था। अतएव इनकी जगह मेरों को तैनात किया गया। पहाड़ी, अर्धसभ्य तथा नीची जाति के होने के कारण मेरों की विद्रोहियों के प्रति किसी तरह की सहानुभूति नहीं थी। मेरों के कारण ही अजमेर में विद्रोह न हो सका और सम्पूर्ण राजपूताना में विद्रोही शक्तियां सबल न हो सकीं।[11]

सौभाग्य से राजपूताना की सभी रियासतों ने पूर्णतः अंग्रेज़ मैत्री का परिचय देते हुए अंग्रेज़ों की खुलकर सहायता की। इसका कारण यह भी था कि अंग्रेज़ों के संरक्षण के कारण ही ये रियासतें मराठों और पिंडारियों के भयंकर आतंक और लूट से बच पाई थी।[12] सन् १८०३ से लेकर सन् १८१७ तक इन चौदह वर्षों में मराठों ने इन राजघरानों को जिस तरह लूटा और अपमानित किया था उसका सहज अनुमान संभव नहीं है। सन् १८५७ तक के गत चालीस वर्षों में मराठों की बर्बर प्रवृत्ति और उनके अत्याचार को लोग भूले नहीं थे।[13] इसके अतिरिक्त इन रियासतों में आपसी तनाव एवं कलह की स्थिति भी बनी हुई थी। कई राजघरानों के प्रति वहीं के ठाकुरों में असंतोष फैला हुआ था। इसलिए इन राजघरानों को अंग्रेज़ों के संरक्षण की आवश्यकता बनी हुई थी। इन राजघरानों की आपस में भी नहीं बनती थी। इनमें राजनीतिक दूरदर्शिता न होने से वे राजनीतिक घटनाचक्र को समझने में असमर्थ थे।[14] मराठा अत्याचारों के सौ वर्ष और तत्पश्चात् पिंडारियों की भारी लूट-खसोट ने राजपूताना के इन शासक राजघरानों को इतना पंगु बना दिया था कि वे बगावत की अपेक्षा अंग्रेज़-संरक्षण को ज्यादा अच्छा समझते थे। इन लोगों को यह भी भय था कि बगावत के फलस्वरूप अंग्रेज़ों की शक्ति क्षीण होने पर उनके अधीन असंतुष्ट ठाकुरों को सर उठाते देर नहीं लगेगी। अतएव विद्रोही सैनिकों को राजपूताने के किसी भी राजघराने से कोई सहयोग प्राप्त नहीं हुआ और न उन्हें इनकी सहानुभूति ही मिली। यही कारण था कि सन् १८५७ के विद्रोह के इतिहास में राजपूताने के किसी भी राजघराने द्वारा ब्रिटिश विरोधी भूमिका निभाए जाने का उल्लेख तक नहीं मिलता है।[15] उन सभी राजाओं को, जिन्होंने इस संकटकाल में मार्गदर्शन चाहा था—यही "नेक" सलाह दी गई थी कि वे दृढ़तापूर्वक अंग्रेज़ों का साथ वफादारी से निभाएं।[16]

उन दिनों नसीराबाद छावनी में देशी पलटन की १५वीं और ३०वीं इन्फेन्ट्री, भारतीय तोपखाना टुकड़ी और फर्स्ट बम्बई लांसर्स के सैनिक थे। १५वीं भारतीय इन्फेन्ट्री १ मई, १८५७ को ही मेरठ से आई थी। यद्यपि नसीराबाद छावनी के सैनिक बगावत के लिए अत्यधिक उत्सुक थे तथापि अंबाला से भारतीय इन्फेन्ट्री की जो टुकड़ी रायफल प्रशिक्षण प्राप्त कर गंभीरसिंह जमादार के नेतृत्व में नसीराबाद लौटी थी, उसने यहां के सैनिकों को विश्वास दिलाया कि एन्फील्ड रायफलों और कारतूसों में ऐसी कोई चीज़ नहीं थी जिससे धर्म या जाति को खतरा हो।

इस कारण वे कुछ समय तक हथियार उठाने में झिझकते रहे। परन्तु मेरठ में सैनिक विद्रोह के समाचार ने उनमें विद्रोह की भावना प्रज्ज्वलित कर रखी थी।[१७] प्रत्येक सैनिक टुकड़ी विद्रोह का साथ तो देना चाहती थी परन्तु पहल कदमी नहीं करना चाहती थी।[१८] अंग्रेज़ इन अफवाहों से बुरी तरह भयभीत थे। उन्होंने सैनिक केन्द्र की रक्षा के लिए छावनी में फर्स्ट लांसर्स के उन सैनिकों से, जो वफादार समझे जाते थे गश्त लगवाना आरंभ कर दिया था तथा गोले भर कर तोपें तैयार कर रखी थीं।[१६]

सरकार ने सिपाहियों के संदेह मिटाने के लिए जितने प्रयास किए उतनी ही आग और भड़की। सरकार द्वारा चिकने कारतूसों को हटा लेने के आदेश ने इनमें और संदेह उत्पन्न कर दिया था। एक ओर नई अफवाह उनमें फैल गई थी कि उनका धर्म नष्ट करने के लिए आटे में हड्डियों का चूरा मिलाया गया है। जब उनसे अजमेर के खज़ाने व शस्त्रागार का भार सौंप देने को कहा गया तो सिपाही भड़क उठे व २८ मई, १८५७ को दिन के तीन बजे खुले विद्रोह पर उतारू हो गए।[२०]

१५वीं नेटिव इन्फेन्ट्री के सिपाहियों ने तोपखाने के सिपाहियों को अपने साथ मिलाकर तोपों पर अधिकार कर लिया था। अफसरों ने अपने सैनिकों को समझाने का प्रयास किया परन्तु निष्फल रहे। यद्यपि १७वीं नेटिव इन्फेंट्री ३० मई, १८५७ तक हिचकिचाहट के कारण सक्रिय कार्यवाही से अलग रही परन्तु अंत में जब १५ वीं इन्फेन्ट्री के जवानों ने उन्हें भी ललकारा तो वह इनके साथ मिल गई। यहां तक कि लांसर्स (संगीनधारी सैनिक) जिनके बारे में मान्यता थी कि वे वफादार बने रहेंगे, अपने दो अफसरों और तोपखाने के साथ विद्रोहियों से मिल गए। जब उनको विद्रोहियों पर गोली चलाने का आदेश दिया गया तो उन्होंने हवा में गोली चलाकर आदेश का पालन किया। विद्रोही तोपों से पहला गोला दगते ही लांसर्स ने भी अपनी कतारें भंग कर दीं व इधर-उधर बिखर गए। उनके जो अफसर उन्हें समझाने के लिए आगे बढ़े वे मारे गए अथवा घायल हुए। इन अफसरों में से एक अफसर न्यूबरी के विद्रोहियों ने टुकड़े-टुकड़े कर दिए।[२१]

अधिक समय तक मुकाबला करना व्यर्थ समझ कर कर्नल पैन्नी ने लांसर्स को वापस बुला लिया और सभी अधिकारियों ने यहाँ से हट कर ब्यावर पहुँचने का फैसला किया। बागी सिपाहियों की तोपों से पहला गोला दगते ही अंग्रेज़ अधिकारियों ने छावनी से अपने बीबी-बच्चों को सुरक्षा के लिए ब्यावर रवाना कर दिया था। लांसर्स ने इनके प्राणों की रक्षा करने में अपनी स्वामीभक्ति का परिचय दिया और उनके भागने के मार्ग की विद्रोहियों से रक्षा करने में सहयोग दिया। यह टोली पूरी रात तक भटकती हुई दूसरे दिन ग्यारह बजे ब्यावर पहुँची। वहाँ कमिश्नर कर्नल डिक्सन ने अविवाहितों एवं सैनिक अफसरों के ठहरने की व्यवस्था अपने यहाँ

की तथा महिलाओं और बच्चों को डाक्टर स्मॉल और उनकी पत्नि ने अपने यहां ठहराया।[२२] इस टोली को रातभर परेशानी एवं मार्ग की भारी असुविधाओं का सामना करना पड़ा। ये लोग वहां जबतक कि विद्रोही सैनिकों ने दिल्ली की ओर कूच नहीं कर दिया तबतक मेरवाड़ा बटेलियन की सुरक्षा में रहे। उसके बाद सैनिक अधिकारी अजमेर लौट गए जहां उन्हें बैरक खंडहरों के रूप में मिलीं। महिलाएं और बच्चे जोधपुर महाराजा के निमंत्रण पर वहां चले गए। महाराजा ने इन्हें लाने के लिए वाहन एवं सुरक्षा के लिए अपने सैनिक भेज दिए थे। नसीराबाद से ब्यावर भागते समय मार्ग में लांसर्स के कर्नल पेनी को रास्ते में दिल का दौरा पड़ा जिस कारण घोड़े से सड़क पर गिरकर उसका देहान्त हो गया।[२३]

अंग्रेजों के छावनी से भागते ही वहां अराजकता फैल गई थी। घरों को आग लगा दी गई, तिजोरियां तोड़ दी गईं और प्राप्त धन विद्रोही सैनिकों ने वेतन के तौर पर आपस में बांट लिया था। लूट के सामान का लाइन्स में ढेर लगा दिया गया था। इन विद्रोही सैनिकों ने व्यर्थ में रक्तपात नहीं किया। बगावत के समय जो चार अफसर घायल या मृत हुए, उन्हें छोड़कर एक बूंद खून नहीं गिरा और न कत्लेआम ही हुआ। ३०वीं नेटिव इन्फेंट्री ने अपने अफसरों के हाथ तक नहीं लगाया। इन अफसरों में से एक अफसर कैप्टिन पैनविक सायंकाल आठ बजे तक इन लोगों के साथ रहे परन्तु जब १५वीं इन्फेन्ट्री ने उन्हें स्पष्ट हिदायतें दीं तो मजबूरन इन्हें भी अन्यत्र जाना पड़ा। मार्ग में इनकी सुरक्षा के लिए पांच सैनिक तैनात कर दिए गए थे। ३०वीं पलटन के अन्य अधिकारी पूरी रात और दूसरे दिन भी अपने सैनिकों के बीच ठहरे रहे। एक सौ बीस सैनिकों की एक टुकड़ी अपने भारतीय अफसर के साथ पूरी वफादार रही तथा उसने इन भगोड़े अधिकारियों को ब्यावर तक सुरक्षित पहुंचाने तक में सहायता दी।[२४]

छावनी को तहस-नहस करने के बाद, विद्रोही सैनिकों ने अविलंब दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया। लेफ्टिनेन्ट वॉल्टर तथा हीथकोट डिप्टी क्वार्टर मास्टर ने जोधपुर और जयपुर की सेनाओं की मदद से इन्हें घेर कर खदेड़ने का प्रयत्न भी किया परन्तु असफल रहे। इन्होंने १८ जून को दिल्ली पहुंचकर अंग्रेज़ पलटन पर, जो कि दिल्ली का घेरा डाले हुई थी पीछे से आक्रमण किया। दूसरे दिन दोनों के बीच कड़ा संघर्ष हुआ जिसमें अंग्रेज़ सेना पराजित हुई।[२५]

विद्रोही सैनिकों ने अजमेर पर आक्रमण करने के बजाय सीधे दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। इसका एक कारण यह भी था कि उनके पास पहले ही लूट का माल था और वे अब अधिक समय खराब करने की स्थिति में नहीं थे। अजमेर-शस्त्रागार पर अधिकार करना कठिन कार्य था। उस समय यह अफवाह जोरों पर थी कि दीसा से अंग्रेज़ पलटन अजमेर पहुंचने वाली है। एक महत्वपूर्ण कारण यह

भी था कि इन सिपाहियों में बहुतों के साथ उनके बीवी-बच्चे भी थे।[२६] उन दिनों विद्रोहियों का लक्ष्य दिल्ली था; इसलिए शायद उन्हें विद्रोह के बाद सीधा दिल्ली पहुँचने का निर्देश मिला होगा।

१५वीं नेटिव इन्फ्रेन्ट्री के एक अधिकारी ई. टी. प्रीचार्ड ने विद्रोहियों की दिल्ली कूच के बारे में बताया कि यद्यपि सड़कें खराब थीं और उनके साथ लूट का अत्यधिक सामान था तथापि वे तेजी के साथ दिल्ली की ओर बढ़ रहे थे। वे अपने लूट के माल की बिना परवाह किए तेजी से आगे बढ़ते गए। कई बागियों ने तो अपनी लूट का माल रास्ते के गाँवों में ही लोगों के पास छोड़ दिया। प्रीचार्ड ने एक महत्वपूर्ण तथ्य यह बतलाया कि "राजपूताना की रियासतों के सैनिक अपने साथ अंग्रेज़ अफसरों के होते हुए भी इन बागी सिपाहियों पर आक्रमण करने में हिचकिचाते ही नहीं थे बल्कि उनकी सहानुभूति भी इन विद्रोहियों के साथ थी क्योंकि उनका भी यह विश्वास था कि अंग्रेज़ों ने उनके धर्म में हस्तक्षेप किया है।"[२७]

यह वास्तव में आश्चर्यजनक बात है कि विद्रोही सैनिकों ने अजमेर की स्थिति का लाभ नहीं उठाया। अजमेर में प्रतिरक्षा कार्यवाहियों के लिए नियत अंग्रेज़ अधिकारियों का न केवल खाना-पीना और सोना हराम हो गया था बल्कि वे इतने हताश हो गए थे कि तनिक सा संदेह होने पर उक्त सैनिक को फांसी पर लटका दिया करते थे। जोधपुर के महाराजा ने एक बड़ी फौज अंग्रेज़ों की सहायतार्थ अजमेर भेजी थी, परन्तु इस फौज का व्यवहार बड़ा ही अपमानजनक था। इस-लिए इन पर पूर्व विश्वास नहीं होने के कारण इसे वापस भेज दिया गया था। नसीराबाद के विद्रोही सैनिकों ने अजमेर की इस कमजोर स्थिति से किसी तरह का लाभ नहीं उठाया। वे आश्चर्यजनक जल्दबाजी से दिल्ली की ओर कूच कर गए।[२८] यही आहूवा के विद्रोहियों ने भी किया जिसका नेतृत्व मारवाड़ के सात ठाकुर कर रहे थे। वे पहले दिल्ली पहुँच कर बहादुर शाह की सेवामें उपस्थित होना चाहते थे तथा उनके फरमान हांसिल करने के बाद अजमेर पर आक्रमण करना चाहते थे।[२९] केप्टिन शॉवर्स ने अंग्रेज़ों के हाथ लगा जो गुप्त पत्र-व्यवहार इस संबंध में ए. जी. जी. को प्रस्तुत किया उसके अनुसार दिल्ली के विद्रोही नेताओं ने आहूवा के विद्रोहियों को पहले दिल्ली पहुँचने का आदेश दिया था। यदि इस संदर्भ की सभी कड़ियों को जोड़ा जाए तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है कि विद्रोहियों ने दिल्ली की ओर पहले कूच इसलिए किया क्योंकि वहाँ उनकी उपस्थिति नितांत आवश्यक थी और वे वहाँ से मुग़ल सम्राट का फरमान प्राप्त कर अपनी गतिविधियों और कार्यवाहियों को संवैधानिक रूप देना चाहते थे। यह स्पष्ट करता है कि सर्वोच्च सत्ता से अधिकृत होने की भावना उनमें लूटपाट करने की अपेक्षा कहीं अधिक थी। दिल्ली में एक सर्वोच्च सत्ता की स्थापना हो गई थी जिसे प्रतीक मान-कर वे लाखों लोगों को अपने पक्ष में कर सकते थे।[३०] नसीराबाद के विद्रोही

सैनिक बड़ी ही आसानी से अजमेर पर अधिकार करने की स्थिति में थे। वे इसे लूटकर प्राप्त धन से अपनी स्थिति को और भी मजबूत बना सकते थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों की ही आँखें इस उथल-पुथल के दिनों में देहली और बहादुरशाह पर टिकी हुई थी।[31] नीमच-छावनी के विद्रोही सैनिकों ने दिल्ली और आगरा को कूच करते समय मार्ग में देवली की छावनी को आग लगा कर सम्पूर्ण गोला-बारूद अपने अधिकार में कर लिया था।[32]

इस उथल-पुथल के काल में ए. जी. जी. जनरल पेट्रिक लॉरेंस को विद्रोहियों पर आक्रमण की अपेक्षा अजमेर की रक्षा अधिक प्रिय थी। अजमेर में किसी भी तरह सैनिक गतिविधि का अर्थ उनके दृष्टिकोण में इस सम्पूर्ण प्रांत का अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़े होना था। वह ऐसा संकट मोल लेने को तैयार नहीं थे।[33]

अजमेर की स्थिति हरमेजेस्टीज इन्फेन्ट्री और १२वीं बम्बई इन्फेन्ट्री के वहीं पहुँचने पर सुदृढ़ हो गई थी। कर्नल लॉरेंस अजमेर-मेरवाड़ा के चीफ़ कमिश्नर के रूप में इन फौजों का भार स्वयं सम्हालने आबू से अजमेर आ गए थे। अजमेर के किले की मरम्मत करवाकर छः माह के लिए राशन फौज के लिए वहाँ इकट्ठा कर लिया गया था। लॉरेंस के दिमाग में अंग्रेजी नीति का मुख्य लक्ष्य यही था कि अजमेर तथा वहाँ के गोला बारूद और खज़ाने की सुरक्षा की जाए। उनके अपने शब्दों में "अजमेर के महत्व को भुलाया नहीं जा सकता था। राजपूताना के लिए उसका महत्व उतना ही था, जितना उत्तरी भारत में दिल्ली का है और वहाँ पर विद्रोह होने का अर्थ असंतुष्ट तत्वों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो जाना है।" सन् १८५८ में भारत सरकार को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में ब्रिगेडियर जनरल लॉरेंस ने लेफ्टिनेन्ट कर्नल की सेवाओं की मुक्त कंठ से सराहना की, जिन्हें मेरों का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। उसके द्वारा की गई उचित व्यवस्था के कारण विद्रोही तत्व अजमेर जैसे बड़े और घनी आबादी वाले शहर में हाथ डालने से कतराते रहे।[34]

सन् १८५७ के उथल-पुथल भरी हलचल का अंत होने पर अंग्रेज़ प्रशासन ने इस बात में गर्व का अनुभव किया कि राजस्थान में उपद्रव केवल नियमित सैनिकों तक ही सीमित रहा और इसका राजघरानों और आम जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंग्रेज़ों ने इस पर भी संतोष प्रकट किया कि वे सभी लोग उनके साथ रहें, जिनके पास "धन-दौलत, संपत्ति और प्रतिष्ठा थी।"[35]

अध्याय १०

१. ट्रेवर—ए चेप्टर ऑफ दी इंडियन म्यूटिनी (१९०५) पृ० २, खड़गावत—

राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ (१९५७) पृ० १४–१५।
२. खड़गावत–वही पृ० २१।
३. ट्रेवर–ऐ चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१९०५) पृ० २।
४. हॉम्स–ए हिस्ट्री ऑफ दी म्यूटिनी (१८९८) पृ० १४८, ट्रेवर–ए चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१९९) पृ० ३।
५. ज्वालासहाय–लॉयल राजपूताना (१९०२) पृ १९०–२९५।
६. हॉम्स–ए हिस्ट्री ऑफ दी म्यूटिनी पृ० १४८, ट्रेवर-ए चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी पृ० ३ (१९०५)।
७. आई० आर० कॉल्विन द्वारा डिक्सन को पत्र जिसमें उन्हें अजमेर स्थित शस्त्रागार को मेरों की रखवाली में सौंप देने के बारे में राय माँगी गई थी; दिनांक १६ मई, १८५७। डिक्सन का कॉल्विन को पत्र दिनांक १९ मई, १८५७।
८. डिक्सन द्वारा लॉरेंस को पत्र, दिनांक २५–५–१८५७।
९. डिक्सन द्वारा कोटा सैनिक टुकड़ी के कमान्डर कैप्टिन डेनियल को पत्र, ब्यावर दिनांक १८–५–१८५७।
१०. डिक्सन द्वारा कॉल्विन को पत्र दिनांक १९ मई, १८५७।
११. ट्रेवर–ए चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१९०५) पृ० ३ से ४।
१२. खड़गावत–राजस्थान रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ (१९५७) भूमिका पृ० ५।
१३. मुंशी ज्वालासहाय–लॉयल राजपूताना (१९०२)।
१४. खड़गावत–राजस्थान रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ (१९५७) पृ० ५ (भूमिका)।
१५. उपर्युक्त भूमिका पृ० ३, ४, ५।
१६. राजस्थान के नरेशों द्वारा प्रदान की गई सहायता के बारे में लॉरेन्स की रिपोर्ट हाउस ऑफ कॉमन्स पेपर सं० ७७ पृ० १३०, अनुच्छेद १२० से १३०। (१८६०)।
१७. पत्र सं० १०७-ए-७८४ दिनांक २७ जुलाई, १८५८ ए. जी. जी. द्वारा भारत सरकार को पत्र दि० २७ जुलाई, १८५८ संख्या १०७–ए–७८४।
१८. डिक्सन द्वारा लॉरेंस को पत्र, ब्यावर दिनांक २३–५–१८५७।
१९. मुंशी ज्वालासहाय–लॉयल राजपूताना, (१९०२) पृ० १९७–१९८।

२०. फाइल सं० १७६–१८५७, पत्र सं० १६३ ब्रिगेडियर जनरल पी० लॉरेंस द्वारा लेफ्टिनेंट गवर्नमेन्ट उत्तर-पश्चिमी सूबा सरकार को पत्र सं १६३, मुंशी ज्वालासहाय-लॉयल राजपूताना (१६०२) पृ० १६८–१६६ ।

२१. कर्नल पेन्नी द्वारा ब्रिगेडियर जनरल पी० लॉरेंस को पत्र दि० १ जून, १८५७, मुंशी ज्वालासहाय-लॉयल राजपूताना (१६०२) पृ० १६६, प्रीचार्ड, म्यूटिनीज इन राजपूताना (१८६०) पृ० ४६ ।

२२. राजपूताना फील्ड फोर्स कमांडर द्वारा ए. जी. जी. माउंट आबू को पत्र दि० २६ मई, १८५७ संख्या १०७-ए-७८६, ए. जी. जी. द्वारा भारत सरकार को पत्र दि० २४ जुलाई, १८५८ ।

२३. डिक्सन द्वारा लेफ्टि० गवर्नर उ० प्र० सूबा सरकार को पत्र दिनांक ८ जून, १८५७ हॉम्स-ए हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१८६८) पृ० १५१ ।

२४. ट्रेवर–ए चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१६०५) पृ० ५, हॉम्स-ए हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१८६८), पृ० १५१ । मुंशी ज्वाला-सहाय-लॉयल राजपूताना (१६०२) पृ० २००–२०१ ।

२५. उपर्युक्त ।

२६. इस आशय के तर्क ट्रेवर ने प्रस्तुत किए हैं, परन्तु वास्तविकता यह थी कि वे दिल्ली की ओर इसलिए शीघ्र रवाना हो गए क्योंकि संभावित खतरे को देखते हुए वहाँ उनकी उपस्थिति आवश्यक हो गई थी । खड़गावत-राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ । पृ० १८ ।

२७. आई० टी० प्रीचार्ड, जो प्रारम्भ में देशी पलटन में एक अफसर थे तथा वाद में दिल्ली गजट के संपादक के रूप में कार्य किया था, राजपूताने में विद्रोह की घटनाओं पर अपने लेख लिखे थे जिनका प्रकाशन सन् १८६० में हुआ था ।

२८. ट्रेवर–ए चेप्टर ऑफ दी इंडियन म्यूटिनी (१६०५) पृ० ६, प्रीचार्ड-म्यूटिनीज इन राजपूताना (१८६०)

२६. केप्टिन शॉवर का ए. जी. जी. राजपूताना को पत्र, दिनांक २५–३–१८५८ ।

३०. मौलाना आज़ाद-भूमिका, डा० सैन का १८५७ (१६५७) ।

३१. खड़गावत-राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ (१६५७) पृष्ठ २० ।

३२. वी० पी० लॉयल द्वारा कैप्टिन कार्टर को पत्र दिनांक ९ जून, बी० पी० लॉयल द्वारा कर्नल डुरांड को पत्र । (राज० रा० अभिलेखागार)।

३३. शॉवर्स :—ए मिसिंग चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१८८८) पृष्ठ ४६

ट्रेवर :—ऐ चेप्टर ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी (१९०५) पृ० ८।

खड़गावत :—राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ (१९५७) पृष्ठ २२-२३ ।

३४. ट्रेवर :—ए चेप्टर ऑफ दी इंडियन म्यूटिनी (१९०५) पृ० १४।

३५. खड़गावत :—राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ पृ० ८७-८९ ।

११

राष्ट्रीय एवं क्रान्तिकारी हलचल

अंग्रेज़ सरकार की हमेशा यह नीति रही थी कि रियासतों का प्रशासन अंग्रेज़ प्रशासन के मुकाबले खराब दिखता रहे ताकि देशी शासकों की तुलना में जनता अंग्रेज शासकों को अच्छा समझे। इस कारण अजमेर-मेरवाड़ा में राजनीतिक और सांस्कृतिक उन्नति राजपूताना की रियासतों से ज्यादा होना स्वाभाविक था। अजमेर के सम्पन्न लोगों में शिक्षा प्रसार के साथ-साथ शनैः शनैः शिक्षित समुदाय के बीच राजनीतिक चेतना जागृत होने लगी थी। यह राजनीतिक चेतना एक छोटे से समुदाय तक ही सीमित रही और कभी भी खुलकर विस्तृत जन चेतना का स्वरूप नहीं ले पाई। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में बंगाल की क्रांतिकारी हलचलों का प्रभाव अजमेर पर भी दिखाई देने लगा।

बंगाल के देशभक्त क्रांतिकारियों के साहित्य "वर्तमान रणनीति" और "मुक्ति कोन पंथ" से यहाँ के नौजवान अत्यंत प्रभावित हुए थे। "वंग–भंग" के बाद ही अजमेर में क्रांतिकारियों की गतिविधि आरम्भ हुई। क्रांतिकारी "स्वराज्य" प्राप्त करना चाहते थे। इनकी यह मान्यता थी कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिए डकैती और हत्याएं पाप नहीं हैं।[1] अंग्रेज़ सरकार के प्रति रोष एवं उसे उखाड़ फेंकने की भावना इनमें भी उतनी ही तीव्र थी जितनी कि बंगाल के आतंकवादियों में थी।[2] इन लोगों ने अजमेर में क्रांतिकारी विचारधारा के प्रसार-हेतु शिक्षण संस्थाओं का जाल सा बिछाकर उनके माध्यम से विदेशी शासन के प्रति असंतोष की भावना

जागृत करना प्रारम्भ किया। गैरीबाल्डी और मैजिनी उनके आदर्श थे और उनकी विचारधारा इन क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत थी।[३]

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में अजमेर-मेरवाड़ा में जो राजनीतिक चेतना बढ़ी उसके प्रेरणा स्रोत बंगाल और महाराष्ट्र के क्रांतिकारी थे। राजपूताना की सांस्कृतिक विरासत के प्रति अगाध श्रद्धा होने के कारण बंगाल के क्रांतिकारी इस प्रान्त के प्रति आकर्षित हुए थे। राजपूताना ने महाराणा प्रताप व दुर्गादास जैसे वीरों को जन्म दिया था जिनकी वीरता की कहानियां पूरे भारत में प्रचलित थीं। इन महापुरुषों की जीवनगाथा क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत थी। बंगाल में क्रांतिकारी षड़यंत्रों का सूत्रपात महाराणा प्रताप और राठोड़ वीर दुर्गादास के देशाभिमान एवं बलिदान की प्रेरणास्पद भावनाओं का प्रतिफल था।[४] उन्नीसवीं सदी के बंगला साहित्य को राजपूताना के शूरवीरों के शौर्यपूर्ण संघर्ष से प्रेरणा मिली थी। अतएव बंगाल के क्रांतिकारियों का राजपूताना के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक था। अरविंद घोष द्वारा कई बार राजपूताना का दौरा करने और यहाँ के लोगों में देश प्रेम जागृत करने के उनके प्रयासों की पृष्ठभूमि में यही भावना काम कर रही थी। राजस्थान में उस समय शस्त्र कानून लागू नहीं था। इसलिए देश भर के क्रांतिकारियों को यहाँ आसानी से सस्ते भावों में हथियार मिल जाते थे।[५] राजपूताना के जागीरदार जिन्हें अंग्रेज़ी शासन ने कुचल दिया था, उनके प्रति तीव्र असंतोष को मन ही मन सुलगाए बैठे थे। क्रांतिकारी इसका अपने हित में उपयोग करना चाहते थे।[६] झालावाड़ के महाराज राणा जालिमसिंह द्वितीय को गद्दी से उतार कर उन्हें अंग्रेज़ों द्वारा निष्कासित करने की घटना ने भी लोगों की क्रोधाग्नि भड़का दी थी।[७] मेवाड़ में अंग्रेज़ों की प्रशासनिक तानाशाही का विरोध हाउस ऑफ कॉमन्स तक में प्रतिध्वनित हुआ था और तत्कालीन अंग्रेज़ पोलिटिकल एजेन्ट के विरुद्ध वहाँ गम्भीर आरोप लगाए गए थे।[८]

इस तरह की घटनाओं से बंगाल के क्रांतिकारियों में यह धारणा बन चली थी कि राजपूताना की मरूभूमि में उन्हें अपने कार्य एवं गतिविधियों के प्रति व्यापक सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त हो सकेगी। राजपूताना के जागीरदारों के पास वे सभी साधन-स्रोत उपलब्ध थे, जिनकी सशस्त्र क्रांति में आवश्यकता पड़ती है। कर्नल टॉड द्वारा लिखित राजपूताना की शौर्य गाथाओं ने इस प्रान्त को भारत भर में वीर शिरोमणि के रूप में स्थापित कर दिया था। सुप्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार बंकिमचन्द चटर्जी और नाटककार डी० एल० राय को राजपूताना की यशगाथाओं से अपार प्रोत्साहन मिला था। अतएव क्रांतिकारियों द्वारा राजपूताना के प्रति इसी भावना के वश आकर्षित होना और अपनी विद्रोही गतिविधियों के लिए राजपूताना को उपयुक्त समझना स्वाभाविक था।[९]

राजपूताना की प्राकृतिक विशिष्टताएं, विस्तृत निर्जन, मरूभूमि, अरावली पर्वत की श्रेणियां, रेत के विशाल टीबे और अनुल्लंघनीय वन राजद्रोही के शरण देने और अंग्रेजों के चंगुल से बचने के लिए वरदान सिद्ध हो सकते थे। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द भी इस वीर भूमि की निधियों से परिचित से लगते थे। उन्होंने भी अपनी गतिविधियों के लिए प्रमुखतः शाहपुरा, जोधपुर और अजमेर को केन्द्र बनाया। इन सभी को यह आशा थी कि प्राचीन परम्पराओं को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से किए जाने वाले सभी सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों को राजपूताना के राजघराने और सामन्त वर्ग की सहानुभूति प्राप्त होगी। इसी आशा से सभी ने इस प्रान्त को अपनी गतिविधियों का केन्द्र चुना था।[10]

अजमेर में राजनीतिक चेतना को जन्म देने वालों में खरवा के राव गोपालसिंह, बारहठ केसरीसिंह, अर्जुनलाल सेठी और सेठ दामोदरलाल जी राठी प्रमुख थे। ये सभी लोग अजमेर के निकटवर्ती क्षेत्रों के निवासी थे। राव गोपालसिंह अजमेर में खरवा के इस्तमरारदार थे। बारहठ केसरीसिंह शाहपुरा के व सेठी अर्जुनलाल जयपुर के निवासी थे। वे सभी लोग जिन्होंने इनकी प्रत्यक्ष रूप से सहायता की थी उनका अजमेर से निकटतम सम्बन्ध था।[11] दामोदरदास जी राठी क्रांतिकारियों की अत्यधिक आर्थिक मदद करते थे। बाहर से आने वाले क्रांतिकारियों को आप अपने यहाँ छिपाकर रखते थे। अरविन्द बाबू व श्यामजीकृष्ण वर्मा भी आपके ही मेहमान रहते थे। उन्होंने स्वदेशी की भावना को वास्तविक रूप देने के लिए कपड़े का पहला कारखाना ब्यावर में खोला था।[12] क्रांतिकारी स्वामी कुमारानंद ने भी अपनी गतिविधियों के लिए अजमेर-मेरवाड़ा को केन्द्र बनाया था। राजस्थान के एक अन्य प्रमुख क्रांतिकारी जो बाद में विजयसिंह पथिक के नाम से प्रख्यात हुए, खरवा में बस गए थे और राव गोपालसिंह के यहाँ काम करते थे। इस तरह अजमेर अपने निकटवर्ती क्षेत्रों सहित राजनीतिक विचारधाराओं का केन्द्र बन चला था। श्री अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ, विजयसिंह पथिक एवं राव गोपालसिंह खरवा ने मिलकर "वीर भारत सभा" नामक गुप्त क्रांतिकारी संगठन कायम किया। इस संस्था का देश की दूसरी क्रांतिकारी संस्थाओं से सम्बन्ध था।[13]

अजमेर के क्रांतिकारियों ने राजस्थान के जागीरदारों में अंग्रेजों के प्रति व्याप्त असंतोष का लाभ उठाने का भरसक प्रयत्न किया। राजस्थान का सामन्ती वर्ग अंग्रेजों से असन्तुष्ट था, क्योंकि अंग्रेजों के हाथों उन्हें अपनी राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति खोनी पड़ी थी। अंग्रेजों द्वारा राजपूताना की रियासतों तथा अजमेर में प्रचलित किए गए नए नियमों से भी वे असंतुष्ट थे क्योंकि इनका उद्देश्य जागीरदारों को शक्तिहीन करना था। बंदोबस्त की कार्यवाहियाँ, सैनिक सेवा की एवज में नगद

राशि का भुगतान, सती-प्रथा पर रोक, जागीर एवं सैनिक दस्तों को भंग करने की नीति ने इन सामंती तत्वों को नाराज कर दिया था।[१४]

स्वामी दयानंद के व्यक्तित्व ने भी अजमेर के लोगों की भावनाओं को इस दिशा में सबसे अधिक प्रभावित किया था। स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायिओं ने अजमेर को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाकर यहाँ के लोगों में धार्मिक, राजनीतिक चेतना के प्रसार में बहुत योगदान दिया था। उन्होंने राजपूतों में वैदिक सभ्यता के पुनर्जागरण के लिए एक तीव्र उत्कंठा जागृत कर दी थी।[१५]

राव गोपालसिंह पर आर्य समाज का इतना गहरा रंग चढ़ा हुआ था कि राजनीतिक जीवन के कठोर अनुभवों एवं वैचारिक परिवर्तनों के बावजूद भी यह प्रभाव शिथिल नहीं हुआ था। उनके राजनीतिक जीवन से सन्यास के बाद भी एक लम्बे समय तक यह प्रभाव बना रहा।[१६]

यदि अजमेर अपने सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और राजनीतिक पुनर्जागरण के लिए किसी के प्रति ऋणी है तो उसमें सर्वोच्च स्थान स्वामी दयानन्द और उनके आर्य समाज आन्दोलन का है। यह स्वामी दयानन्द के अनुयायियों द्वारा स्थापित विभिन्न संस्थाओं के अथक प्रयत्नों का ही फल था कि उन्होंने देश को चोटी के सुधारक और सार्वजनिक कार्यकर्ता प्रदान किए। जिन्होंने अजमेर में सामाजिक-राजनीतिक चेतना उत्पन्न की। अजमेर के लगभग सभी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा आर्य समाज के स्कूलों में ही ग्रहण की थी।[१७]

अजमेर के प्रारम्भिक राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने अपना राजनीतिक जीवन सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में आरम्भ किया था। राव गोपालसिंह ने अपना राजनीतिक जीवन, अकाल पीड़ित किसानों को वित्तीय सहायता और निर्धन तथा राजपूत विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने से प्रारम्भ किया था।[१८] इनका कार्य-क्षेत्र छोटे जागीरदारों और भोमियों में था। हथियार इकट्ठे करना इनका मुख्य कार्य था। पथिक जी जोकि उस समय भूपसिंह के नाम से कार्य करते थे, राव साहब के निकट के सहयोगी थे।[१९] केसरीसिंह बारहठ ने राजपूत परिवारों एवं चारणों में सांस्कृतिक जागृति लाने का बीड़ा उठाया।[२०] अर्जुनलाल सेठी ने तो अपना सम्पूर्ण जीवन ही शिक्षा जगत् एवं जैन समाज की सेवामें समर्पित कर दिया था।[२१] इन तीनों ही क्रांतिकारियों में पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली के प्रति घोर अरुचि थी। ये राजस्थानी तरुणों का जीवन पूर्णतः भारतीय आशा-आकांक्षाओं के अनुकूल ढालना चाहते थे। उनकी आरम्भिक योजनाएं यद्यपि राजनीति से अछूती नहीं थीं, तथापि उनमें क्रांतिकारी उद्देश्यों की झलक नहीं मिलती है।

उन्होंने उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक के आरम्भ में एक साथ राजस्थान

के तीन विभिन्न स्थानों से अपना कार्य आरम्भ किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी गतिविधियों को व्यापक रूप देने के लिए कोई योजना तैयार नहीं की थी। इनकी गतिविधियां भी आपस में सम्बन्धित नहीं थीं। सेठी अर्जुनलाल जैनमत प्रवर्तक संस्थाएं चलाने के पक्ष में थे। केसरीसिंह का ध्यान अधिकतर राजपूत परिवारों और चारणों पर केन्द्रित था। राव गोपालसिंह केवल राजपूतों को ही आगे लाने के पक्ष में थे।[२२] उनका कार्य-क्षेत्र भी अत्यंत सीमित था। इन आरम्भिक कार्यवाहियों का उद्देश्य किसी भी तरह की अंग्रेज़ विरोधी गतिविधियां या हलचल पैदा करना नहीं था। बारहठ केसरीसिंह का घराना राजपूताना में प्रख्यात था तथा उन्हें भाषा और धार्मिक कथाओं का पंडित माना जाता था। अर्जुनलाल जी सेठी अपना बाह्यरूप पूर्णतया अहिंसक बनाए हुए थे।[२३] राव गोपालसिंह का राजपूताना के अंग्रेज़ समर्थक राजघरानों में भी सम्मान था। इन क्रान्तिकारियों की प्रारम्भिक गतिविधियां शैक्षणिक एवं सामाजिक महत्व की थी। इस क्षेत्र में भी ये लोग एक सी नीति अंगीकार करने में असफल रहे। अपने आरम्भिक दस वर्षीय राजनीतिक जीवन में ये लोग धैर्य पूर्वक मूक और गुप्त रूप से अपने ही केन्द्रों में काम करना अधिक पंसद करते थे और संयुक्त कार्यक्रम या एक संयुक्त नीति के गठन का प्रयत्न इन्होंने कभी नहीं किया।

ये क्रांतिकारी धीरे-धीरे बाहरी क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आए। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ब्यावर में राजपूताना कॉटन प्रेस और अजमेर में राजपूताना प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की थी। उनके प्रभाव से राजपूताना के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में देशभक्ति की गहरी भावना जागृत हुई। सेठ दामोदरदास राठी ने सन् १९०६ के आसपास योगीराज अरविंद और लोकमान्य तिलक को एक गुप्त बैठक में आमंत्रित किया था।[२४] इन बाहरी कार्यकर्ताओं को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने ही स्थानीय कार्यकर्ताओं की गतिविधियों को एक निश्चित स्वरूप एवं नीति प्रदान की। उनके राजनीतिक विचारों में भारत धर्म महामंडल के स्वामी ज्ञानानंद के प्रयासों से और भी अधिक दृढ़ता आई।[२५] राव गोपालसिंह उनके साथ कलकत्ता गए, जहां वे प्रसिद्ध देश भक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, वीरेन्द्र पाल, वीरेन्द्र घोष और देवेन्द्र के घनिष्ठ सम्पर्क में आए। इसी समय उन्होंने 'युगान्तर' 'वंदेमातरम्' और 'अमृत बाजार' पत्रिका के सम्पादकों से आपसी सम्पर्क स्थापित किया।[२६]

कलकत्ता से लौटने के बाद राव गोपालसिंह ने अपनी राजनीतिक गतिविधियां तेजी से प्रारम्भ करदी थीं। अर्जुनलाल सेठी अंग्रेज़ शासित भारत के नेताओं के सम्पर्क में आए और उन्होंने बंगाल के स्वदेशी आंदोलन में भी भाग लिया तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में भी वे सम्मिलित हुए थे।[२७]

सन् १९०७ का वर्ष इन कार्यकताओं की सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियां

एवं अंग्रेज़ विरोधी हलचलों के मध्य विभाजन रेखा सिद्ध हुआ। सन् १९०७ के बाद ही केसरीसिंह जी द्वारा स्थापित चारण राजपूत बोर्डिंग हाउस ने राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना आरम्भ किया और भूमिगत "वीर भारत सभा" की स्थापना की गई।[२८] सन् १९०७ में ही अर्जुनलाल सेठी द्वारा संचालित वर्धमान विद्यालय ने कार्य आरम्भ किया। इसी समय राव गोपालसिंह ने अंग्रेज़ी विरोधी गतिविधियाँ प्रारम्भ की थीं।[२९] इस तरह सन् १९०७ का पूर्ववर्ती काल वास्तविक कार्य की अपेक्षा उमंगों एवं कल्पनाओं का काल कहा जा सकता है। इसमें बंगाल के स्वदेशी आन्दोलनकारियों और बाहरी नेताओं से सम्पर्क स्थापित हुआ, जिन्होंने यहाँ के कार्यकर्ताओं की अस्पष्ट एवं अनिश्चित विचारों एवं गतिविधियों को मार्गदर्शन देकर स्पष्टता प्रदान की। सन् १९०७ से ही अजमेर-मेरवाड़ा ने क्रांतिकारी चरण में प्रवेश किया। इसे एक ओर योगीराज अरविन्द और लोकमान्य तिलक से प्रोत्साहन मिला व दूसरी ओर बंगाल के उच्च क्रांतिकारी नेताओं का सहयोग प्राप्त हुआ। इससे यहाँ की गतिविधियों को दृढ़ता एवं सुस्पष्टता प्राप्त हुई।

सन् १९०७ का वर्ष यहाँ के क्रांतिकारी इतिहास का ही महत्वपूर्ण चरण है, परन्तु यह समूचे उत्तर भारत के लिए भी इतने ही महत्व का रहा। यह लगभग वही समय था जबकि पंजाब में और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ तेज हो चली थीं और रासबिहारी बोस के अनुयायिओं ने देश भर के प्रमुख स्थानों में अपने केन्द्र स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। सन् १९०७ के बाद ही दिल्ली में हरदयाल, अमीरचन्द, अवध बिहारी और बालमुकुन्द ने अपनी कार्यवाहियां प्रारम्भ की थीं। सन् १९०७ के बाद ही प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल ने बनारस में क्रांतिकारी अनुशीलन समिति स्थापित की।[३०] सन् १९०७ के बाद अजमेर का आरम्भिक क्रांतिकारी आंदोलन उत्तर भारत में क्रांति आंदोलन के प्रसार से पूर्णतः प्रभावित है।

अजमेर में राजनीतिक जागृति का उद्भव मुख्यतया बंगाल के स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रेरणा का प्रतिफल था। अंग्रेज़-विरोधी उत्तेजना को शनैः शनैः स्वामी दयानन्द के धार्मिक उपदेशों से भी आधार मिलता रहा। परन्तु यदि बंगाल और महाराष्ट्र के क्रांतिकारी इस क्षेत्र के अपने साथियों को आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान नहीं करते तो इस क्षेत्र में राजनीतिक जागृति की गति अत्यंत मंथर होती। राव गोपालसिंह के बारे में बम्बई पुलिस ने ए० जी० जी० को सन् १९०९ में ही यह सूचित कर दिया था कि उनके बारे में "इस तरह की बातें प्रचलित हैं कि उनका सम्पर्क राजद्रोही तत्वों से है और वह स्वयं प्रबल अंग्रेज़ विरोधी हैं।"[३१]

इन क्रांतिकारियों ने कई क्रांतिकारी केन्द्र, बोर्डिंग हाउस और स्कूलों के रूप में खोले, जहाँ पर क्रांति के लिए आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता था।[३२] जन-जागृति

पैदा करने में वे सफल नहीं हुए और न जन-साधारण में सार्वजनिक चेतना उत्पन्न करना उनके लिए संभव ही था। उन्होंने शिक्षण संस्थानों का एक जाल सा बिछा दिया था जो राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र बन गए थे। वर्धमान विद्यालय में शिक्षा दी जाती थी कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रांति आवश्यक है तथा सशस्त्र क्रांति के लिए रिवॉल्वर और पिस्तोल क्रय-हेतु यदि डाका भी डाला जाय तो कोई पाप नहीं है।

केसरीसिंह के भारत में अंग्रेज़ सरकार के प्रति विचार बंगाल के क्रांतिकारियों के समान राजद्रोहात्मक एवं विप्लवकारी थे। युवकों में क्रांतिकारी विचारधारा का प्रसार करने के उद्देश्य से उन्होंने कोटा में राजपूत बोर्डिंग हाउस और जोधपुर में राजपूत-चारण बोर्डिंग हाउस खोला था। अपने भाषणों में वे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में यह बात कूट-कूट कर भरते थे कि शिक्षा-प्रसार के लिए आवश्यक धन-राशि यदि गलत तरीके से भी प्राप्त की जाती है तो इसमें किसी तरह का पाप नहीं है।[33] केसरीसिंह के सहयोग से सोमदत्त लाहड़ी और विष्णुदत्त अजमेर के आसपास के ग्रामों में राजद्रोहात्मक वातावरण बनाने में जुट गए थे। राव गोपालसिंह ने अपने खर्चे से सोमदत्त लाहड़ी और नारायणसिंह को अजमेर में शिक्षा पाने में सहायता प्रदान की थी। इन दोनों ही युवकों का कोटा-हत्याकाण्ड में प्रमुख हाथ था। उन्होंने गेहरसिंह नामक एक नवयुवक को और तैयार किया था जो ग्रामों में प्रचार के लिए विष्णुदत्त का सहयोगी था। विष्णुदत्त वेतनभोगी अध्यापक के रूप में राव गोपालसिंह के यहाँ काम करते थे। अर्जुनलाल सेठी की प्रसिद्ध क्रांतिकारी मास्टर अमीरचन्द, अवधेशविहारी और बालमुकुन्द से अटूट मैत्री थी।[34] ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णुदत्त इन लोगों के बीच कड़ी का काम करता था। वह सदा एक स्थल से दूसरे स्थल की यात्रा करता ही रहता था। सचीन्द्रनाथ सान्याल की अनुशीलन समिति के दो सदस्य खरवा भेजे गए थे जो बम बनाने की कला जानते थे। मणीलाल और दामोदर निरंतर उत्तर प्रदेश और राजपूताना की यात्रा पर ही रहते थे।[35]

सन् १९०७ में क्रांतिकारी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट झलकने लगा था। १४ मई, १९०७ को खरवा के दुकानदारों ने विदेशी शक्कर बेचना बन्द कर दिया था। २३ जुलाई, १९०७ को अजमेर-मेरवाड़ा के जागीरदारों ने साहस जुटा कर अपने कष्ट एवं शिकायतों के समाधान के लिए एक सभा का आयोजन किया था। राव गोपालसिंह ने २८ अक्टूबर को धर्म महामंडल की अजमेर में आयोजित एक सभा की अध्यक्षता की और स्वामी ज्ञानानन्द के साथ ६ मार्च, १९०८ को वायसराय से धर्म महामंडल के प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में मिलने के लिए कलकत्ता भी गए।[36] विष्णुदत्त ने १९०७ तक क्रांतिकारियों का एक अच्छा संगठन तैयार

कर लिया था। उनके प्रमुख सहयोगियों में उल्लेखनीय नारायणसिंह, लक्ष्मीलाल लाहड़ी, रामकरण वासुदेव, सूरजसिंह और रामप्रसाद थे। ये सब उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे और विष्णुदत्त इन्हें अजमेर ले आए थे। विष्णुदत्त क्रांतिकारियों को संगठित करने के लिए राजपूताना का दौरा भी किया करते थे।

इन्होंने नसीराबाद स्थित राजपूताना रायफल्स के सैनिक अधिकारियों से संपर्क स्थापित कर उनके माध्यम से सैनिकों में अंग्रेजी शासन-विरोधी भावना जागृत करने का प्रयास भी किया। इन्हीं के जरिए शस्त्र और गोला बारूद प्राप्त किए जाते थे। मुल्तान खान व करीम खान नाम के व्यक्तियों के माध्यम से नसीराबाद से शस्त्र खरीदे जाते थे। मणिलाल और दामोदर नामक व्यक्तियों पर इन क्रांतिकारियों को बम प्रदान करने का जिम्मा था।[37]

बारहठ केसरीसिंह का सम्पूर्ण परिवार, उनके पुत्र प्रतापसिंह और भाई जोरावरसिंह क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल थे। चारण राजपूत छात्रावास क्रांतिकारी गतिविधियों के केन्द्र बन गए थे और वर्धमान विद्यालय का इस क्षेत्र में काफी महत्व था। सन् १९११ में भूपसिंह जिन्होंने आगे चलकर विजयसिंह पथिक के नाम से राजस्थान के स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया था—राव गोपालसिंह के निजी सचिव के पद पर कार्य कर रहे थे। सन् १९११ तक अजमेर को केन्द्र बनाकर गुप्त समितियों ने काम आरम्भ कर दिया था।[38]

इन क्रांतिकारियों की सामाजिक, शैक्षणिक गतिविधियों को राजपूताने के कुछ राजघरानों से सहानुभूति एवं आर्थिक सहायता प्राप्त हुई होगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि क्रांतिकारियों को राजपूताने के राजघरानों का समर्थन प्राप्त था। इसकी सहानुभूति कदाचित् इन क्रांतिकारियों की गतिविधियों के प्रति पूर्ण जानकारी न होने के कारण ही रही होगी क्योंकि यह अधिकांशतः पूर्णतया गुप्त रूप से संचालित की जा रही थी। इन राजघरानों ने इनकी शैक्षणिक और सामाजिक कार्यक्रमों की सहायता उदारतावश ही की, उन्हें इनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रति तनिक भी संदेह नहीं था।। यहाँ तक कि कोटा के महाराज को भी जिनके यहाँ केसरीसिंह नौकरी करते थे उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों की कुछ भी जानकारी नहीं थी। स्पष्टतः कुछ राजघरानों द्वारा बारहठ केसरीसिंह और राव गोपालसिंह को दी गई वित्तीय सहायता का अर्थ उनके द्वारा राजद्रोहात्मक कार्यों और क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेना नहीं माना जा सकता।[39] जोधपुर-महंत हत्याकाण्ड के मामले में कोटा के महाराव ने अपने फैसले में कहा कि ये नाम इस संदर्भ में किंचित भी तथ्यपूर्ण नहीं हैं। इस निर्णय से यह अर्थ लगा लेना भी अनुपयुक्त होगा कि राजघरानों का क्रांतिकारियों से निकट का संबंध रहा था।[40]

सन् १९११ के बाद ही राजस्थान के क्रांतिकारियों का शचीन्द्रनाथ सान्याल

ग्रौर रासविहारी बोस के साथ सम्पर्क स्थापित हुग्रा था। इनमें से प्रतापसिंह ने दिल्ली ग्रौर बनारस षड्यंत्र कांडों में महत्वपूर्ण भूमिका ग्रदा की थी। राजस्थान में उस समय ग्रस्त्र-शस्त्रों पर कोई लाईसेन्स न होने के कारण यह प्रान्त क्रांतिकारियों के लिए ग्रस्त्र-शस्त्र एकत्रित करने व उनके निर्माण-हेतु गुप्त कारखाने स्थापित करने के लिए उपयुक्त स्थान था। इसी उद्देश्य से रासविहारी बोस ने हार्डिंग बमकांड के बाद ही भूपसिंह ग्रौर बालमुकुन्द को राजस्थान भेजा था। इनके राजस्थान ग्राने के बाद यहां के क्रांतिकारियों का देश के क्रांतिकारी संगठनों से संबंध स्थापित हो गया था।[४१]

सन् १६१२ से इन क्रांतिकारियों ने डकैतियां ग्रौर हत्याएं प्रारम्भ कर दी थीं। जून १६१२ में बारहठ केसरीसिंह की क्रांतिकारी टोली ने जोधपुर के एक महंत की हत्या कर दी थी। इस हत्या का उद्देश्य क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए धन प्राप्त करना था। क्रांतिकारी इन दिनों धन की भारी कमी ग्रनुभव कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रब लोगों ने डर से इनकी शैक्षणिक ग्रौर सामाजिक संस्थाग्रों को धन देना स्थगित कर दिया था तथा वे इनसे सम्पर्क रखने में कतराते थे।[४२]

दिसम्बर १६१२ में लार्ड हार्डिंग की हत्या का प्रयत्न किया गया जिसमें उनका एक ग्रंगरक्षक मारा गया था। इसी दिल्ली षड्यंत्र कांड के सिलसिले में बाद में सेठी ग्रर्जुनलाल को गिरफ्तार किया गया था ग्रौर बारहठ केसरीसिंह पर संदेह के कारण नजर रखी जाने लगी थी।[४३] इन क्रांतिकारियों द्वारा ग्रायोजित दूसरा महत्वपूर्ण राजनीतिक हत्याकांड मारवाड़ के निमाज नामक कस्बे में सेठी ग्रर्जुनलाल के विद्यार्थियों द्वारा किया गया था।[४४] यद्यपि ये दोनों ही हत्याकांड सन् १६१२ ग्रौर सन् १६१३ में हुए थे परन्तु इनका सुराग मार्च, १६१४ तक पकड़ में नहीं ग्रा सका। सन् १६१४ में वायसराय बमकांड के सिलसिले में सेठी जी के एक शिष्य शिवनारायण को गिरफ्तार किया गया था। इस व्यक्ति ने घबरा कर निमाज महंत हत्याकांड की भी जानकारी पुलिस को दे दी थी। इस पर मोतीचन्द को फांसी की सजा व विष्णुदत्त को दस वर्ष की काले पानी की सजा दी गई।[४५]

भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के ग्रधिकारी हार्डिंग बमकांड के ग्रभियुक्त जोरावरसिंह (बारहठ केसरीसिंह के भाई जो निमाज हत्याकांड के ग्रभियुक्त भी थे) की तलाश में ग्रप्रेल १६१४ में जोधपुर पहुंचे थे, उस समय गुप्तचर विभाग के सुपरिटेंडेंट ग्रार्मस्ट्रांग को यह पता चला कि वहां का एक धनी साधु भी गत दो वर्षों से लापता है। उसके ग्रनुयायिग्रों ने उनकी काफी तलाश भी की परन्तु उसका कहीं पता नहीं चल सका। इस सिलसिले में ३ मई, १६१४ को रामकरण, केसरीसिंह जी बारहठ, लक्ष्मीलाल, हीरालाल ग्रौर लाहड़ी को गिरफ्तार कर उन पर कोटा के सेशन्स न्यायालय में मुकदमा चलाया गया।[४६]

अंग्रेज़ सरकार ने राव गोपालसिंह के विरुद्ध सबसे पहले अक्टूबर १६१४ में कार्यवाही की।[४७] अजमेर के कमिश्नर ए० टी० होम्स ने उन्हें मिलने के लिए पुष्कर बुलाया। वहाँ उन्हें एक विशेष पत्र दिया गया तथा उनसे उनके बारे में स्पष्टीकरण मांगा। उन पर निम्न आरोप लगाए गए—

१. लाहड़ी के बयानों के अनुसार राव गोपालसिंह ने केवल सत्ता विरोधी विचारों का ही प्रचार नहीं किया, अपितु खुले रूप से क्रांतिकारी आंदोलन का समर्थन किया और उसे भी इसमें शामिल हो जाने के लिए कई व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया।

२. उन पर यह भी आरोप था कि उनका सम्पर्क केसरीसिंह और विष्णुदत्त से रहा है। जिनका उद्देश्य अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध षड़यंत्र रचना तथा राजद्रोहात्मक कार्य करना था।

३. उन्होंने विष्णुदत्त को अपने प्रतिनिधि के रूप में अजमेर और जोधपुर में उपदेशक के रूप में एक लम्बे समय तक नियुक्त रखा था।

४. उन्होंने अपने व्यय पर अजमेर में दो नवयुवक नारायणसिंह (मृत) और लाहड़ी को पढ़ाया, जिनका कोटा व निमाज हत्याकांड में प्रमुख भाग था।

५. जब विष्णुदत्त उनके यहाँ उपदेशक के रूप में काम करता था तब उन्होंने उसकी सहायता के लिए गैरसिंह को नियुक्त किया था जोकि केसरीसिंह द्वारा स्थापित गुप्त समिति का सदस्य रह चुका था।

आरोप पत्र में यह भी लिखा गया कि उपर्युक्त आधार पर सरकार इस निर्णय पर पहुँची है कि इन क्रांतिकारियों की गतिविधियों की उन्हें पूर्ण जानकारी होते हुए भी उन्होंने उनसे सम्पर्क बनाए रखा तथा ताज के प्रति अपनी वफादारी का वचन निभाने में वे असमर्थ रहे।[४८]

राव गोपालसिंह इस आरोप-पत्र के सम्बन्ध में कमिश्नर से मिलना चाहते थे परन्तु कमिश्नर ने उनसे मिलने के बजाय लिखित उत्तर की मांग की तथा उन्हें लिखित उत्तर के लिए पर्याप्त समय देने से भी इन्कार कर दिया गया। राव गोपालसिंह ने अपने लिखित उत्तर में इन सभी आरोपों को अस्वीकार किया।[४९]

राव गोपालसिंह के लिखित उत्तर से यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि वे आरोप-पत्र से भयभीत हो उठे थे तथा अपनी जागीर को बचाने के चक्कर में थे। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं थी। उस युग के क्रांतिकारियों के लिए अपने बचाव में इस तरह के वक्तव्य देना कोई अपराध नहीं था। इसलिए राव गोपालसिंह ने जो कदम उठाया वह क्रांतिकारी परम्परा के विपरीत नहीं था। इसमें एक चुभने वाली बात यह थी कि उन्होंने सम्पूर्ण दोष बारहठ केसरीसिंह पर थोप दिया था और उनके

विरुद्ध आरोप ऐसे समय प्रस्तुत किए जबकि उन पर कोटा में मुकदमा चल रहा था तथा इससे जोधपुर महन्त हत्याकांड के मुकदमें में उनके विरुद्ध सरकार को बल मिलता था। परन्तु उक्त वक्तव्य के आधार पर ही यह नहीं मान लेना चाहिए कि खरवा ठाकुर का क्रांतिकारी जीवन समाप्त हो चला था। बनारस षड़यंत्र कांड में रामनाथ ने जो इकबाली बयान दिया उसमें उसने स्पष्ट कहा कि २१ फरवरी, १९१५ को सशस्त्र सैनिक विद्रोह की योजना तैयार करने और उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए खरवा के राव गोपालसिंह भी प्रयत्नशील थे। उक्त क्रांति की योजना समय के पूर्व ही प्रकट हो गई और वह मूर्त रूप लेने से पहले ही दबा दी गई थी।[५०] इससे यह स्पष्ट है कि अंग्रेजों के आतंक से घबरा कर राव गोपालसिंह अपनी क्रांतिकारी कार्यवाहियों को छोड़ने वाले व्यक्ति नहीं थे। इसके विपरीत प्रस्तावित सशस्त्र क्रांति के लिए उनके द्वारा की गई तैयारी, यह प्रकट करती है कि निस्संदेह उन्होंने अपनी गतिविधियों को और भी अधिक तेज कर दिया था।

बनारस षड़यंत्र कांड के मुकदमें के दौरान सरकारी गवाहों और मुखबिरों ने अपने बयानों में राव गोपालसिंह का भी इस षड़यंत्र में हाथ बतलाया था। मणिलाल ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि राव साहब ने उसे तथा दामोदर व प्रतापसिंह को हथियार दिए थे। इसलिए सरकार का उनके प्रति संदेह होना स्वाभाविक था। राव गोपालसिंह की इन अंग्रेज़ विरोधी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण अंग्रेज़ सरकार ने २५ जून, १९१५ को उनके विरुद्ध भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत नजरबंदी आदेश जारी किया।[५१]

सरकार ने उन्हें चौबीस घन्टे के अन्दर खरवा छोड़ कर टाडगढ़ के तहसीलदार के समक्ष उपस्थित होने के आदेश दिए। उन्हें वहाँ तहसीलदार टाडगढ़ द्वारा निर्धारित स्थान पर अग्रिम आदेश प्राप्त होने तक तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक कहीं भी बाहर नहीं निकलने के आदेश दिए गए। उन पर तहसीलदार की पूर्व अनुमति के बिना टाडगढ़ निवासियों के अतिरिक्त अन्य बाहर के व्यक्तियों से मिलने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था।[५२] २६ जून, १९१५ को राव गोपालसिंह को खरवा छोड़ना पड़ा। वहाँ से रवाना होते समय अपने पुत्र कुंवर गणपतसिंह को आशीर्वाद देते हुए उसे अपनी मातृभूमि और भगवान के प्रति वफादार रहने की सलाह दी।[५३]

३० जून, १९१५ को अजमेर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने खरवा के किले की तलाशी लेते समय जनाने महल को भी नहीं छोड़ा। राव गोपालसिंह के अनुचरों की संख्या केवल दस व्यक्तियों तक सीमित कर दी गई थी। उन्हें अपनी आत्मरक्षा के लिए केवल एक तलवार तथा शिकार के लिए दो बंदूक रखने की इजाजत थी।[५४] उन्हें इसके अतिरिक्त शस्त्रास्त्र सौंप देने के लिए कहा गया था परन्तु राव साहब ने इसे अस्वीकार कर दिया था। उन्हें यह सूचना मिल चुकी थी कि पुलिस

लोगों से उनके विरुद्ध जानकारी प्राप्त करने के लिए अत्याचार कर रही है। १० जुलाई को राव गोपालसिंह अपने सभी हथियारों सहित मोडसिंह के साथ ब्यावर की ओर निकल पड़े। उदयपुर और जोधपुर के पोलीटिकल एजेन्टों को उनकी गिरफ्तारी के लिए तार भेजे गए।[५५] पुलिस को राव साहब की जानकारी किशनगढ़ दरबार के माध्यम से मिली कि वे सलेमाबाद के मन्दिर में हैं। पुलिस ने वहां पहुंच कर मन्दिर को चारों ओर से घेर लिया।[५६] राव गोपालसिंह गिरफ्तार होने की अपेक्षा मरने-मारने के लिए तैयार थे।

इस तरह की तेज अफवाह फैल गई थी कि खरवा ठाकुर के सगे-संबंधी संगठित सशस्त्र विद्रोह के लिए तैयार हो रहे हैं। इन्सपेक्टर जनरल पुलिस ने स्थिति की गंभीरता का अनुभव करते हुए राव साहब को यह सलाह दी कि वे उनसे मिलें और पूर्ण भाईचारे के वातावरण में परिस्थिति पर विचार-विमर्श करें। राव गोपालसिंह ने उनसे लिखित रूप में यह जानना चाहा कि भारत रक्षा कानून के अंतर्गत अपराधों के अतिरिक्त टाडगढ़ छोड़कर चले आने की स्थिति में उन पर कौनसा जुर्म कायम किया जाएगा। सुपरिंटेंडेंट ने राव गोपालसिंह को कहा कि उनकी यह व्यक्तिगत मान्यता है कि राजस्थान में दिल्ली-षड़्यंत्र कांड के मामले में जो प्रमाण मिले हैं वे इतने अपर्याप्त हैं कि उनके आधार पर उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि उनके पास दिल्ली के जाँच अधिकारी का लिखित पत्र है कि यदि राव गोपालसिंह पर भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत कार्यवाही की जाती है तो ऐसी संभावना है कि उन पर और मुकदमें लागू नहीं किए जाएंगें।[५७] इस बातचीत के आधार पर राव गोपालसिंह ने स्वयं अपनेआपको पुलिस को सौंप दिया और उन्हें राजनीतिक बंदी के रूप में अजमेर लाया गया।[५८] उन्हें अजमेर के किले में रखा गया और १२ अक्टूबर, १९१५ को अजमेर के जिला दंडनायक ने उन्हें दो वर्षों की सामान्य कारावास की सजा दी।

बनारस हत्याकांड के सिलसिले में उन्हें नवम्बर में बनारस भेजा गया परन्तु सरकार के द्वारा मुकदमा हटा लेने के कारण २४ नवम्बर, १९१५ को उन्हें वापिस अजमेर भेज दिया गया।[५९] ४ सितम्बर, १९१७ को उन्हें रिहा कर दिया गया परन्तु उसी दिन पुनः उन्हें भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर तिलहर भेज दिया गया जहाँ वे ढ़ाई वर्ष तक हवालात में रहे। अजमेर-मेरवाड़ा जिले के खालसा ग्रामों व कस्बों के लोगों ने हजारों की संख्या में हस्ताक्षर करके राव गोपालसिंह की रिहाई के लिए वायसराय को प्रार्थना-पत्र भेजे।[६०] सन् १९२२ में उन्हें राजनीतिक बंदियों के साथ रिहा कर दिया गया। बारहठ केसरीसिंह को जून, १९१९ तक जेल का जीवन काटना पड़ा। उनकी यह आकांक्षा थी कि राजपूत समाज में सैनिक जागृति उत्पन्न कर मातृभूमि को मुक्त करवाया जाय। क्रांतिकारी योजनाओं

की असफलता से उन्हें इतना गहरा सदमा पहुँचा कि उन्होंने चम्बल तट पर एकान्त-वास ग्रहण कर लिया था। अर्जुनलाल सेठी को प्रारम्भ में जयपुर जेल में बिना कार्यवाही के नौ महीने रखा गया। उसके बाद उन्हें वेलूर जेल में भेज दिया गया था। सन् १९१७ में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में एक प्रस्ताव जेल में सेठी जी पर हो रहे अत्याचारों द्वारा सरकारी नीति की भर्त्सना की तथा केन्द्रीय सरकार से हस्तक्षेप की माँग की। सन् १९२० में, ६ वर्ष के लंबे जेल-जीवन के बाद उन्हें रिहा किया गया।[६१]

बारहठ परिवार के सदस्य जोरावरसिंह और प्रतापसिंह का क्रांतिकारियों के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। निमाज हत्याकांड के बाद जोरावरसिंह फरारी का जीवन बिता रहे थे। उन्होंने दिल्ली में लार्ड हार्डिंग पर बम फैंकने के षड़यंत्र में प्रमुख भूमिका निभाई थी। इसके पश्चात् उन्होंने पुलिस और गुप्तचर विभाग की आंखों में धूल झोंकते हुए अपनी गतिविधियां जारी रखीं। मालवा और राजपूताना के पर्वतीय क्षेत्रों में छिपे रहकर उन्होंने अपनी वृद्धावस्था के बावजूद अपनी क्रांतिकारी गतिविधियां जारी रखी थीं। बिहार में कांग्रेस मंत्रिमंडल के गठन पर उनकी गिर-फ्तारी के वारन्ट वापिस लिए जाने के प्रयत्न किए गए। उन पर से गिरफ्तारी के वारन्ट हटा लेने के एक दिन पूर्व ही नवम्बर, १९३९ को उनका देहांत हो गया था।[६२]

राजपूताने के क्रांतिकारियों में सबसे अधिक ख्याति एवं महत्व प्रतापसिंह ने प्राप्त किया था। वह भारत की सभी महत्वपूर्ण क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े हुए थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपने बन्दी जीवन में प्रतापसिंह के अजेय साहस की मुक्तकंठ से सराहना की एवं उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी। उन्हें क्रांतिकारिता की घुट्टी बारहठ केसरीसिंह से विरासत में मिली थी और उन्होंने ही प्रताप के क्रांतिकारी जीवन को ढाला था। इसके लिए उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण भी दिया गया। उन्होंने अजमेर में डी० ए० वी० कालेज में मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की थी। किशोरावस्था में ही उन्हें दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द के पास क्रांतिकारी प्रशिक्षण के लिए भेज दिया गया था। वहीं पर वे अवधबिहारी के निकट सम्पर्क में आए[६३] और रास-बिहारी बोस तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल से उनका परिचय हुआ।

वह शचीन्द्रनाथ सान्याल के निकटतम सहयोगी तथा रासबिहारी बोस के विश्वासपात्र थे। उत्तरी भारत में गदर आन्दोलन में वे शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ थे।[६४] उन्हें राजपूताना में सशस्त्र क्रांति को संगठित करने का काम सौंपा गया था ताकि अजमेर और नसीराबाद के मध्य सशस्त्र क्रांति आरम्भ की जा सके। इसके अतिरिक्त उन्हें भारत सरकार के गृह सदस्य को गोली से उड़ा देने का भी काम सौंपा गया था।[६५] रासबिहारी बोस के भारत छोड़ देने पर वे राजपूताना चले आए और

इस क्षेत्र में क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करते रहे। सेठी अर्जुनलाल और अपने पिता बारहठ केसरीसिंह की गिरफ्तारी के पश्चात् क्रांतिकारी गतिविधियों का सम्पूर्ण भार प्रताप को वहन करना पड़ा था। इसमें बृजमोहन माथुर और छोटेलाल जैन उनके सहयोगी थे। बनारस षड़यंत्र कांड में उनके खिलाफ वारंट जारी हो जाने के कारण वे हैदराबाद (सिंध) चले गए थे। सिंध से वापस लौट आने पर बीकानेर जाते समय वे आशानाड़ा के अपने एक मित्र से मिलने रुक गए थे जोकि यहां स्टेशन मास्टर था। यहीं पर उन्हें विश्वासघात से गिरफ्तार कर लिया गया।[६६] प्रताप की गिरफ्तारी के साथ ही एक तरह से अजमेर और राजपूताना में क्रांतिकारी गतिविधियों का महत्वपूर्ण चरण समाप्त हो गया था।

सन् १९१५ के अंग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीति ने, जो कुछ भी क्रांतिकारी गतिविधियों के अवशेष बचे थे उन्हें क्रूरता से कुचल दिया था। राव गोपालसिंह और बारहठ केसरीसिंह के राजपूताने के राजघरानों एवं अभिजात वर्ग से उनके निकट-तम संपर्क के कारण अंग्रेज़ अधिकारियों को यह संदेह होना स्वाभाविक ही था कि राजपूताना के राजघराने और जागीरदार भी इन क्रांतिकारियों की गतिविधियों में थोड़ी बहुत रुचि लेते रहे हैं। इसलिए भारत सरकार ने राज दरबारों में अपना सर्वोच्च सत्ता का नियंत्रण-अंकुश कस दिया था। इन रजवाड़ों में लगभग एक दशक तक आतंक का साम्राज्य स्थापित हो गया था। अंग्रेज़ सरकार को अपनी बफादारी से आश्वस्त करने के लिए राजपूताना और अजमेर के नरेशों एवं जागीरदारों ने अपनी प्रजा के लिए स्वराज्य की कल्पना तक को असंभव बना दिया था।

लम्बे जेल जीवन एवं अपनी योजनाओं की असफलता के कारण यहां के क्रांति-कारियों में निराशा की भावना पैदा हो गई थी। यद्यपि वे इसके बारे में यदा-कदा अपनी गतिविधियों से राजनीतिक जीवन में हलचल अवश्य पैदा करते रहे। क्रांति-कारी जीवन के दौरान उनके परिवारों को जो आर्थिक क्षति उठानी पड़ी उसने भी उनकी स्थिति को डांवाडोल कर दिया था।

क्रांतिकारी गतिविधियों की समाप्ति के चरण तक अजमेर का राजनीतिक आकाश एक दूसरे रंग में रंगने लगा था। क्रांतिकारियों की गतिविधियां शिक्षित समुदाय के कुछ व्यक्तियों तक ही केन्द्रित रहीं। ये लोग न तो खुला प्रचार ही कर पाते थे और न सार्वजनिक सभाएं आयोजित कर सकते थे। पुलिस द्वारा आतंक-वादियों की गतिविधियों पर कड़ी नजर रहने के कारण वे आम जनता तक पहुंच भी नहीं पाते थे। बीसवीं सदी के द्वितीय दशक के अंत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में राजनीतिक जाग्रति का प्रादुर्भाव हुआ। दिल्ली, अहमदाबाद रेलमार्ग के मध्य में स्थित होने के कारण अजमेर इन हलचलों एवं जागृति से अछूता नहीं रहा।[६७]

अजमेर में राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव के तीन आधार रहे हैं। प्रथम तो

अजमेर आर्य समाज की गतिविधियों का एक प्रमुख और शक्तिशाली केन्द्र रहा था। स्वामी दयानन्द ने अपने अन्तिम दिन यहीं व्यतीत किए थे और यहीं उनका निधन हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि यथासमय अजमेर हिन्दू पुनर्जागरण की दिशा में भारतीय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। आर्य समाज ने स्वामीजी की स्मृति में एक कालेज, स्कूल, पुस्तकालय, छापाखाना एवं अनाथालय की स्थापना कर अजमेर की जनता में सामाजिक और धार्मिक जाग्रति उत्पन्न कर दी थी।[६८] शिक्षा के इसी पुनर्जागरण के फलस्वरूप ही अजमेर की जनता की बौद्धिक चेतना का ही विकास नहीं हुआ अपितु उसमें एक नए ही ढंग की राजनीतिक चेतना भी जाग्रत हुई। बीसवीं सदी का प्रारम्भ अजमेर की जनता की बौद्धिक चेतना, सामाजिक जाग्रति एवं राजनीतिक स्थिरता का महत्वपूर्ण युग था। इस शैक्षणिक एवं प्रगतिशील तथा उदार सुधारवादी आन्दोलन ने अपना स्वरूप विकसित किया और अजमेर-मेरवाड़ा की जनता के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।[६६] आर्य समाज के अलावा इस क्षेत्र में इसाई पादरियों द्वारा विभिन्न शिक्षण-संस्थान खोले गए थे। उनके द्वारा भी अजमेर की जनता का दकियानूसी पिछड़ापन समाप्त हुआ।[७०]

अजमेर में इस चेतना के फलस्वरूप राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का उदय हुआ व अजमेर ने खिलाफत एवं सविनय अवज्ञा आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। १६ मार्च, १९२० को अजमेर में खिलाफत समिति की बैठक हुई। अजमेर में खिलाफत दिवस मनाया गया जिसमें डा० अंसारी, मोलाना मोईनुद्दीन, चांदकरण शारदा और अर्जुनलाल शारदा आदि ने भाग लिया।[७१] सार्वजनिक सभाओं में जलियांवाला बाग की क्रूरता की निंदा की गई तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के उद्देश्य को आगे बचाने का प्रयास किया गया। जनता से सत्याग्रह में भाग लेने एवं कर न चुकाने का आह्वान किया गया तथा विदेशों को भारत से खाद्यान्न के निर्यात पर रोक की मांग के समर्थन में जनमत तैयार किया गया। स्वदेशी आंदोलन अजमेर में द्रुत गति से चला। सरकारी नौकरियों में सभी श्रेणियों एवं सभी पदों पर भारतीयों को रखने तथा अजमेर-मेरवाड़ा में भारतीय उद्योग धन्धों की स्थापना के बारे में समय-समय पर प्रस्ताव व सभाओं से जनमत तैयार किया गया।[७२]

राजपूताने के मध्य में स्थित होने तथा राजनीतिक जाग्रति का केन्द्र होने के कारण अजमेर उन दिनों रियासती जनता के आन्दोलनों का भी केन्द्र बना हुआ था। रियासतों से निष्कासित राजनीतिक नेता यहीं शरण लेते थे। रियासती जनता में जाग्रति के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी यहीं से होता था। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ-साथ रियासतों में उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन का संचालन भी अजमेर से ही होता था। अंग्रेजों के सीधे नियंत्रण में होने के बाद भी अजमेर ने

कभी अपने को राजपूताना की अन्य रियासतों से अलग नहीं माना। इसलिए रियासती आन्दोलनों में अजमेर का महत्वपूर्ण योगदान रहा था।

अध्याय ११

१. चीफ़ कमिश्नर द्वारा सचिव भारत सरकार को प्रस्तुत रिपोर्ट, दिनांक १-१०-१८८२ फाइल संख्या ४६५ ई० (रा० रा० पु० मं०)।

२. राजद्रोह समिति की रिपोर्ट पृ० ५५ (रा० रा० पु० मं०)।
सम्राट के विरुद्ध मोतीचन्द एवं विष्णुदत्त के मुकदमें में सत्र न्यायाधीश शाहवाद का फैसला, फाइल संख्या ५१, अजमेर खण्ड १, राजपूताना षड़यंत्र (रा० रा० पु० मं०)।

३. जोधपुर महंत हत्याकाण्ड में कोटा महाराव का फैसला (रा० रा० पु० मं०)।

४. राजद्रोह समिति की रिपोर्ट पृ० ५५ (रा० रा० पु० मं०)।

५. शंकरसहाय सक्सेना—राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ८७।

६. रेजीडेंसी रेकॉर्ड, फाइल सं० ई० ३–४५ (रा० रा० पु० मं०)।

७. कोटा रेकॉर्ड—सीमा मुत्फ़रीक भंडार, संख्या ४, वस्ता संख्या १०२६ (रा० रा० पु० मं०)।

८. राजपूताना हेराल्ड १८ मार्च, १८८५, ३० सितम्वर, १८८५, १० अगस्त, १८८७।

९. डॉ० दशरथ शर्मा—राजस्थान—सार्वजनिक जन सम्पर्क कार्यालय प्रकाशन (१९५१)।

१०. बारहठ केसरीसिंह की आत्मकथा—राजस्थान का गोपनीय एवं रहस्यमय इतिहास—पांडुलिपि खण्ड ४ (रा० रा० पु० मं०)।

११. फाइल संख्या ५१, खण्ड संख्या १, अजमेर रेकॉर्ड (रा० रा० पु० मं०)।

१२. रामनारायण चौधरी—वर्तमान राजस्थान (१९४८) पृ० २७।

१३. शंकरसहाय सक्सेना—राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ९५।

१४. खड़गावत—राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ पृ० ८, ९।

१५. स्वामी दयानन्द और मेवाड़ के महाराजाधिराज सज्जनसिंह तथा शाहपुरा राजाधिराज नाहरसिंह के बीच पत्र-व्यवहार (रा० रा० पु० मं०)।

१६. सुरजनसिंह का बयान (रा० रा० पु० मं०)।

१७. महर्षि दयानन्द शताब्दी के अवसर पर दिए गए भाषण, बीकानेर सरकार, गृह विभाग फाइल संख्या सी० २०३।

१८. राव गोपालसिंह का बयान, अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५१, खण्ड १, पृ० १२८ से १५४ (रा० रा० पु० मं०)।

१९. रामनारायण चौधरी–वर्तमान राजस्थान (१९४८) पृ० २७।

२०. उपरोक्त, राजस्थान षड़यंत्र पर आर्मस्ट्रोंग की टिप्पणी, अजमेर रिकॉर्ड, फाइल नं० ५१, खण्ड १ (रा० रा० पु० मं०)।

२१. उपर्युक्त।

२२. राजपूताना षड़यंत्र, अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५१ खण्ड १ (रा० रा० पु० मं०)।

२३. जोधपुर महंत हत्याकांड में कोटा महाराव का फैसला (रा० रा० पु० मं०)।

२४. हर प्रसार, आजादी के दीवाने पृ० ४९–५०।

२५. मोड़सिंह पुरोहित का बयान (रा० रा० पु० मं०)।

२६. सुरजानसिंह का बयान (रा० रा० पु० मं०)।

२७. सेडीशन कमेटी रिपोर्ट (१९१८) पृ० ५५ से ६०।

२८. जोधपुर महन्त हत्याकांड में कोटा महाराव का फैसला (रा० रा० पु० मं०)।

२९. सुरजानसिंह का बयान (रा० रा० पु० मं०)।

३०. सेडीशन कमेटी रिपोर्ट (१९१८) पृ० ५४ से ६०।

३१. राव गोपालसिंह खरवा फाइल नं० ४६, पत्र संख्या एस० डी० एल० ५४०८ दि० ११–११–१९०९ (रा० रा० पु० मं०)।

३२. राजपूताना षड़यंत्र अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५१, खण्ड १ (रा० रा० पु० मं०)।

३३. जोधपुर महन्त हत्याकांड में कोटा महाराव का फैसला (रा० रा० पु० मं०)।

३४. राजपूताना षड़यंत्र, अजमेर रेकॉर्ड, फाइल नं० ५१, खण्ड १ पृ० १७ से २६।

३५. सुरजनसिंह का बयान (रा० रा० पु० मं०) ।

३६. सुरजनसिंह व मोड़सिंह के बयान (रा० रा० पु० मं०) ।

३७. उपर्युक्त ।

३८. शंकरसहाय सक्सेना, राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ९७ व १०० ।

३९. रामनारायण चौधरी–वर्तमान राजस्थान (१९४९) ।

शंकरसहाय सक्सेना–राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) ।

४०. जोधपुर महन्त हत्याकांड में कोटा महाराव का फैसला (रा० रा० पु० मं०) ।

४१. शंकरसहाय सक्सेना–राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ९५–९६ ।

४२. जोधपुर महन्त हत्याकांड में कोटा महाराव का फैसला (रा० रा० पु० मं०) ।

४३. अजमेर रेकॉर्ड, फाइल नं० ५१, खण्ड १ (रा० रा० पु० मं०) ।

४४. उपर्युक्त ।

४५. उपर्युक्त ।

४६. अजमेर रेकॉर्ड, फाइल नं० ५१, खण्ड १ ।

जोधपुर महन्त हत्याकांड में सेशन्स जज कोटा का फैसला (रा० रा० पु० मं०) ।

४७. अजमेर रेकॉर्ड, फाइल नं० ५१, खण्ड १ व २ (रा० रा० पु० मं०) ।

४८. होम्स का पत्र दिनांक २३–१०–१९१४ व कमिश्नर को प्रस्तुत रिपोर्ट दि० २६–७–१९१४ ।

अजमेर रेकॉर्ड, फाइल नं० ५१, (रा० रा० पु० मं०) ।

४९. राव गोपालसिंह का जवाब दि० १४–८–१९१४ फाइल नं० ५१ (रा० रा० पु० मं०) ।

५०. मोड़सिंह सुरजनसिंह व ईश्वरदान के बयान (रा० रा० पु० मं०) ।
रामनारायण चौधरी–वर्तमान राजस्थान (१९४९) पृ० ३१ ।

शंकरसहाय सक्सेना–राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० १००, १०१, १०२, १०३, १०४ ।

श्री शंकरसहाय सक्सेना ने इस क्रान्ति का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है:—

दिसम्बर १९१४ में वाराणसी में जहां रासबिहारी बोस छिपे हुए थे, भारत के समस्त क्रांतिकारी दलों के नेताओं का एक सम्मेलन हुआ। विप्लव की एक पूरी योजना बना ली गई। क्रांतिकारी दल के दूत बन्नू पेशावर से सिंगापुर तक सभी अंग्रेज छावनियों में घुसकर वहां की परिस्थिति की जानकारी कर चुके थे। क्रांतिकारियों ने सभी सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिकों से संबंध स्थापित कर लिया था और प्रत्येक छावनी में देशभक्त क्रांतिकारी सैनिकों का एक दल खड़ा कर दिया था जो सेना में क्रांतिकारी भावनाओं को भरता था। क्रांतिकारियों ने यह मालूम कर लिया था कि उस समय देश में कुल १५ हजार गोरे सैनिक थे। अधिकांश भारतीय सेनाएं क्रांति होने पर देश की आजादी के लिए क्रांतिकारियों के साथ शस्त्र उठाने को तैयार थी। क्रांतिकारियों की योजना थी कि पहले लाहौर, रावलपिंडी और फीरोजपुर की छावनियों की सेनाएं विद्रोह कर क्रांतिकारियों और देशभक्त जनता के सहयोग से वहां के शस्त्रागारों पर जहां कि देश के विशाल शस्त्रागार थे उन पर अधिकार करले। देश की दूसरी छावनियों की सेनाएं उस संकेत को पाते ही उठ खड़ी होने को तैयार रक्खी जाएं और क्रांतिकारियों की मदद से अपने-अपने प्रदेश के अंग्रेजों को गिरफ्तार कर लिया जाए। अजमेर तथा अन्य स्थानों पर राजस्थान के क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों के भारतीय नौकरों को पहले ही अपने साथ मिलाकर तय कर लिया था कि निश्चित तिथि पर संकेत पाते ही वे अंग्रेजों को सोते हुए पकड़ उन्हें क्रांतिकारियों के हवाले करदें। जहां तक हो सके रुधिर बहाने से बचा जाए और देश की शासन सत्ता अपने हाथ में करली जाए। देश के आन्तरिक शासन पर एक बार अधिकार प्राप्त कर लेने पर अंग्रेजों के शत्रु देशों जर्मनी, तुर्की आदि से विधिवत् सम्बन्ध जोड़ कर, जिसके लिए प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी योरोप में पहले से ही प्रयत्न कर रहे थे, उनसे सहायता प्राप्त कर अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले जवाबी हमलों का सामना करने की तैयारी की जाए।

क्रांति की सब तैयारियां हो जाने पर क्रांति का आरम्भ स्वयं अपने निरीक्षण और नेतृत्व में कराने के लिए रासबिहारी बोस जनवरी, १९१५ के आरम्भ में वाराणसी से छूट कर लाहौर चले आए। दिल्ली और राजस्थान का प्रबन्ध देखने के लिए शचीन्द्र सान्याल को भेजा गया। २१ फरवरी, १९१५ भारत की आजादी के लिए सशस्त्र क्रांति आरम्भ करने की तिथि निश्चित करदी गई। उस दिन प्रसिद्ध क्रांतिकारी देशभक्त

कर्तारसिंह अपने दल के साथ फीरोजपुर के शस्त्रागार पर आक्रमण करने वाला था। उसकी सफलता की सूचना मिलते ही अन्य सभी स्थानों पर क्रांति आरम्भ की जाने वाली थी। राजस्थान में खरवा ठाकुर गोपालसिंह को दामोदरदास राठी से मिलकर ब्यावर पर और भूपसिंह को अजमेर और नसीराबाद पर अधिकार कर लेने का कार्य सौंपा गया। जनवरी के अन्त तक यह सारी व्यवस्था कर शचीन्द्र सान्याल वाराणसी लौट गया जहां क्रांति का सूत्रधार वह स्वयं था।

भूपसिंह अब तेजी में राजस्थान की क्रांतिकारी शक्तियों को संगठित करने में जुट गए।

यह सब तैयारी भारत में अत्यन्त गुप्त तरीके से की जा रही थी। परन्तु योरोप तथा अन्य देशों में भारतवासियों ने सशस्त्र क्रांति की तैयारी को उतनी सतर्कतापूर्वक गुप्त नहीं रखा। फ्रांस की पुलिस ने युद्ध आरंभ होने के कुछ मास बाद ही अंग्रेजों को सूचना दी कि योरोप के भारतीयों में भारत में शीघ्र ही फूटने वाले किसी सैनिक विद्रोह की चर्चा बहुत जोरों पर है। अतएव भारत में भी पुलिस बहुत चौकन्नी हो गई और फरवरी, १९१५ के आरम्भ में वह अपने एक गुप्तचर को क्रांतिकारियों के दल में सम्मिलित कर देने में सफल हो गई। उसका नाम कृपालसिंह था। वह क्रांतिकारियों की सारी खबरें पुलिस को देता था। क्रांतिकारियों को उस पर शीघ्र ही संदेह हो गया। उन्होंने उस पर निगाह रखना प्रारम्भ की तो उनका सन्देह पक्का हो गया क्योंकि वह प्रतिदिन एक निश्चित समय पुलिस अधिकारियों के पास जाता था। होना तो यह चाहिए था कि उसको तुरन्त गोली मारदी जाती परन्तु पंजाबी क्रांतिकारी यह सोचते रहे कि कृपालसिंह को मार डालने से न जाने क्या गड़बड़ मच जाए अतएव उन्होंने कृपालसिंह को एक प्रकार से नजरबंद कर लिया और २१ फरवरी, १९१५ के स्थान पर क्रांति की तिथि बदलकर १९ फरवरी करदी। कारण यह था कि कृपालसिंह १९ फरवरी से तीन चार दिन पूर्व सेना में फूट पड़ने वाले उस विप्लव की सूचना लाहौर के अंग्रेज अधिकारियों को दे आया था। अस्तु २१ फरवरी के विद्रोह की सूचना अंग्रेज अधिकारियों के पास पहुंच चुकी थी। इसी कारण क्रांतिकारियों ने विप्लव की तारीख को १९ फरवरी अर्थात् दो दिन पूर्व कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश एक और दुर्घटना हो गई। इस नई तारीख की सूचना को छावनी में ले जाने का कार्य जिसको सौंपा गया था उसने लौटकर रासविहारी से कहा "छावनी में मैं १९ तारीख की सूचना दे आया" उस समय कृपालसिंह वहीं बैठा हुआ था। उस व्यक्ति

को कृपालसिंह के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। सम्भवतः यह घटना १८ फरवरी की थी। कृपालसिंह ने किसी तरह यह सूचना भी पुलिस के पास भिजवा दी।

इसके कुछ घंटों बाद ही १६ फरवरी को धर पकड़ आरम्भ हो गई। अंग्रेजों को इस क्रांति का पता चल गया। क्रांति असफल हो गई। लाहौर में रासबिहारी बोस और कर्तारसिंह को घोर निराशा हुई। सच तो यह है कि १८५७ के उपरान्त विप्लव की इतनी बड़ी तैयारी इस देश में कभी नहीं हुई। वह सारी तैयारी व्यर्थ चली गई। रासबिहारी बोस को इससे गहरी निराशा हुई। लाहौर से रासबिहारी बोस तुरन्त वाराणसी की ओर चल पड़े। देशद्रोही कृपालसिंह के विश्वासघात से देश की स्वतंत्रता का वह महायज्ञ असफल हो गया।

राजस्थान में भूपसिंह, खरवा के रावसाहब गोपालसिंह, ठाकुर मोड़सिंह तथा सवाईसिंह आदि २१ फरवरी, १९१५ को खरवा स्टेशन से कुछ दूर जंगल में कई हजार वीर योद्धाओं का क्रांतिकारी दल लिए विप्लव करने की तैयारी कर संकेत पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। रात्रि को दस बजे अजमेर से अहमदाबाद जाने वाली जो रेलगाड़ी खरवा से गुजरती थी उससे खरवा स्टेशन के समीप में एक बम का धमाका कार्यारम्भ का संकेत था। उस संकेत को पाते ही भूपसिंह तथा खरवा ठाकुर साहब को अजमेर और ब्यावर पर आक्रमण कर देना था। किन्तु संकेत नहीं मिला। बम का धड़ाका नहीं हुआ। अगले दिन संदेशवाहक ने आकर लाहौर में घटी घटनाओं की उन्हें सूचना दे दी। बहुत अधिक संख्या में अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किए गए थे, जिनमें ३० हजार से अधिक बंदूकें थीं, बहुत अधिक राशि में गोला और बारूद आदि था, उन सभी को तुरन्त गुप्त स्थानों में छिपा दिया गया और क्रांतिकारी वीर स्वयंसेवक सैनिक दल बिखर गया।

भूपसिंह दिल्ली के रहने वाले अपने एक साथी रलियाराम को साथ ले खरवा तथा अजमेर इत्यादि में सब व्यवस्था कर बड़ौदा तक जाकर अपने सब क्रांतिकारी साथियों को सावधान कर आए। सात आठ दिन बाद ही पुलिस ने खरवा पर छापा मार कर खरवा नरेश गोपालसिंह आदि को गिरफ्तार करने की तैयारी की। होने वाली गिरफ्तारी की खबर उन्हें क्रांतिकारी भेदिए से पहले ही मिल गई थी। विचार-विमर्श हुआ कि क्या किया जाए। कारण यह था कि शीघ्र ही सेना की टुकड़ी उन्हें गिरफ्तार करने के लिए आने वाली थी। भूपसिंह ने कहा कि चुपचाप आत्मसमर्पण कर अंग्रेजों की जेल में अनिश्चित काल तक

पड़े रह कर सड़ने या फिर फांसी के तख्ते पर लटकाए जाने की अपेक्षा लड़ते हुए मरना कहीं अधिक गौरवमय है। भूपसिंह की बात सबको उचित प्रतीत हुई और सभी ने आत्मसमर्पण न कर लड़ते हुए मर जाने का निश्चय किया।

अन्य सभी साधारण क्रांतिकारी दल के सदस्यों को खरवा से हटा दिया गया। इसके उपरान्त भूपसिंह, खरवा नरेश ठाकुर गोपालसिंह उसके भाई मोढ़सिंह, रलियाराम और सवाईसिंह पांच क्रांतिकारी वीर बहुत से अस्त्रशस्त्र, बन्दूकें, गोला बारूद, बम इत्यादि लेकर तथा आठ दस दिन के खाने का सामान आदि लेकर रातोंरात खरवा के गढ़ से निकलकर पास के जंगल में बनी हुई ओहदी (शिकारी बुर्ज) में मोर्चाबन्दी कर जा डटे। दूसरे ही दिन अजमेर का अंग्रेज़ कमिश्नर ५०० सैनिकों की टुकड़ी लेकर खरवा आया। उनके गढ़ में न मिलने पर उन्हें खोजता हुआ वह उस शिकारी बुर्ज के पास पहुँचा और उसको चारों ओर से घेरकर उसने उन वीरों से आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। लेकिन उन वीरों ने आत्मसमर्पण कर जेल में सड़ने की अपेक्षा शत्रु से लड़कर मरना ही अधिक गौरवमय समझा। जब अंग्रेज़ कमिश्नर ने देखा कि वे लोग लड़कर मरने को तैयार हैं तो वह भयभीत हो गया। वह जानता था कि यदि वास्तव में लड़ाई हुई तो बहुत सम्भव है कि वहां की जनता कहीं विद्रोही होकर उनकी रक्षा के लिए न उठ खड़ी हो। क्योंकि खरवा नरेश राष्ट्रवर गोपालसिंह उस प्रदेश में बहुत ही लोकप्रिय थे और जनता उन्हें श्रद्धा से देखती थी। इसके साथ ही भारतीय सैनिक टुकड़ी की राजभक्ति पर भी उसे पूरा भरोसा नहीं था। ऐसी दशा में यदि वह घिरे हुए क्रांतिकारियों से युद्ध करता और कुछ समय युद्ध चलता तो समस्त राजस्थान में विद्रोह की अग्नि भड़क उठने का भय था। इसके अतिरिक्त ऊपर से भी कमिश्नर को यही आदेश मिला था कि जहाँ तक हो गोली चलने की नौबत न आने दी जाए। परन्तु अजमेर के पुलिस रेकॉर्ड में इस घटना का कहीं वर्णन नहीं है।

५१. निदेशक क्रिमिनल इंटेलिजेन्स ने सचिव, परराष्ट्र व राजनीतिक विभाग भारत सरकार को अपने पत्र दिनांक १६ जून, १९१५ में लिखा कि मणिलाल ने देहली मजिस्ट्रेट के सम्मुख अपने बयान में राव गोपालसिंह का नाम भी कई षड़यंत्रों में लिया है। उसने यह भी लिखा है कि मणिलाल के बयानों के अलावा भी कई ऐसे प्रमाण हैं जो राव गोपालसिंह को दोषी ठहराते हैं। सचिव परराष्ट्र व राजनीतिक विभाग भारत

सरकार ने पत्र दि० १६–६–१५ में ई कॉलविन ए० जी० जी० राजपूताना को राव गोपालसिंह के विरुद्ध तुरन्त कार्यवाही करने के आदेश दिए-अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५६, खंड एफ पृ० १,२,३,४,५, राव गोपालसिंह का नजरबन्दी के आदेश दि० २५–६–१९१५ इस फाइल में पृ० १० पर हैं।

५२. राव गोपालसिंह की नजरबन्दी के आदेश दि० २५–६–१९१५ अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५६, खंड एफ पृ० १०।

शंकरसहाय सक्सेना राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० १०५।

५३. सुरजनसिंह का बयान (रा० रा० पु० मं०)।

५४. ई० कॉलविन ए० ए० जी० राजपूताना के आबू से निर्देश अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५६।

५५. अजमेर कमिश्नर का पत्र दि० २७–८–१९१५ अजमेर रेकॉर्ड, फाईल संख्या ५६।

५६. कमिश्नर अजमेर का तार दि० २७–८–१९१५ अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५६।

दीवान किशनगढ़ का ई० कॉलविन को तार दि० २७–८–१५ अजमेर रिकॉर्ड, फाइल संख्या ५६।

ले० कर्नल के द्वारा ई० कॉलविन को पत्र दि० २७–८–१५ अजमेर रेकॉर्ड, फाईल संख्या ५६।

शंकरसहाय सक्सेना—राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ११४–११५।

५७. ले० कर्नल के द्वारा ई० कॉलविन को प्रस्तुत रिपोर्ट दिनांक २७–८–१५ अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५६ पृ० १२३–१३२।

५८. उपर्युक्त।

५९. सुरजनसिंह का बयान—अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ५६।

६०. राजपूताना एजेन्सी गुप्त फाइल संख्या ५१ ए।

६१. हर प्रसाद—आजादी के दीवाने पृ० ६५,६६,६७।

६२. उपर्युक्त पृ० १३,१४।

६३. उपर्युक्त पृ० १५,१६।

६४. रामनारायण चौधरी—वर्तमान राजस्थान (१९४८) पृ० ३०।

शंकरसहाय सक्सेना—राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ९५।

६५. रामनारायण चौधरी—वर्तमान राजस्थान (१९४८) पृ० ३१-३२।

६६. रामनारायण चौधरी—वर्तमान राजस्थान (१९४८) पृ० ३२ से ३६।

६७. सीक्रेट इंटेलीजेन्स रिपोर्ट—अनुच्छेद ५६२ अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ६८।

६८. सारदा—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रिप्टिव (१९४१) पृ० २९ से ३२।

रामनारायण चौधरी—वर्तमान राजस्थान (१९४८) पृ० ३।

शंकरसहाय सक्सेना—राजस्थान केसरी श्री विजयसिंह पथिक की जीवनी (१९६३) पृ० ८६।

सीक्रेट इन्टेलीजेन्स रिपोर्ट अनुच्छेद ६३ अजमेर रेकॉर्ड, फाइल, सं० ६८।

६९. तरुण राजस्थान—साप्ताहिक २७-७-१९२६—पृ० १३।

७०. सारदा—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रिप्टिव (१९४१) पृ० ३३ से ३६।

सीक्रेट इंटेलीजेन्स रिपोर्ट अनुच्छेद ५७० अजमेर रेकॉर्ड, फाइल सं० ६८।

७१. अजमेर रेकॉर्ड, फाइल संख्या ६८।

शब्दावली

अनुसूची (क)

अजमेर-मेरवाड़ा क्षत्र में स्थानीय बोली के प्रचलित शब्दों का अर्थ

आबी भूमि	तालाब के पेटे की भूमि जो तालाब के भरने पर जलमग्न हो जाती है।
अर्हट	रहट या उस पर लगने वाला कर।
बारानी भूमि	वह भूमि जो कृषि के लिए पूर्णतः वर्षा पर निर्भर करती हो।
वैसाख सुदि पूनम	वैशाख शुक्ला पूर्णिमा।
बिस्वा	बीघा का बीसवां भाग।
खूद	इस्तमरारदार द्वारा अपने घोड़ों और ढ़ोरों के लिए किसानों से ली गई फसल।
ढ़ाल	कुँए की जमीन का ढ़ालू भाग।
बीस्वांसी	बिस्वा का बीसवां हिस्सा (न्यूनतम नाप)
बाँटा	खेत की उपज में से हिस्सा (कर के रूप में)
बीघोड़ी	प्रति बीघा पर लिए जाने वाला न्यूनतम कर।
बीड़	घास का सुरक्षित मैदान या भूखण्ड।
बेगार	परिश्रम करवाने की बलात् प्रथा जिसमें पारिश्रमिक न दिया जाए।

चाही भूमि	जो भूमि कुँओं से सिंचित की जाती है।
चवरी	लड़की के पिता द्वारा अपनी पुत्री के विवाह पर इस्तमरारदार को दी गई नकद भेंट।
रावरी जगा	वह भूमि जिसमें इस्तमरारदार अपनी खुदकाश्त के रूप में खेति-हर मज़दूरों से फसल पैदा करवाता है।
कूंता	खड़ी फसल में इस्तमरारदार का हिस्सा निर्धारण करने की प्रक्रिया, भू-राजस्व का एक रूप।
खरीफ	यह फसल वर्षा पर आधारित होती है।
कांसा	सामूहिक भोजन पर सम्मिलित न होने पर घर पर भेजा गया भोजन।
खाजरू	भेड़ या बकरों की टोली में से जागीरदार द्वारा लिया गया बकरा या मेड़ा जो बलि के लिए काम लाया जाय।
कमीण	अंत्यज—नाई, कुम्हार, सुथार, लुहार, दर्जी, धोबी, भंगी, चमार, बलाई इत्यादि जिनको फसल के मौके पर अनाज दिया जाता है, नगद नहीं दिया जाता।
खालसा	सरकार से सीधी नियंत्रित भूमि।
खळा	फसल का खेत में साफ करने के लिए लगाया ढेर।
कांकड	बंजर, वन-भूमि, अधिकांशतः ग्राम के सीमा क्षेत्र की भूमि जिसमें कृषि न होती हो और जो सुरक्षित वीड नहीं हो।
लाग	जबरन शुल्क।
लाटा या लटाई	खळे पर ही फसल का विभाजन कर इस्तमरारदार का हिस्सा अलग निकालने की प्रक्रिया।
माल भूमि	वह विशिष्ट भूमि जो बिना वर्षा के रबी की फसल देने में समर्थ हो।
माफीदार	वह भूमिधारक जिसे किसी को भू-भोग नहीं देना होता।
नेवता	इस्तमरारदार द्वारा किसान के घर विवाह या मृत्यु-भोज के अवसर पर आमंत्रण और उस अवसर पर भेंट या नज़राना।

नज़राना — किसी काम की स्वीकृति लेने के लिए दी गई राशि जैसे उत्तराधिकार ग्रहण करने अथवा मकान या भू-संपत्ति के हस्तांतरण या स्वामित्व धारण करने के अवसर पर इस्तमरारदार को भेंट।

नेग घाणी, तेल पाली, घाणी पाली, किराया घाणी — तेली के कोल्हू पर लगाए गए फुटकर कर।

नेग — बांटा या बिघोड़ी के अतिरिक्त नगदी के रूप में इस्तमरारदार द्वारा किसानों से उगाहे गए उपकर।

पट्टा — भूमिधारक वर्ग के अधिकार प्रदान करने वाला प्रपत्र जो इस्तमरारदार से किसानों को प्राप्त होता है। किसान इसे भूमि पर अपने निरन्तर स्वामित्व के प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत कर सकता था तथा आपसी विवादों में अधिकार के निर्णय में यह पुख्ता प्रमाण सिद्ध हुआ करता था।

परवाना — एक तरह का अस्थाई अधिकार प्रपत्र; यह पट्टे से कुछ कम महत्व का माना जाता था।

पेशकसी, हलसारा, खाल्टी, बरर (संपत्ति कर) — किसानों से उगाहे जाने वाला संपत्ति कर (इस्तमरारदार द्वारा)।
खाल्टी—गैर किसानों से इस्तमरारदार द्वारा उगाहे जाने वाला संपत्ति कर।

पड़ाव फीस — ग्राम में रात्रि वास करने का शुल्क।

पड़तखाद — ग्राम की वह खाद जहां किसी का अधिकार न हो।

पड़त खाल — उन मृत पशुओं का चमड़ा जिन पर किसी का अधिकार नहीं हो और परम्परागत ऐसी खालों को बेचने का अधिकार इस्तमरारदार को प्राप्त है।

सियालू फसल — रबी की फसल जिसकी बोवाई सर्दी में होती है।

उनालू फसल — खरीफ की फसल जिसकी बोवाई गर्मी में होती है।

राम राम या नज़र — नगद नज़र या भेंट।

रलाई — बीज बोने के पूर्व खेतों में दिया गया पानी।

शहणा	भूमिपति द्वारा नियुक्त अधिकारी जो सरकारी फसल व कटाई आदि का प्रबन्ध हो।
साद	जमानत ।
तालावो जमीन	जलाशयों के निकट वाली भूमि ।
थला	घास काट डालने के बाद बचा वह भू-भाग जो घास पैदा करने के लिए सुरक्षित रखा जाता है ।

अनुसूची (ख)

इस्तमरारी जागीरों में नगद कर अथवा "लाग" की वर्गीकृत सूची

१—मकान-चूंगी और भूमि-शुल्क—

इन दो में से एक ही वसूल किया जाता था। जहाँ ये दोनों कर उगाए जाते थे वहाँ सामान्यतः दूसरा कर "मकान-चूंगी" न होकर किसी अन्य बहाने पर लिया जाता था और सुविधानुसार प्रत्येक मकान पर लागू किया जाता था। ये कर दो-चार आने से लेकर १० रुपये वार्षिक तक निर्धारित थे। ऊँची दरें गैर-काश्तकार या धनी लोगों से वसूल की जाती थीं।

चूंगी का नाम	प्रयुक्त अर्थ
पेशकशी	सामान्यतः किसानों से।
खोलरी	सामान्यतः गैर काश्तकारों से।
वरर	"माँग"
सालिना या सालाना	"वार्षिक भुगतान"
मलबा	सामग्री का ढेर। सामान्यतः यह शब्द सभी करों व चूंगियों के सम्मिलित रूप पर प्रयुक्त होता था जो प्रति खेत अथवा प्रति घर चुकाया जाता था।
अकराई	नियमित गृह-कर के साथ नाममात्र की चुराई जाने वाली राशि जो विकास के नाम पर ली जाती थी।
ग्राम खर्च	इसे इस्तमरारदार अपने ही हिसाब में जोड़ लिया करते थे।
हलसारा	हल की चूंगी जो बहुधा प्रति घर से वसूली जाती थी।

किराया मकान	गृह-कर ।
नक्शा	लसाडियां में प्रचलित लाग प्रति घर कुछ आनों पर ।
बाँच	हिस्सा कभी-कभी अतिरिक्त गृह-कर के रूप में बांट-कर वसूल की जाने वाली राशि ।
टिगट	जैंतपुरा में प्रति घर १ रुपया की दर से वसूल विशिष्ट कर ।
सदावंद	परम्परा से लिए जाने वाले दस्तूर ।
खरखड़	नादसी और कादेड़ा में प्रयुक्त अतिरिक्त गृह-कर, यह विशेषतः हल की बेगार की छूट के एवज़ में वसूल किया जाता था ।
घूघरी	सरकारी अफ़सरों को दी जाने वाली भेंट ।
लवाज़मा	सरकारी अधिकारियों के लिए विशिष्ट साधन ।
वाड़ा या वरर सिचारी	वाड़े का कर रबी की फसल पर काम करने वाले मजदूरों के वेतन पर गृह-कर की एवज में पीसागन में लिया जाता था ।

२—जिला बोर्डों की चूंगी एवं चौकीदारी कर—

चूंगी का नाम	प्रयुक्त अर्थ
चौकी	हिफ़ाज़त के उपलक्ष में लिए जाने वाली रकम ।
सड़क	जिला बोर्ड की चूंगी ।
खबर नवीस	ठिकाने द्वारा नियुक्त वेतन भोगी डाक लाने ले जाने वाला व्यक्ति ।

३—चराई कर 'जिसे कभी-कभी गाँव शुमारी' के नाम से भी प्रयुक्त किया जाता था—

ये बहुधा सभी ठिकानों में एक से थे और यदि इनकी पुरानी दरों में कुछ वृद्धि की जाती तो किसानों में भारी असंतोष व्याप्त हो जाता था । सामान्य दरें निम्न थीं—

गाय, भैंस	८ आना
झोटी	४ आना
बकरी या भेड़	१ आना
मेमने या बकरी के बच्चे	६ पाई (दो कल्दार पैसे)

४—भूस्वामी या ठिकानेदार के परिवार में विवाह या अन्य समारोहों के अवसर पर प्रजा से उगाहा जाने वाला कर—

नाम कर	प्रयुक्त अर्थ
न्योता	विवाहादि या मृत संस्कारों पर प्रति घर बुलावा और उनसे वसूल किया जाने वाला कर।
झोल	इस्तमरारदार के पुत्र-पौत्रादि के जन्म एवं विवाहादि के अवसरों पर प्रति घर से एक रुपया शुल्क वसूली (केवल जेतपुरा)।
आंदली	एक अन्य विवाहादि कर जो न्योता जैसा ही होता है, कुछ ही ठिकानों में लागू था—शोक्ली, मनोहरपुर, नांदसी आदि में इसकी सामान्य दर एक रुपया थी।
जामणा	ठिकाने के बाहर ब्याही गई इस्तमरारदार की बहिन-बेटियों के पुत्र-पुत्री के जन्मोत्सव पर वसूल किया गया कर।
मायरा	राज्य-परिवार की बेटी के घर जन्म पर उगाया गया या उसी के विवाह के अवसर पर उगाया गया कर।
मुकलावा	इस्तमरारदार के घर से किसी के गौने के समय उगाही जाने वाली राशि।

५—आसामी के घर पर विवाहादि अवसरों पर वसूल किए जाने वाला कर—

चूनड़ी	यह एक नियमित रूप से वसूल किए जाने वाला विवाह-कर था और इससे ठिकानों को अच्छी आय हो जाती थी। आठ रुपए तक हैसियत के अनुसार वसूल किया जाता था।
कागली या नाता	विधवा पुनर्विवाह कर—सामान्य दर एक रुपया।
थानापाट	चूनड़ी के अलावा एक और कर जो जैतपुरा में वसूला जाता था।
लगनशादी	कुछ मामलों में चूनड़ी के अलावा छोटे-छोटे उपकर।

६—व्यवसाय-कर—

खंदी	रैगरों और चमारों से लिया जाने वाला कर।
बसोला या खटोड़	बढ़ई (सुथार या खाती) की दुकान से वसूल किया गया कर, प्रति दुकान दो रुपए सात आने तक

	वार्षिक । कभी-कभी इसे भूमिकर माना जाता था ।
पगरखी	चमारों से जूते बनवाई का कर ।
हौद-भराई	मालियों के घर से प्रति घर चार आना ।
तीवरी	महाजन के घर से प्रति घर पौने तीन आना ।
दवात-पूजन	सवा रुपया प्रति घर हलवाइयों से वसूली ।
रूखाली	साधुओं से पांच आना प्रति घर ।
खोड़ या सदावंद	डकैतों के कैद रखने पर लिया जाने वाला कर जो जनसाधारण से वसूल होता था ।
आव	कुम्हारों का कर ।
घासभारा	घास कटाई कर (जुनियां में प्रचलित) ।
लाग महाजन	भू-स्वामी या जागीरदार द्वारा गेहूँ तथा अन्य सामान की खरीद पर महाजन द्वारा ली जाने वाली छूट रियायत ।
रेजा रंगाई और कोठा नील	रंगरेज का कर ।
अड़ा या दस्तूर रेगर	चमड़ा कमाने पर कर ।
लगान ओसरा	दुकान कर (बांदनवाड़ा में प्रयुक्त) ।
लगान रेजा	बुनकर का कर प्रति घर (देवलियाकलां में ५ रुपए प्रति घर सर्वाधिक) ।
चौथ कंदोई	हलवाई के वेतन का एक चौथाई ।
पीनन खरीफ	धुनकों पर कर ।
अखवान	रेंगरों पर कर ।

७—वाणिज्य कर—

गाड़ी या गाड़ी-भाड़ा कर	सामान्य कर नहीं ।
अरत	सामान्यत: ग्राम से निर्यातित सामान पर १ प्रतिशत विक्रय-मूल्य दर से वसूल किया जाता था । कभी-कभी आयातित वस्तुओं पर भी मंडियों एवं हॉट में बिक्री कर के लिए प्रस्तुत सभी वस्तुओं पर चीफ़ कमिश्नर ने आदेश जारी कर अधिक से अधिक १ प्रतिशत कर-निर्धारण किया ।

फेरा	ग्राम में बिक्री के लिए महाजन द्वारा लाए गए सामान पर एक रुपए में आधे पैसे की दर से प्रयुक्त कर।
लदाई भैंसा	भैंसा-गाड़ी द्वारा ग्राम से माल बाहर ले जाने पर कर।
निकासी चारा या घास फूस इत्यादि	बाहरी लोगों को घास या फूस बेचने पर प्रति गाड़ी लागू कर कभी-कभी एक रु० पर एक आना तक।
परखाई	सिक्का जँचवाने का कर।
भरती गाड़ी	गाड़ी द्वारा सामान बाहर निर्यात करने पर कर।

८—नजराना—

उत्सवों पर ठाकुर की गद्दी नशीनी खेतों की पैमायस, ठाकुर के जन्मदिन पर तथा नवविवाहित व्यक्ति द्वारा ठाकुर को भेंट स्वरूप राशि। सामान्यतः प्रति गाँव एक रुपया अपवादस्वरूप अन्यथा पूर्व प्रस्ताविक।

राम राम	इस्तमरारदार को सलाम करके दूल्हे द्वारा दिया गया रुपया का नज़राना।
त्योहार पर नज़र होली, दशहरा, दिवाली	सामान्यतः पटेलों द्वारा परन्तु अन्य लोग भी हैसियत के अनुसार नज़र करते हैं।
नज़र डोरी	फसलों की नपाई पर पटेल द्वारा।
नज़र आसोज और चैती	जुणिया और सारड़ा में पटेलों द्वारा।
तीसाला	पटेलों द्वारा प्रति तीसरे या दूसरे साल।
लाग पटेलाई	कोढ़ा ग्राम में पटेलों द्वारा प्रति वर्ष तीन रुपए।
नज़र कूंता	भिनाय में प्रति गाँव दो रुपया।
पाट की नज़र गद्दी नशीनी।	१) रु० प्रति घर उत्तराधिकार प्राप्ति पर।

९—ठिकाने के कर्मचारियों से संबंधित कर—

कामदार	ठाकुर के प्रतिनिधि को भेंट।
सेहना या सेहना भांभी	सामान्य फसल के रूप में कभी-कभी नगदी में। सर्वाधिक केरोट ठिकानों में जहाँ एक रुपए पर उक्त कर एक आना था।
तमड़ा या ताम्ड़ायत	राज्य द्वारा नियुक्त ब्राह्मण को विवाहादि पर सामान्यतः दी जाने वाली राशि।

ढोली या दमामी — ठिकाने के ढोली का कर (केवल ठिकाने द्वारा) नियुक्त ढोली ही बाजा बजा सकता था।

रुखाली या सांसारी — प्रत्येक कर या खेत में रखवाली करने वाले का कर।

गांव नेग — ठिकाने के नौकरों के लिए सामान्य कर।

नज़र सालाना — पटेलों से प्रति वर्ष या प्रति दूसरे वर्ष।

लाग दरख्त या भाडा दरख्त। — ठिकाने के कामदार को जिसकी देखरेख में पेड़ की कटाई हो प्रति वृक्ष एक आना।

दस्तूर गवाई — वसूली राशि में एक आना प्रति रुपया कामदार के लिए।

रवी तुलाई — तोलने का शुल्क अधिकतर फसल के रूप में कभी-कभी नगदी में भी।

पचकारू — विवाहादि अवसरों पर ठिकाने के कर्मचारियों तथा अंग्रेज़ों को दी जाने वाली नाममात्र की राशि।

सुगन भेंट या ढेली पूजा — पैमायश के समय दिया गया शुल्क आमतौर पर ठिकानों द्वारा अपने उपभोग में ले लिया जाता था।

चवीनी — कूते के समय भोजन के उपलक्ष में दी जाने वाली राशि।

मलवा — (केवल दो गांवों में लागू) देवलिया कला में कामदार की खुराकखाता में नाममात्र का शुल्क।

गंवाई — खरवा के गांवों के खातेदारों द्वारा प्रति गांव एक बंधी राशि।

१०—भुगतान पर रियायत या छूट : बंदोबस्त हिसाब पर शुल्क लगाने पर अतिरिक्त कर—

वत्ती — यह वास्तव में विनिमय का अन्तर है परन्तु इसके साथ और भी कई उपकर जुड़े हुए थे जैसे, कल्दार और प्रचलित सिक्कों के विनिमय अन्तर की वसूली अन्तर न होने पर अथवा कम अन्तर पर भी अधिक की वसूली सामान्य बात थी। यह एक सामान्य और आपत्ति कर था जो आसामियों पर थोपा हुआ था।

सवाया — प्रति खाता १ रु० तक।

खर्च — प्रति रुपए दो आने खातों पर (मनोहरपुर में प्रचलित)

मल्वा	जैतपुरा के किसानों की एक मण ज्वार पर पौन आना। कुथल में १ आना, सावर में भोग या ठिकाने के हिस्से।
घास बीड	पारा में किसानों को जमींदार के लिए प्रचलित बाजार दर से एक रु० में ६ आने मजूरी पर घास काटनी पड़ती थी।
अन्नी	फसल पर छोटा सा कर, मल्वा जैसा।
उगाई	शाब्दिक अर्थों में वसूली खरवा में प्रति खेत, कुँए या हल पर अतिरिक्त उपकर।
खाता	मसूदा के दो ग्रामी खातों पर पाँच प्रतिशत अतिरिक्त उपकर।
मप्ती	मसूदा के ठिकाने के किराए ग्राम में बीघोड़ी के प्रति रुपए पर डेढ़ आने की दर से अतिरिक्त उपकर। भूमि की माप की दर।

११. बेगार के बदले में वसूल किए जाने वाले उपकर—

बीड घास	घास कटाई के उपलक्ष में शुल्क।
खड खड	प्रति हल १ रु० कभी-कभी इससे कम भी।
हलसरा हलवा	हल की बेगार के बदले अढ़ाई रुपया प्रति हल।
भाड़ा गाड़ी	गाड़ी की बेगार के बदले।
सफाई गढ़	कहारों द्वारा गुलगाँव में सेवा के बदले प्रति घर चार आना।
लाग-बेगार	जाट और गूजरों से उनके बैलों से सेवा न लेने की एवज़ी में कर, केबानिया में ५ रुपए प्रति घर और पाडलिया में १ रुपया प्रति घर।
हल और जोड़	गोविन्दगढ़ में हल सारा के अलावा।

१२. मन्दिर का कर—

मन्दिर	प्रति खाता एक रुपया।
धर्मादा	निर्यात पर कर।

१३. सार्वजनिक सेवाओं पर कर अस्पताल एवं भू संरक्षण व धर्मादा इत्यादि—

घोर या गांवाई या तलाब	नालियों और जलाशयों की मरम्मत के लिए उगाहा जाने वाला कर।

कोट	जूनिया में किले की मरम्मत के लिए उगाही गई राशि।
शफाखाना	अस्पताल के लिए धन संग्रह बहुधा ठिकानों द्वारा अपने शफाखानों के कार्यों में यह राशि व्यय कर दी जाती थी।
सायर वान्ध	केवल भिनाय में लागू ।
चन्दा	सावर में प्रति घर से दो आने से लेकर चार आने टीकों एवं चिकित्सालयों के लिए।

१४. आटा की चक्कियों, चूने के भट्टों एवं तेल-घाणी एवं कोल्हू इत्यादि पर रायलिट—

लाग केही या शोरा	कलमीशोरा ठिकाने से बाहर निर्यात करने पर।
घाणी संट या तेल घाणी	तेली का कर सामान्यतः प्रति कोल्हू परन्तु बहुधा घरों पर भी कभी-कभी नगदी में अन्यथा तेल के रूप में।
लाग कोल्हू	प्रत्येक कुम्हार के भट्टे से या भट्टों से कुछ सौ खपरैल कर के रूप में।
चक्की	भिनाय में आटा चक्की कर।
भट्टे का चूना	प्रत्येक भट्टे से गिनती की चूने की टोकरियां।
किराया भट्टी	चूने निकालने की भट्टी का लायसेंस कर ।

१५. नजराना—

यात्रा	इस्तमरारदार की तीर्थ-यात्रा पर नज़राना।
नज़राना गोद	उत्तराधिकारी प्राप्त करने पर या गोद लेने पर।
अन्य नज़राने उत्तराधिकारी सम्बन्धी	
पटेलाई	पटेल द्वारा नियुक्ति पर नज़राना।
पटवार पाना	पटवारी की बारी अनुसार नियुक्ति पर नज़राना।

१६. खाता लिखित रसीद, रजिस्ट्री शुल्क—

बांच	(हिस्सा) आठ आने से लेकर एक रुपया प्रति खाता।
गांव	बांच के अनुरूप ही कर।
लागडोरी	नपती के लिए प्रति खाता दो आने (मनोहरपुर में) ।
लेखा या लिखाई	लिखने या हिसाब जोड़ने का शुल्क।

चिट्ठी पट्टा	(वांदनवाड़ा में प्रचलित) सवा रुपया प्रति पट्टा।
कांटा अगोतरी	अग्रिम राजस्व देने पर नाममात्र का उपकर।
पैमायश	पट्टे प्रदान करने पर लगान के प्रति रुपए पर एक पैसा अतिरिक्त कर, (पीसांगन में प्रचलित)।
पट्टा	पट्टा जारी करने पर शुल्क।

१७. पानी फालतू बहाने, नुक्सान करने व सभी तरह के अनाधिकृत प्रवेशों पर जुर्माना-ताली का शुल्क—

वाड़ा	मवेशियों के अनाधिकार प्रवेश पर अर्थ दंड।
नुक्सान जारायत	घास पेड़ी तालावों आदि की सामान्य क्षति पर।
अघखरारी	लाट में देरी पर दंड।
इजापत्र	नुक्सान पर क्षतिपूर्ति कसरत की एवज् में कभी-कभी उक्त दंड लागू किया जाता था।

१८. कुँओं पर कर—

वरर	प्रति कुँए पर जहाँ चड़स या लाव चलता है। प्रति-लाव या चड़स पर एक रुपया दस आने।
कुर	सामान्य कूप कर—प्राचीनकाल से चला आ रहा कर जो लेख वनवाने के लिए संभवतः लकड़ी के उप-योग करने पर स्थापित किया गया था। लाव से अतिरिक्त कर।
खोर	कभी-कभी कुर के समान ही उस किसान पर अर्थ दंड के स्वरूप पाँच रुपए तक जो दूसरों के कुँओं पर से फसल सिंचित करते पाए जाते हों।
गाँव खर्च और नक्शा	सरकारी अधिकारियों तथा पैमायश वालों के लिए आतिथ्य खर्च।
हलसरा	हल चूंगी (मनोहरपुर) में कुँओं पर चार रुपए प्रति कूप।
वावरा	मालियों और तेलियों पर मनोहरपुर में विशेष कर।
साली वाज	(वाटा कोट में) कूप कर।

१९. हल-शुल्क जो बेगार की एवज में न हो—

हलवा खड खड	एक हल से अधिक नाप की भूमि पर कर।

हलसार	प्रति हल कर कभी-कभी गृह कर मान लिया जाता था ।

२०. विविध उपकर : लगान तथा "लागों" के अतिरिक्त—

वीड कर	
दांतली	हाँसिए का कर ।
कसरत	जहाँ निर्धारित क्षेत्र से अधिक फसल बोने पर कपास की निर्धारित सीमा खेत का चौथाई या आधा अथवा उससे अधिक बोने पर अर्थ दंड सामान्य लगान से दुगना, कुछ क्षेत्रों में प्रति दस रुपए ।
ठेका	बबूल के पत्ते बटोरने, लाख इकट्ठी करने, गाँव के मृत ढोरों की हड्डियाँ आदि का ठेका ।
हक ठिकाना	पड़त खाल या गाँव में मृत लावारिश पशु की खाल पर ठिकानेदार का अधिकार । पाट खाट-रोड़ी के ढेरों व पडाव की खाद पर ठिकाने का हक । पड़ाव-शुल्क-गाँव में रुकी बैलगाड़ियों पर चूंगी ।
अहेरा	होली के दूसरे दिन शिकार वर्जन के लिए ग्राम महाजनों द्वारा ठाकुर को चूंगी ।
मुतफरकत खर्च	(केवल मनोहरपुर में) जागीरदार द्वारा यदाकदा वसूल किए जाने वाले उपकर ।

अनुसूची (ग)

१. नेग और अन्य कर जो जिन्सों में चुकाए जाते थे—

फसल के बँटवारे के समय नियमित नेग हिसाव में लिए जाते थे जो राज्य के हिस्से भोग में प्रति मण चालीस सेर पर दो सेर से १५ सेर तक वसूले जाते थे । केवेंडिश महोदय के समय में भी प्रचलित थे:—

साकी	(मसूदा में) भोग में दो से दस सेर प्रति मण ।
धाराराज	सामान्य नेग ठिकाना ।
कीना, कामदार, आड़ा, कानूनगों	आमतौर पर ठिकाना वसूल करता था । कामदार को वेतन पर नियुक्त किया जाता था । कानूनगो हिसाब लखने वाला होता था ।

कँवर कायली या कँवर मटकी	केवल कुँअर के लिए।
मंदिर नेग	कभी-कभी देवता के उल्लेख से यह उपकर वसूल किया जाता था।
विविध	पशुओं के लिए या कबूतरों के लिए घास, चारा या दाना-पानी पर खर्च।
सुगन भेंट	खरीफ में ली जाने वाली नगद वसूली उल्लिखित नाम से।
तोल	पूर्णतया तोल के लिए प्रयुक्त कर परन्तु मेवारियों में यह ठिकाना नेग था।
भोम या दस्तूर	सामान्य नेग ठिकाना।
धर्मादा या सदावर्त	पुण्यार्थ कामों के लिए।
सेरूना	सेरी जैसा ही नेग, पर सेरू के अलावा कर वसूल किया जाता था।
सवाई बट्टी	भोग या इस्तमरारदार के हिस्से का एक चौथाई भारी नेग वांदनवाड़ा में वसूला जाता था।
बढ़ोतरी	नगद वसूली को इजरफ़ से वसूल करना।
भाड़ा या किराया भोग	गढ़ तक अनाज ले जाने का खर्च वसूली।

२. बिकाने के कर्मचारियों द्वारा ठिकाने के हिसाब के अतिरिक्त भी उपकर वसूली के अधिकार ठेके पर कभी-कभी दिए जाते थे इससे ठिकाने को भी नगद लाभ होता था। कई वार ठिकाना सीधा वसूल किया करता था और इससे उपकार्य के लिए नियुक्त कर्मचारियों को वेतन दिया जाता था। कई वार यह ठेके पर तब भी उठाया जाता था, जबकि उसकी वसूली उस सूरत में भी की जाती थी जबकि उस कार्य के लिए कर्मचारी नियुक्त न भी किया गया हो।

भंब	पैमायश के लिए नियुक्त कर्मचारी।
तुलाई, पटवारी	तोलने वाले का शुल्क।
धार या मापा	
सेहान्गीः	सहर्ष लिया गया शुल्क।
मीना हवलदार	चौकीदारी का शुल्क।

कूंची (डरी, गांवा,) करपा, हवलक या पायला सामन्त सेर	ये सामान्यतः गांव के अन्त्यजों या ग्राम कर्मचारियों के लिए होते थे, परंतु इसे कुछ ठिकाने या ठिकाने के कर्मचारी रखते थे।
रखाला, कागलिया, सांसरी इत्यादि ।	फसल रखवाली वाले का कर।
ढोली या दमामी	वाजे वाले का।
विविध कर्मचारीगण, रसोईदार, भंगी, चौवदार, फर्राश, घरवादार	भुगतान असामान्य रहते थे।
लाग कमीण	ठिकाने के कर्मचारियों का सामान्य उपकर।
वचकी	फसल के माप के समय भंगी या वलाई और सेहना फसल में से कुछ मुट्ठी भर लिया करते थे। वहुधा इन लोगों के सहायक नियुक्त होते थे जो यह काम किया करते थे।

३. बांटा के अलावा लिया जाने वाला अनाज—

इंच	सागसब्जी वेचने वालों से नेग की सीमा निर्धारित नहीं थी।
भुट्टा या मकिया	सामान्यतः सौ भुट्टों तक परन्तु कई खेतों में इससे भी अधिक।
होला, डांगी या छोला या बूंटा	अन्न की वालियां।
वीस्वाया खुड	हरे चारे का उपकर, सामान्यतः जौ की वालियां।
काकड़ी खरवूजा	काछी लोगों से नेग वसूली।
दोवड़ी	खेत की मेड पर उगी घास आदि।

४. ग्राम में मृत पशुओं की खालों की रंगाई पर ठिकाने के अधिकार के रूप में लिया गया उपकर—

सालियाना रंगर	चडस पर तैयार खाल।
अखवान या सूडिया	एक या दो खालें चरस के मुँह का कर चमारों से कभी-कभी नगदी के रूप में।
पगरखी या पापोज	चमारों से जूते, कभी-कभी नगदी के रूप में।
पडीस या तंगी पेरा	तंग घोड़े इत्यादि के लिए।

डोलची	होली पर रैगरों से चमड़े की डोलची पानी खींचने के लिए या पिलाई के लिए।
५. विविध—	
खाजरू या वागोलाई	सामान्यतः १ बकरा या मेड़ा प्रति २० भेड़ों पर, कभी-कभी नगद भुगतान, अधिक से अधिक तीन रुपए तक वलि के लिए।
दूध-दही	जाटों या गूजरों से कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर वसूली।
कांड	ईंधन के लिए कंडे।
केल्हू	कुम्हारों के प्रति घर से भट्टी से खपरेल।
अड़ा की घूघरी	होली के दूसरे दिन से अफीम, भांग।
घूंघियाँ या चकमा	ऊनी लाई या कम्बल, खटीक या गडरिया से।
गन्ने	सामान्यतः किसान के गन्ने के खेतों से प्रति खेत १०० गन्ने।
गुड की भेली	गुड की ढेरी (पांच सेर के लगभग) प्रति गन्ने के खेत से।
खोड़ी	रैगरों से घास की वसूली।
लागां भूसा	भूसा की वसूली।
लाग्नी	गडरिए से कुछ ऊन की वसूली।
मिर्च, गाजर, प्याज इत्यादि	आवश्यकतानुसार इन चीजों की वसूली।
बुनकरों पर कर	प्रति वर्ष सूत की एक लच्छी और एक तौलिया।
६. काँसे—	भोज सामग्री एवं मिष्ठान्न पदार्थ मौसर या शादी के अवसर पर ठिकानेदार के लिए निर्धारित संख्या व मात्रा में दिए जाते थे। इनकी संख्या व मात्रा एक ठिकाने के गाँवों में भी पृथक्-पृथक् थी। ठाकुरों द्वारा निर्धारित काँसों की संख्या में अंत्यजों व कर्मचारियों के काँसों की संख्या सम्मिलित नहीं है। सामान्यतः ठिकाने को बहुत कम काँसे जाते थे कुछ स्थानों पर इनकी संख्या निश्चित थी, उदाहरणस्वरूप ६८ काँसे। कुछ लोग इसकी एवज़ में नगद राशि दे देते थे, अधिकतम १५ रुपयों तक।

खखा	
वागसुदी	नगद राशि में परिवर्तित जो अधिकतम २४ रुपए तक होती थी। कुछ लोग कांसों के अलावा भी १५ रुपए दे देते थे।
साघाना	जाट और छींपों से १३० काँसे जाते थे। इनमें से अधिकांश जागीरदारों और ठिकानों में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए होते थे।
गरीला	ठिकाने के लिए ९५ काँसे—५ ठाकुर के, केवल १३ शेष कर्मचारियों एवं २५ दरोगों के लिए जिनका ग्राम के कामों से कोई संबंध नहीं होता था।
जोतायन	काँसे का कर नगद कर में परिवर्तित मिठाई की किस्म के अनुसार चार रुपए से लेकर बीस रुपए तक।
भिनाय	१ से लेकर ३२ काँसे ठिकाने के कर्मचारियों के लिए, ठिकाना इनमें से कुछ भी नहीं लेता था।
संथुन	काँसे की दर मिठाई की किस्म के अनुसार निर्धारित:–

लड्डू	८ रुपए
हलुआ	६ ,,
लाप्सी	४ ,,

पीसांगन	ठिकाने का हिस्सा नगदी में भुगतान होता था और अत्यजों के लिए काँसे के रुपए।

७. थीरत—

ठिकाने के द्वारा कर्मचारियों के निमित्त ली गई लागों और ग्राम अन्त्यजों को वार्षिक देय में भेद करना कठिन है। सामान्यतः इन लोगों को भोग में प्रति मण में से एक दो छँटाक या प्रति वर्ष निर्धारित सेर या सीरोजा ढेरी में से कुछ भुट्टे दिए जाते थे। अन्त्यजों में निम्न जाति के लोग आते थे:—

सुनार
लुहार
नाई
पटेल
दर्जी

तामड़ायत (पुरोहित या पण्डा आदि)

नट

मेहतर

रैगर

धोबी

टिड्डी वाला

वावर या बागरा

चमार

भील

SANAD FOR ISTIMRARDARS OF AJMER.

1935.